सचित्र

दशवैकालिक सूत्र

श्रमण आचार का आधारभूत ग्रन्थ

मूल पाठ-हिन्दी-अंग्रजी अनुवाद। विशेष अर्थ एवं चित्रों सहित

प्रधान सम्पादक
उप प्रवर्तक श्री अमर मुनि

सम्पादक
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक
पद्म प्रकाशन
नरेला मण्डी, दिल्ली ११० ०४०

परम श्रद्धेय जैन धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट् श्री आत्माराम जी म. की
१०४वीं पावन दीक्षा जयन्ती के शुभ प्रसंग पर प्रकाशित

सचित्र आगम माला का पाचवा पुष्प

- सचित्र दशवैकालिक सूत्र
- प्रधान सम्पादक
  उप प्रवर्तक श्री अमर मुनि
- सम्पादक
  श्रीचन्द सुराना 'सरस'
- अंग्रेजी अनुवाद
  सुरेन्द्र बोथरा
- चित्रकार
  सरदार पुरुषोत्तमसिंह
  सरदार हरविंदरसिंह

- प्रकाशक
  पद्म प्रकाशन
  पद्मधाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०
- मुद्रक एव प्रकाशक
  दिवाकर प्रकाशन
  ए-७, अवागढ़ हाऊस, एम जी रोड, आगरा-२८२ ००२
  दूरभाष (०५६२) ३५११६५
- प्रथम आवृत्ति
  वि. सं. २०५४ आषाढ़
  ईस्वी सन् १९९७, जुलाई
- मूल्य
  पाँच सौ रुपया मात्र

ILLUSTRATED
DASHAVAIKALIK SUTRA

THE BASIC COMPENDIUM OF SHRAMAN CONDUCT

COMPLETE WITH ORIGINAL TEXT, HINDI AND ENGLISH TRANSLATIONS, ELABORATIONS, AND ILLUSTRATIONS

Editor-in-Chief
UP-PRAVARTAK SHRI AMAR MUNI

Editor
SHRICHAND SURANA 'SARAS'

PUBLISHERS
PADMA PRAKASHAN
PADMADHAM, NARELA MANDI, DELHI-110040



पावन कर-कमलों में

सादर

समर्पण



गुरुदेव का परमभक्त

चरण चंचरीक

भण्डारी मुनि पद्मचन्द्र

(उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक)



शास्त्र सेवा के पवित्र कार्य में उदार सहयोग प्रदाता



तपाचार्या पूज्य महासती श्री मोहनमाला जी म. के ३११ दिवसीय दीर्घ तपाराधना के उपलक्ष्य में, उनके संसारपक्षीय भाई श्री राजवंश जी जैन फगवाड़ा निवासी ने श्रुत-सेवा हेतु ५१ हजार की राशि प्रदान की।



श्रमणी सूर्या उपप्रवर्तनी डॉ. श्री सरिता जी म. की प्रेरणा से श्रुत-सेवा के भगीरथ कार्य में विशेष सहयोग प्राप्त हुआ।



परम गुरुभक्त उदारमना श्री सुभाषचन्द जी जैन एवं श्रीमती शशि जैन, विवेक विहार, दिल्ली

...ी सुभाषचन्द जी जैन बड़े ही उत्साही और ...र व्यक्ति हैं। समाज सेवा एवं धार्मिक कार्यों में ...गे रहते हैं। आपश्री की धर्मपत्नी श्रीमती शशि जैन भी बहुत सेवाभावी धर्मशीला महिला हैं। आपका पूरा परिवार पूज्य गुरुदेव का परम भक्त है।



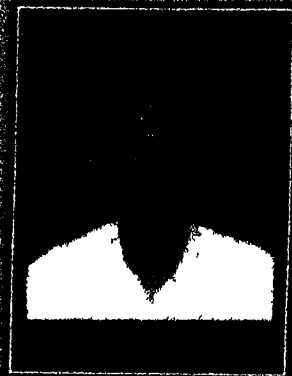
परम गुरुभक्त उदारमना श्री सुशील कुमार जी जैन एवं श्रीमती कौशल्या जैन, योजना विहार, दिल्ली

आप गुरुदेव श्री के प्रति अत्यन्त भक्ति रखते हैं। उदार हृदय के सेवाभावी व्यक्ति हैं आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कौशल्या जी भी बड़ी धर्मशीला सेवाभावी हैं।

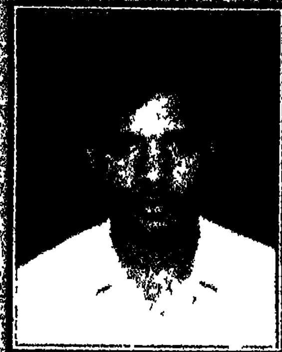
[illegible]



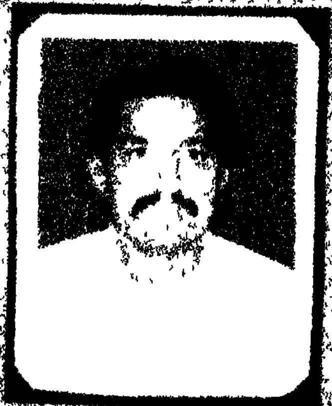
श्री सुभाष जैन
[illegible] कालोनी, पानीपत
आप प्रारम्भ से ही शास्त्र सेवा हेतु समर्पित भाव से सहयोग देते रहे हैं। उदार हृदय युवक हैं।



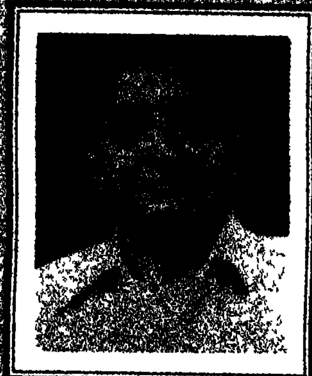
[illegible]



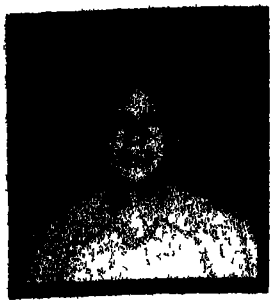
श्री [illegible] जैन
आप श्री [illegible] जी के सुपुत्र हैं। बहुत ही [illegible] और उत्साही युवक होने के साथ धार्मिक विचारों से ओतप्रोत हैं।



श्री [illegible] जी जैन
[illegible]पुर, दिल्ली
सुपुत्र श्री [illegible] जी जैन
[illegible]



श्री [illegible] जी जैन
[illegible], दिल्ली
[illegible]



प्रकाशकीय

शास्त्र हमारा वह ज्ञान कोष है, जिसके पीछे हजारों, लाखों वर्ष की अनवरत साधना, चिन्तन और आत्मानुभव की अखण्ड तपस्या का प्रकाश छिपा है। भौतिक लालसाओं से मुक्त और अध्यात्म आनन्द की अनुपम उपलब्धि से युक्त जिन महापुरुषो ने अपने साधना काल में जो-जो अनुभव, जिसे हम स्वात्मानुभव कह सकते हैं प्राप्त किये उन सब स्वात्मानुभवों की सटीक शब्द अभिव्यक्ति का सग्रह है शास्त्र। इसलिए कुबेर के खजाने और चक्रवर्ती के नवनिधान से भी दुर्लभ है—शास्त्र ज्ञान का खजाना। वह दुर्लभ खजाना हमे सहज रूप मे प्राप्त हुआ है अत हम कितने सौभाग्यशाली हैं यह आप स्वय अनुभव कर सकते हैं।

शास्त्र केवल ज्ञान ही नहीं देता, जीवन जीने की कला भी सिखाता है। शास्त्र पढ़कर पण्डित बनना एक अलग बात है, किन्तु शास्त्र पढ़कर जीने की कला सीखना बहुत ही अलग बात है। आज पढे-लिखे और पण्डित तो मिल जाते हैं, परन्तु शास्त्र को आचार धर्म बनाने वाले ज्ञानी बहुत कम मिलते है। जरूरत है शास्त्र को आचार धर्म बनाया जाय। शास्त्र में बताई हुई जीवन-कला हम सीखे, सम्पूर्ण रूप मे न सही उसके कुछ सूत्र ही जीवन मे उतारे तो शास्त्र ही हमारा शास्ता बन जायेगा। वही हमारा गुरु बन जायेगा।

दशवैकालिक सूत्र ऐसा ही जीवन-शास्त्र है जिसे पढ़कर यदि आप इसके एक-एक वचन पर मनन करेंगे तो आपके जीवन मे स्वाभाविक ही परिवर्तन आयेगा। परिष्कार आयेगा और सस्कार आयेगा। जीवन को सस्कारित और पवित्र बनाने के लिए ही हमने शास्त्रो को हिन्दी-अग्रेजी भाषा के साथ चित्रमय प्रकाशित करने की अत्यन्त खर्चीली योजना प्रारम्भ की है।

उ भा प्रवर्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य विद्वद्‌रत्न उपप्रवर्तक श्री अमरमुनि जी महाराज ने लगभग चार वर्ष पूर्व एक अत्यन्त दूरदर्शी जनोपयोगी कार्य प्रारम्भ किया था। जैन सूत्रो का सचित्र रूप मे हिन्दी-अग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशन। योजना के प्रारम्भ मे हमे बहुत अधिक आशा नही थी कि कितने लोग इसे खरीदेंगे या पढेंगे। क्योकि अधिकतर पाठक हलका-फुलका साहित्य पढ़ने के आदी हैं और शास्त्र के नाम से ही चौक जाते हैं या अपने को उसके अयोग्य मानकर उसे पढ़ने के बजाय पूजा कर लेना भर ही काफी समझते हैं। इसलिए शास्त्रो के प्रकाशन की योजना साहसिक होने के साथ ही लोक-रुचि से कुछ प्रतिगामी जैसी लगती है।

परन्तु चार-पॉच वर्ष के अनुभव मे हम यह कह सकते हैं कि हमारी यह धारणा एकान्त सत्य नही है। लोग पढ़ते हैं, पढ़ना चाहते हैं, पढ़ने की रुचि भी है परन्तु उन्हें पढ़ी जाने वाली पुस्तक समझ में तो आनी चाहिए। रुचिकर तो लगे। उसके लिए ही हमने यह शैली अपनायी कि २५००



प्रकाशकीय

शास्त्र हमारा वह ज्ञान कोष है, जिसके पीछे हजारों-लाखों वर्ष की अनवरत साधना, चिन्तन और आत्मानुभव की अखण्ड तपस्या का प्रकाश छिपा है। भौतिक लालसाओं से मुक्त और अध्यात्म आनन्द की अनुपम उपलब्धि से युक्त जिन महापुरुषों ने अपने साधना काल में जो जो अनुभव, जिसे हम स्वात्मानुभव कह सकते हैं प्राप्त किये उन सब स्वात्मानुभवों की सटीक शब्द अभिव्यक्ति का संग्रह है शास्त्र। इसलिए कुबेर के खजाने और चक्रवर्ती के नवनिधान से भी दुर्लभ है शास्त्र ज्ञान का खजाना। वह दुर्लभ खजाना हमें सहज रूप में प्राप्त हुआ है अतः हम कितने सौभाग्यशाली हैं यह आप स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

शास्त्र केवल ज्ञान ही नहीं देता, जीवन जीने की कला भी सिखाता है। शास्त्र पढ़कर पण्डित बनना एक अलग बात है किन्तु शास्त्र पढ़कर जीने की कला सीखना बहुत ही अलग बात है। आज पढ़े लिखे और पण्डित तो मिल जाते हैं परन्तु शास्त्र को आचार धर्म बनाने वाले ज्ञानी बहुत कम मिलते हैं। जरूरत है शास्त्र को आचार धर्म बनाया जाय। शास्त्र में बताई हुई जीवन कला हम सारी सम्पूर्ण रूप से न सही, उसके कुछ सूत्र ही जीवन में उतारें तो शास्त्र ही हमारा शास्ता बन जायेगा, वही हमारा गुरु बन जायेगा।

दशवैकालिक सूत्र ऐसा ही जीवन-शास्त्र है जिसे पढ़कर यदि आप उसके एक-एक वचन पर मनन करेंगे तो आपके जीवन में स्वाभाविक ही परिवर्तन आयेगा। परिष्कार आयेगा और संस्कार जगेंगे। जीवन को संस्कारित और पवित्र बनाने के लिए ही हमने शास्त्रों का हिन्दी-अंग्रेजी भाषा के साथ सचित्र प्रकाशित करने की अत्यन्त खर्चीली योजना प्रारम्भ की है।

उत्तर भारतीय प्रवर्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य विद्वद्रत्न उपप्रवर्तक श्री अमरमुनि जी महाराज ने लगभग चार वर्ष पूर्व एक अत्यन्त दुरूह तथा जनोपयोगी कार्य प्रारम्भ किया था। जैन सूत्रों का सचित्र रूप में हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशन। योजना के प्रारम्भ में हमें बहुत अधिक आशा नहीं थी कि कितने लोग इसे खरीदेंगे या पढ़ेंगे। क्योंकि अधिकतर पाठक हल्का फुल्का साहित्य पढ़ने के आदी हैं और शास्त्र के नाम से ही चौंक जाते हैं या अपने को उसके अयोग्य मानकर उसे पढ़ने के बजाय पूजा कर लेना भर ही काफी समझते हैं। इसलिए शास्त्रों के प्रकाशन की योजना आर्थिक हानि के साथ ही लोक-रुचि से कुछ प्रतिगामी जैसी लगती है।

परन्तु चार-पाँच वर्ष के अनुभव से हम यह कह सकते हैं कि हमारी यह धारणा एकान्त सत्य नहीं है। लोग पढ़ते हैं, पढ़ना चाहते हैं, पढ़ने की रुचि भी है परन्तु उन्हें पढ़ी जाने वाली पुस्तक समाज में तो आनी चाहिए। रुचिकर तो लगे। इसके लिए ही हमने यह शैली अपनाया कि २५००

वर्ष पुरानी अर्धमागधी भाषा को मूल पाठ रूप मे रखते हुए आज की हिन्दी और अंग्रेजी में उसका सरल अनुवाद भी प्रस्तुत किया जाये ताकि लोग उसे पढ़ें, समझें और साथ ही उस प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को चित्रो के द्वारा जीवन्त देखकर उसे समझने/समझाने में रुचि लेवें।

हमें विश्वास हुआ है कि हमारा यह प्रयोग सफल हो रहा है और आनन्द हो रहा है कि धीरे-धीरे हम अधिक सफल होगे। सचित्र आगम काफी कीमती होते हुए भी विदेशो से तथा देश के अनेक भागो से सभी आम्नाय के पाठको की तरफ से इनकी माँग आती रहती है। कीमती पुस्तक खरीदकर पढ़ने का अर्थ ही है उस विषय मे पढने वाले की रुचि है। जहाँ रुचि है, जिज्ञासा है, वहाँ कार्य सिद्धि भी है। इसलिए हम आशान्वित हैं कि हमारा शास्त्र-प्रकाशन प्रयोजन धीरे-धीरे सार्थक बनेगा और इसका पाठक वर्ग तैयार होगा।

उप प्रवर्तक श्री अमर मुनि जी महाराज ने पहले प्रश्नव्याकरण सूत्र (दो भाग) सूत्रकृतांग सूत्र (दो भाग) तथा भगवतीसूत्र (चार भाग) हिन्दी विवेचन के साथ तैयार किये थे जिनका प्रकाशन हुआ। अब आपश्री ने सचित्र आगम प्रकाशन की योजना का शुभारम्भ किया तो इस शृखला मे उत्तराध्ययन सूत्र (अब दूसरा सस्करण छप रहा है) अन्तकृद्दशासूत्र, कल्पसूत्र, ज्ञाताधर्मकथागसूत्र, (दो भाग) तथा तीर्थंकर चरित्र प्रकाशित हो चुके हैं और साधु-साध्वियो के अतिरिक्त पुस्तकालयो व देश-विदेश के आगम जिज्ञासु विद्वानो के पास पहुँच रहे हैं।

इसी पवित्र परम्परा में अब दशैवकालिक सूत्र पाठको के हाथो मे है। विश्वास है यह भी पिछले आगमो से कुछ अधिक ही लोकप्रिय होगा। क्योकि इस आगम की कुछ खास विशेषताएँ भी है, जिन पर पूज्य गुरुदेव श्री अमरमुनि जी ने अपनी प्रस्तावना मे प्रकाश डाला है।

इस प्रकाशन में उपप्रवर्तक श्री जी के दिशा निर्देशानुसार प्रसिद्ध विद्वान् श्रीचन्द सुराना ने पूर्ण मनोयोगपूर्वक इसका सम्पादन व चित्राकन तैयार करवाया है। श्री सुरेन्द्र जी बोथरा ने अग्रेजी अनुवाद तथा सरदार पुरुषोत्तमसिह जी एव सरदार हरविदरसिंह जी ने चित्र तैयार किये हैं। हम उनके सहयोग के प्रति कृतज्ञ हैं।

इसके प्रूफ सशोधन मे श्री राजकुमार जी जैन आई ए एस (सेवा निवृत्त) मधुवन देहली ने बडी एकाग्रता व गुरुभक्ति की भावना मे नि स्वार्थ सहयोग प्रदान किया है। आपकी सेवाओं का हम आदर करते हैं।

इस प्रकाशन मे गुरुदेवश्री के अनेक श्रद्धालु भक्तों ने तथा पूज्य महासती तपाचार्या श्री मोहनमाला जी म एवं श्रमणीसूर्या उपप्रवर्तिनी डॉ श्री सरिता जी म की प्रेरणा से जिन सज्जनो ने शास्त्र-सेवा का पुण्य अर्जन किया है हम उन सबके सहयोग के प्रति कृतज्ञ हैं।

महेन्द्रकुमार जैन
अध्यक्ष
पद्म प्रकाशन



PUBLISHER'S NOTE

The scriptures are the storehouses of knowledge gathered by the unbroken chain of relentless effort, cogitation, analysis, experiences and revelations by the long tradition of our sages and scholars Since time immemorial this treasure has been enriched by the compilation of eloquent and vivid presentations of individual spiritual experiences, during their long and eventful periods of practice, of great souls who were free of any mundane desires and replete with unique spiritual bliss. That is why this treasure of knowledge contained within the scriptures is richer than the treasure owned by the god of wealth, Kuber, what to say of that belonging to an emperor Such rare treasure has been brought within our easy reach Indeed, we are lucky

Besides being the source of knowledge, the scriptures also teach us the art of living It is comparatively easy to study the scriptures and become a scholar, than to learn the art of living One may find numerous educated and scholarly individuals in the present day world but it is hard to find even a few who have translated the text into their behavior and conduct If we try to learn the art of living from the scriptures and try to mould our life even a little according to that, the scriptures will become our guide as well as teacher

Dashavaikalik Sutra is one such scripture. If you read it and ponder over each verse you will find that your life undergoes a natural change. Your behavior and attitude will improve and become refined We have launched this exorbitantly costly project of publication of the scriptures with Hindi and English translations as well as illustrations for the sole purpose of providing the chance of spiritual uplift through disciplined life to everyone

The principal disciple of U B Pravartak Gurudev Bhandari Shri Padmachandra ji Maharaj, Up-pravartak Shri Amar Muni ji Maharaj,

who himself is a great scholar, launched the unique and prescient project of publishing illustrated Agam literature with Hindi and English translations In the beginning we were doubtful of the response of the readers to these high priced editions The reason being that a majority of readers like light-reading material Even the mention of the term Shastra (scripture) is shocking to them To them the scriptures are meant to be placed on an altar and worshipped with reverence and not to be read. The common reader considers scriptures to be beyond his ability to read and grasp That is why any plan to publish scriptures is not only considered bold but also something against the popular taste and demand

However, on the basis of our own experience of last four-five years we can confidently say that this concept is not entirely true People read, they want to read, they have a liking for reading provided they are able to understand what they read What they read should be interesting This inspired us to adopt and perfect this style of presentation We reproduce the original text in the ancient Ardha-magadhi Prakrit language and give simple translations in modern idiom in Hindi and English, to make it easily readable and comprehensible to the common reader To make the reading all the more enjoyable and to reveal the rich cultural heritage for easy absorption, we also include colourful illustrations

The success of our experiment has given us ample confidence that in future we shall slowly but surely gain new heights In spite of the high cost involved, there is a growing demand of these publications by readers of every sect and school from all parts of the country as well as the world Purchasing and reading a high priced publication is indicative of the interest of the reader Where there is an interest, there is a thirst for knowledge as well as scope of success We are hopeful that our goal of publishing all scriptures will slowly embrace success and serve its purpose of creating a readership of spiritual books

Up-pravartak Shri Amar Muni ji Maharaj initially prepared *Shri Prashna-vyakaran Sutra (two volumes), Shri Sutra-kritang Sutra (two volumes), and Shri Bhagavati Sutra (four volumes)* and they were published After this, he launched the project of publishing illustrated Agam literature Under this project the already published works are—*Illustrated Antakritdasha Sutra, Illustrated Uttaradhyayan Sutra (second edition in process), Illustrated Kalpa Sutra, Illustrated*

Tirthankar Charitra, and Illustrated Jnata Dharma Katha Sutra (Part-1 and 2) These publications have been widely and enthusiastically received by libraries as well as Indian and international scholars of Agams.

In this pious series we are now presenting this *Dashavaikalik Sutra* to our readers. We ar hopeful that this will be even more popular then the earlier publications The reason is that this has some unique features as explained in the preface by Gurudev Shri Amar Muni ji

With the inspiration by Up-pravartak Shri and under his direction, the famous scholar Shrichand ji Surana has edited this work and got the illustrations ready Shri Surendra Bothara has done the English translation and Sardar Purushottam Singh and Sardar Harvinder Singh have made the illustrations We express our gratitude to all these people for the efforts they have put in

Shri Rajkumar Jain, I A S (Retd) of Madhuvan, Delhi has assisted in proof-reading with undivided attention and a selfless feeling of devotion for the guru We highly value his contribution with gratitude

We also express our gratitude to all those who have provided liberal financial contributions These include numerous devotees of Gurudevshri and many others who were inspired by revered Mahasati Tapacharya Shri Mohanmala ji M and Shramanisurya Up-pravartini Dr Shri Sarita ji M

Mahendra Kumar Jain

PRESIDENT

PADMA PRAKASHAN

प्रस्तावना

वैदिक सम्कृति के मूलभूत शास्त्रो को 'वेद' और वौद्ध परम्परा के आधारभूत शास्त्रों को 'पिटक' कहा जाता है। वैसे ही जैनधर्म के आधारभूत शास्त्रो को 'आगम' कहा जाता है।

वैदिक मान्यतानुसार वेद अपौरुषेय हैं, अर्थात् उनका कर्ता कोई पुरुष नहीं है। वर्तमान धारणा के अनुसार अनेक ऋषियो द्वारा दृष्ट मत्रो का सकलन वेद है।

पिटक के मूल प्रवक्ता तथागत बुद्ध व अन्य थेर माने जाते हैं।

आगम के कर्ता विशिष्ट ज्ञानी होते हैं।

सिद्धान्त, भाव या अर्थ रूप में आगम के प्रवक्ता सर्वज्ञ वीतराग अरिहत होते हैं। उनके भावो को सूत्र या शास्त्र रूप प्रदान करते हैं विशिष्ट ज्ञानी चौदह पूर्वधर गणधर या स्थविर। इन विशिष्ट ज्ञानियो को श्रुतकेवली भी कहते हैं। वर्तमान मे उपलब्ध आगमो के प्रथम सूत्रकार प्रथम पट्टधर भगवत् सुधर्मा स्वामी हैं तथा अन्य अनेक श्रुतकेवली।

जैसाकि कहा है-

अत्थ भासइ अरहा सुत्त गंथति गणहरा निउण।
सासणस्स हियट्ठाए तओ सुत्त पवत्तइ॥ -आव नि ९२

आगमो को द्वादशागी या गणिपिटक भी कहते हैं। द्वादशागी नाम सबसे प्राचीन है। द्वादशागी का अर्थ है-१२ अग। वर्तमान मे ११ अग उपलब्ध हैं जिन्हें अग आगम कहते हैं। बारहवे अग का नाम दृष्टिवाद है जो वर्तमान समय मे उपलब्ध नही है। दृष्टिवाद के अनेक भेदा मे एक भेद है 'पूर्वगत' या 'पूर्व'। उत्पाद पूर्व, प्रत्याख्यान पूर्व, ज्ञान प्रवाद, सत्य प्रवाद आदि इसके अनेक भेद हैं। वर्तमान मे वह भी उपलब्ध नहीं हैं किन्तु इनका साराश रूप मे उद्धृत कुछ अश उपलब्ध माना जाता है। जिसका सम्बन्ध प्रस्तुत दशवैकालिक सूत्र के साथ जुडता है।

आगमो के अनेक भेद-प्रभेदो मे आजकल ४५ आगम तथा ३२ आगम की मान्यता लिये दो परम्परा प्रचलित है। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा ४५ आगम मानती है जबकि स्थानकवासी और तेरापथी परम्परा ३२ आगमो को ही मूलभूत प्रामाणिक मानती हैं। बाकी ग्रन्थ उनके विस्तार रूप उत्तरकालीन माने जाते है।

३२ या ४५ आगमो की मान्यता मे दशवैकालिक सूत्र मूल आगमो की श्रेणी मे आता है और इसके शास्त्र रूप मे रचनाकार श्रुत-केवली शय्यभवाचार्य माने जाते हैं।

दिगम्बर परम्परा में भी दशवैकालिक की प्राचीन मान्यता रही है। धवला, जयधवला आदि में दशवैकालिक का उल्लेख मिलता है।

नामकरण का प्रयोजन

दशवैकालिक नाम के पीछे एक प्राचीन घटना जुड़ी हुई है। भगवान महावीर निर्वाण के लगभग ७० वें वर्ष मगध में नन्द साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी। इसी दशक में अर्थात् वीर निर्वाण के ७५ वें वर्ष (वि पूर्व. ३९५ वर्ष) में तृतीय पट्टधर आर्य प्रभव का स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् आर्य शय्यभव उनके पट्टधर बने। आर्य शय्यभव चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली थे। उन्होंने अपने पुत्र-शिष्य मनक को अल्प समय मे शास्त्रों का सार रूप ज्ञान प्रदान करने के लिए इस सूत्र की रचना की। इसके दस अध्ययन है तथा यह विकाल (शास्त्र-स्वाध्याय के विहित काल से अतिरिक्त काल) मे रचा गया। जिस कारण इसका नाम दश+वैकालिक प्रसिद्ध हुआ।

दशवैकालिकसूत्र स्वतन्त्र आगम नही होकर आगमो का निचोड़ अथवा संकलन है। जिसे शास्त्रीय भाषा मे निर्यूहण कहा जाता है। कुछ आचार्यों की मान्यता है कि दृष्टिवाद के पूर्वों से इसका संकलन किया गया है। जैसे–

आत्म-प्रवाद पूर्व से	–	चौथा अध्ययन
कर्म प्रवाद पूर्व से		पॉचवा अध्ययन
सत्य प्रवाद पूर्व से	–	सातवाँ अध्ययन
प्रत्याख्यान पूर्व से	–	बाकी अध्ययन

आयप्पवाय पुव्वा निज्जूढा धम्मपन्नत्ती।
कम्मप्पवाय पुव्वा पिंडस्स उ एसणा तिविहा।
सच्चप्पवाय पुव्वा निज्जूढा होइ वक्कस्स।
अवसेसा निज्जूढा नवमस्स उ तइय वत्थुओ। -आव नि १६-१७

दूसरी मान्यता के अनुसार इसका सकलन द्वादशागी से किया गया है। इस सम्बन्ध मे आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज ने अपने विस्तृत अनुसंधान के साथ एक प्रामाणिक-अनुसधान प्रस्तुत किया है। जैसे–

१ प्रथम अध्ययन की रचना का आधार है अनुयोगद्वार सूत्र मे श्रमण की १२ उपमाओं मे एक उपमा है भ्रमर की। भ्रमर के दृष्टान्त से प्रथम अध्ययन में श्रमण की माधुकरी वृत्ति का वर्णन है।

२ द्वितीय अध्ययन का आधार है–उत्तराध्ययन सूत्र का २२ वॉ अध्ययन। इस अध्ययन गत विषय के साथ अनेक गाथाएँ भी मिलती-जुलती है।

३. तृतीय अध्ययन का विषय निशीथ सूत्र से लिया गया है।

४. चतुर्थ अध्ययन का विषय आचारांग सूत्र के २४ वें अध्ययन के अनुसार रचा गया है।

५ पॉचवे अध्ययन की रचना आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कंध के पिण्डैषणा नामक प्रथम अध्ययन के आधार पर की गई।

६ छठा अध्ययन समवायाग सूत्र के अष्टादश समवाय की शिक्षाओं का विवेचन है।

७ मातवा अध्ययन आचाराग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कध के तेरहवें भाषा नामक अध्ययन से सग्रहीत है।

८ आठवा अध्ययन स्थानाग सूत्र के आठवें स्थान से विवेचनपूर्वक लिया गया है।

इसी प्रकार नवम, दशम अध्ययन का विषय भी भिन्न-भिन्न आगमों की शिक्षाओं का सकलन है।

इम प्रकार प्रथम मान्यता की अपेक्षा यह मान्यता अधिक मगत और बलवान प्रतीत होती है।

–(आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज प्रस्तावना पृ ९)

दशवैकालिक का वर्ण्य-विषय

यो तो यह सूत्र श्रमण आचार से सम्बन्धित है। इसमें श्रमण जीवन चर्या का ही विविध रूप मे वर्णन हुआ है। इसके दस अध्ययनो मे मुख्य रूप में निम्न विषयों का वर्णन है–

प्रथम अध्ययन में धर्म की महिमा व भिक्षाचरी का महत्त्व। द्वितीय अध्ययन मे सयम मे धैर्य रखने का उपदेश। तृतीय अध्ययन मे सयम की निर्दोषता के लिए छोटे-छोटे नियमो का वर्णन।

चतुर्थ अध्ययन मे अहिसा व जीव-रक्षा की दृष्टि से षट्जीवो की रक्षा का उपदेश।

पचम अध्ययन मे शुद्ध भिक्षाचरी की विधि।

छठे अध्ययन मे अष्टादश स्थानो के रूप मे महाचार का कथन।

सातवे अध्ययन मे अहिमा की दृष्टि से भाषा-शुद्धि का वर्णन।

आठवे अध्ययन मे आचार की विशिष्ट शिक्षाएँ।

नवे अध्ययन मे विनय एव चार समाधियो का वर्णन।

दशवे अध्ययन मे भिक्षु का स्वरूप दर्शन।

दशवैकालिक सूत्र के व्याख्या ग्रन्थ

आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज ने जब सर्वप्रथम दशवैकालिक सूत्र पर हिन्दी भाष्य लिखा तो उनके समक्ष दशवैकालिक की निर्युक्ति, टीका एव दीपिका तीन व्याख्या ग्रन्थ विद्यमान थे।

निर्युक्ति की रचना का समय है विक्रम की पॉचवी-छठी शताब्दी। इसके रचयिता हैं भद्रबाहु द्वितीय।

टीका के कर्त्ता हैं आचार्य श्री हरिभद्र सूरि। इनका समय है विक्रम की आठवी शताब्दी।

दीपिका के कर्त्ता हैं श्री समयसुन्दरगणी। समय विक्रम की १६वी शताब्दी।

इसके बाद दशवैकालिक सूत्र पर रचित प्राचीन ज्ञान भण्डारों से दो महत्त्वपूर्ण चूर्णियां मिली हैं। जिनके अनुसंधान का श्रेय आगम प्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजय जी को है। इनमें प्रथम विशिष्ट चूर्णिकार अगस्त्यसिंह स्थविर हैं, इसकी रचना का समय विक्रम की तीसरी शताब्दी का अनुमान है। आचार्य महाप्रज्ञ जी के मतानुसार अगस्त्यसिंह स्थविर देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के उत्तरवर्ती होने चाहिए और उनका समय होना चाहिए विक्रम की छठी शताब्दी। दूसरी महत्त्वपूर्ण चूर्णि है जिनदास महत्तर कृत। इनका समय विक्रम की ७ वीं शताब्दी माना जाता है।

ये व्याख्या ग्रन्थ दशवैकालिक सूत्र के अभिप्राय और परम्परागत अर्थ को उद्घाटित करने मे बहुत महत्त्वपूर्ण है। उस समय की अनेक परम्पराओं व सम्बन्धित कथाओं का उल्लेख इन चूर्णियो मे हुआ है।

हमने अपनी सक्षिप्त व्याख्या शैली मे उक्त सभी सामग्री का अवलोकन करते हुए प्रस्तुत दो व्याख्याओं का आधार लिया है।

१ आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज कृत आत्म-ज्ञान-प्रकाशिका हिन्दी भाषा टीका। रचना का प्रकाशन समय वि स २००३। ईस्वी सन् १९४६।

२ दसवेआलिय हिन्दी अनुवाद तथा विशिष्ट टिप्पण · सम्पादक मुनि नथमल (वर्तमान आचार्य महाप्रज्ञ)। प्रकाशन समय वि म २०३१ ईस्वी सन् १९६४।

प्रस्तुत सूत्र के अनुवाद तथा विशेषार्थ मे उक्त दोनो ही ग्रन्थ हमारे सामने रहे हैं और हमने तटस्थ भाव से इनका उपयोग किया है। एक खास बात, आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज कृत मूल गाथाओ का अनुवाद भावो को पूर्ण स्पष्ट करने वाला है। यह सरल तथा बहुत ही सटीक भाषा मे हुआ है। कही-कही तो अनुवाद की भाषा इतनी सशक्त और बँधी हुई है कि उसकी शब्दावली बदलना भी सहज नही। जो स्पष्टता उनकी शब्दावली मे है उसे देखकर मन कहता है कि इससे अधिक सुन्दर, समर्थ और सटीक अनुवाद शायद किया नही जा सकता। यही कारण है कि मूल गाथाओं को अपनी भाषा मे अनुदित करते समय आखिर उन्ही शब्दों पर आना पड़ता है जिनका उपयोग श्रद्धेय आचार्यश्री ने किया है। इसलिए पाठकों को कही-कहीं उस अनुवाद की नकल समझने का भ्रम भी हो सकता है, परन्तु मै अपने परम श्रद्धेय आगम ज्ञानमहोदधि गुरुदेव की नकल भी कर सकूँ तो मेरे लिए सौभाग्य की बात है और अपने अधिकार क्षेत्र में है। मेरा प्रयत्न अपनी भाषा-शैली मे अनुवाद करने का ही रहा है, परन्तु आगम का हार्द अधिक स्पष्ट करने के लिए शब्दो की अधिक खींचतान या घुमाव-फिराव न करके मैंने आचार्य भगवन्त की भाषा को भी ग्रहण किया है जो आगम पाठी पाठको के लिए न्याय सगत ही होगा। अस्तु।

दशवैकालिक का महत्त्व

दशवैकालिक सूत्र की रचना से पूर्व आगम पढ़ने के क्रम मे पहले आचारांग सूत्र और फिर उत्तराध्ययन सूत्र पढ़ने का विधान था। इसकी रचना होने पर आचारांग का स्थान दशवैकालिक को प्राप्त हो गया। दीक्षा लेते ही श्रमण को सबसे पहले दशवैकालिक और फिर उत्तराध्ययन पढ़ाया जाने लगा। यह परिवर्तन भी दशवैकालिक की महत्ता स्थापित करता है। इस आगम को आचार-बोध का एक अत्यन्त सरल और सारपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया।

प्राचीन समय मे आचाराग सूत्र का 'शस्त्र परिज्ञा' अध्ययन पढ़े, समझे बिना महाव्रतो की उपस्थापना नही की जाती थी। इसी प्रकार आचाराग का पिण्डैषणा अध्ययन पढ़े बिना भिक्षा के लिए जाने की अनुमति नही थी, किन्तु अब उनकी पूर्ति केवल दशवैकालिक सूत्र के षड्जीवनिका 'चतुर्थ' अध्ययन तथा पचम पिण्डैषणा अध्ययन पढ़ने मे ही हो जाती है -इससे भी दशवैकालिक की महिमा व उपयोगिता प्रगट होती है।

मेरी दृष्टि मे दशवैकालिक सूत्र

पूज्य गुरुदेव की कृपा से मुझे प्रारम्भ से ही आगम स्वाध्याय की प्रेरणा मिलती रही है। आगम स्वाध्याय व शास्त्र परिशीलन करता रहता हूँ। आगमो के प्रति मेरे हृदय मे अटल श्रद्धा तो है ही साथ ही आगम स्वाध्याय से चित्त की एकाग्रता, निर्मलता और सयम की परिशुद्धि होती है यह भी मेरा अनुभव है। आगमो मे दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र मेरे स्वाध्याय के प्रिय आगम रहे हैं। किन्तु उत्तराध्ययन मे भी अधिक रुचिकर और प्रेरणाप्रद मुझे दशवैकालिक लगता है।

कभी-कभी मै सोचता हूँ कुछ आगमो की अपनी-अपनी एक विशेषता होती है जैसे आचाराग सूत्र की आर्ष शैली ! अत्यन्त भाव-भरी, छोटे-छोटे सूत्र वचनो मे गम्भीर अर्थ की अभिव्यजना उसकी अलग ही एक शैली है।

सूत्रकृताग की दार्शनिक दृष्टि और विभिन्न दर्शनो के बीच अनेकान्त दर्शन की प्रस्तुति की शैली अनूठी है।

स्थानाग की चौभगिया, विविध व्यावहारिक उपमा, उदाहरणा द्वारा विषय को विस्तृत तथा रुचिकर एव ज्ञानवर्द्धक बनाने की उसकी प्रतिपादन शैली भी विलक्षण है।

भगवती सूत्र जहाँ ज्ञान-विज्ञान का महासागर है वही उसमे आये भिन्न-भिन्न विषयो के प्रश्न और उत्तर इतनी रोचकता लिए है कि ज्ञान भी मिलता है और मनोरजन भी।

ज्ञातासूत्र के रूपक और उदाहरण, दृष्टान्त और दार्ष्टान्त अपनी अनोखी शैली रखते है। इसके साथ ही भाषा मे साहित्य-सी अलकारिता व लालित्य देखते ही बनता है।

उपासकदशा का व्रत-विवेचन और उपसर्गो का लोमहर्षक वर्णन पढ़ते-पढ़ते ही मन अभिभूत हो उठता है।

विपाक सूत्र का पुण्य-पाप कर्मों का विपाक बताने वाले दृष्टान्त पढ़कर तो मन रोमांचित हो जाता है।

इसी प्रकार प्रज्ञापना की प्ररूपणा शैली, इसमें वर्णित भेदोपभेद की गहराई में उतरने के लिए सूक्ष्म प्रज्ञा और स्थिर मेधा की जरूरत है।

उत्तराध्ययन सूत्र की उक्तियाँ, सूक्तियाँ, विविध उपमाएँ, अलंकारिक प्रयोग मन को मुग्ध कर देते हैं।

किन्तु इन सबके बाद दशवैकालिक सूत्र की अपनी अलग ही पहचान है और यह एक नहीं अनेक विशेषताओ विलक्षणताओं से भरा है।

पहली बात, दशवैकालिक सूत्र की शैली सूत्रात्मक भी है और पद्यात्मक भी; इसलिए ये वचन सुभाषित जैसे हृदयग्राही हो जाते हैं। फिर विषय की विविधता भी गुलदस्ते जैसी मनोहारी छटा दिखाती है। अन्य-अन्य आगमो मे अधिकतर ज्ञान, कर्म, जीव-भेद, आचार-भेद आदि का जटिल आध्यात्मिक विषय रहता है। किन्तु इसमे अध्यात्म, नीति, व्यवहार, आचार आदि सब कुछ समाया है जैसे देखन में छोटे लगे, ज्यो नाविक के तीर।

इसी प्रकार दशवैकालिक के सुवचन छोटे-छोटे सुभाषित के रूप मे जीवन का बहुत गहरा सन्देश छुपाये हुए हैं। इसका एक-एक सूक्त लाखीणा हीरा है। यदि किसी एक वचन पर भी आचरण कर लिया जाय तो जीवन बदल जायेगा। इसके श्लोक गागर मे सागर की तरह अर्थपूर्ण हैं। भाषा भी प्राजल है और प्रतिपादन शैली सीधी सहज हृदयस्पर्शी है। प्रस्तावना विस्तृत हो जाने के भय से मे यहाँ कुछ उदाहरण ही दूँगा-जैसे

कामे कमाहि कमिय खु दुक्ख–२/५
कामनाओं को दूर कर, दु ख दूर हो जायेगा।

जय चरे जय चिट्ठे- ४/८
यतनापूर्वक चलो, यतनापूर्वक खडे रहो, सब कुछ यतनापूर्वक करो।

अदीणो वित्तिमेसिज्जा–५/२/२८
जीवन निर्वाह के लिए दीन, मुँहताज न बनो।

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो–६/२१
मूर्च्छा, ममता भाव ही परिग्रह है।

वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमिअ–७/५६
हितकारी और प्रिय वचन बोलो।

बहुं सुणेहिं कण्णेहिं बहुं अच्छीहिं पिच्छइ।
न य दिट्ठ सुय सव्व भिक्खु अक्खाउमरिहइ। –८/२०

कानों से बहुत सुनने मे आता है, ऑखो से बहुत देखा जाता है। किन्तु देखा, सुना सब मुँह से नहीं कहना चाहिए।

बीय त न समायरे–८/३१
एकबार भूल होने पर दुबारा उसे मत दुहराओ।

लोहो सव्व विणासणो–८/३८
लोभ सर्वनाश करने वाला है।

राइणिएसु विणयं पउंजे–८/४१
वडो का सन्मान करो।

कुज्जा साहूहि सथव–८/५३
भलो की सगति करो।

धम्मस्स विणओ मूलं–९/२/२
धर्म का मूल विनय है

असविभागी न हु तस्स मुक्खो–९/२/२३
साथियों में बॉटकर नहीं खाने वाले को मोक्ष नही मिलता।

नो इह लोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा–९/४/४
लौकिक इच्छाओं मे तप मत करो।

न पर वइज्जा सि अयं कुसीले–१०/१८
दूसरे को दुराचारी या चरित्रहीन मत कहो।

सपेहए अप्पगमप्पएण–चू २/१२
अपने आप अपना निरीक्षण करो।

अप्पा खलु सयय रक्खियव्वो–चू २/१६
अपनी इन्द्रियॉ और मन की रक्षा स्वय करो।

इस प्रकार सैकड़ो सूक्तियाँ इस आगम-सागर मे वहुमूल्य मणियों की भॉति चमक रही हैं। ये सुभाषित कोई गहन आध्यात्मिक और दार्शनिक नही किन्तु व्यावहारिक जीवन के पथ-प्रदीप हैं। जीवन मे इनका अनुसरण करके हम अपना व्यावहारिक जीवन सुन्दर और शान्तिमय बना सकते हैं। समाज, परिवार और राजनीति के द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्व, घात-प्रतिघात के बीच व्यक्ति किस प्रकार स्वय

को संतुलित और तनाव मुक्त रख सकता है इस विषय का बहुत ही अनुभूति पूर्ण उपदेश दशवैकालिक में विद्यमान है।

मेरा विश्वास है शायद इसकी इतनी व्यावहारिक उपयोगिता को देखकर ही श्रुतज्ञानियों ने इसे साधु जीवन के प्रवेश द्वार का प्रहरी बनाया हो और दशवैकालिक के कुछ अध्ययनों का अध्ययन किये बिना उसे साधु जीवन के महाव्रतो की उपस्थापना (बड़ी दीक्षा) का अधिकारी भी नहीं बताया है। यह इसकी महत्ता और उपयोगिता का प्रमाण है। इसलिए मेरे विचार में दशवैकालिक सूत्र केवल श्रमण आचार का ही मुख्य आगम नहीं, किन्तु मानव-आचार का मूल ग्रन्थ कहा जा सकता है। जो स्थान वैदिक परम्परा में मानव धर्मशास्त्र मनुस्मृति का है जैन परम्परा में वही स्थान मानव धर्म प्रतिपादक दशवैकालिक सूत्र का है। ऐसा मेरा अभिमत है। और हो सकता है इस सूत्र का गहराई से अनुशीलन करने वाले पाठक भी मेरे विचार से सहमत होंगे। अस्तु

वर्तमान सस्करण

दशवैकालिक सूत्र पर अब तक अनेक सस्करण निकल चुके हैं। इसकी प्राचीन व्याख्याओं को आधार मानकर जो विवेचन और विम्तार अब तक के टीकाकार विद्वानो ने किया है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैंने सम्पादन के समय इसके आठ, दस संस्करण पढ़े। उनका अनुशीलन किया। इसके बाद मुझे इसके दो सस्करण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और ज्ञानवर्धक लगे। उन्हीं को मैंने अपना आदर्श माना है।

पहला सस्करण है, आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज कृत हिन्दी विवेचन। इसकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। यह व्याख्या आज से लगभग ५३-५४ वर्ष पूर्व लिखी गई थी। उस समय तक आगम अनुसधान की इतनी सामग्री सुलभ नही थी। न विशेष ग्रन्थ उपलब्ध थे और न ही इस दिशा में कोई मार्गदर्शक शैली सामने थी। आचार्य श्री ने स्वय की प्रकृष्ट प्रतिभा व गहन आगम ज्ञान के बल पर तथा प्राकृत-मस्कृत भाषा का अधिकार पूर्ण ज्ञान होने के कारण जिस शैली की स्थापना की वह आज भी मार्गदर्शक है।

आचार्य श्री ने इस आगम का जो भावस्पर्शी सरल अनुवाद किया है वह इतना सटीक और उपयुक्त शब्दावली में है कि आज भी इसमे कोई सशोधन, परिवर्तन की सभावना नहीं दीखती। यदि कही उसके शब्द बदलने का प्रयास किया जाय तो शायद वे नये शब्द आगम के अभिप्राय को इतनी मही अभिव्यक्ति नही दे सकते। ऐसा लगता है कि भाषा की फ्रेम में उन्होने जो शब्द-मणि जड दिये हैं उन्हें हटाने पर उनकी चमक-दमक वाला दूसरा उपयुक्त मणि वहाँ नहीं मिल सकेगा। मूलार्थ के बाद टीका में आगम परम्परा और टीकाकारों के अभिप्रायो का समन्वय करते हुए बहुत ही युक्ति-सगत लोक भोग्य विवेचन किया है।

दूसरा संस्करण है तेरापथ के वर्तमान आचार्य महाप्रज्ञ जी द्वारा संपादित। यह भी अपनी शैली का सुन्दर, अनूठा और बहुत ही श्रम माध्य अनुसंधान पूर्ण सपादन है। यद्यपि अनुवाद की भाषा

शैली व संपादन की विद्वत्ता प्रदर्शित करने वाली अटपटी शैली मे मैं सहमत नहीं हूँ, किन्तु उन्होंने प्राचीन व वर्तमान साहित्य का अनुसधान कर जो ज्ञानवर्द्धक व आगम-हार्द को उद्घाटित करने वाले तथ्य संकलित किये है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व प्रशसनीय हैं।

मैंने अपने सपादन में इन दोनो सस्करणो को सन्मुख रखा है और इनसे जहाँ-जहाँ जो भाव या शब्द, सन्दर्भ या विवेचन ग्रहण किया है वहाँ उसका उल्लेख भी किया है, और प्रमादवश कही रह भी गया हो तो मै उक्त आगम विद्वद् मनीषियों का आभारी हूँ। उनकी ज्ञान-साधना का कृतज्ञ हूँ कि आने वाली पीढी के लिए उन्होंने अपने दीर्घकालीन अनुभव-ज्ञानामृत को प्रस्तुत कर महान उपकार किया है।

मैंने अब तक जिन सचित्र आगमो का सपादन किया है उनमे अधिकतर कथा प्रधान होने से चित्राकन मे विशेष कठिनाई नहीं आई। यह आगम आचार-प्रधान होने से इसके लिए चित्रों का चयन और भावा के अनुरूप सयोजना करना अधिक कठिन था। किन्तु मेरे अनन्य सहयोगी और आगम सपादन के अनुभवी विद्वान् श्रीचन्द जी सुराना ने बडी कुशलता के साथ इसके चित्रों की आधार भूमि तैयार की है और उसके आधार पर चित्रकार से भावपूर्ण चित्र बनवाये है। उनके सहयोग के प्रति मै हृदय से आभारी हूँ। साथ ही श्री सुरेन्द्र जी बोथरा ने सुन्दर प्रवाहयुक्त भाषा मे अग्रेजी अनुवाद कर इसे अहिन्दीभाषी पाठको के लिए भी उपयोगी बना दिया है।

सचित्र आगम प्रकाशन के अत्यन्त व्यय पूर्ण कार्य मे अर्थ सहायको का पृष्ठ बल अपेक्षित रहता है। इस कार्य में प्रेरणा और सहयोग दोनो ही मूल्यवान हैं। इस आगम प्रकाशन मे पूज्या तपाचार्य श्री मोहनमाला जी म. एवं श्रमणी सूर्या विदुषी उप्रवर्तिनी डॉ श्री सरिता जी म की प्रेरणा से कुछ उदारमना सज्जनो ने अर्थ सहयोग प्रदान किया है। तथा पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति श्रद्धाशील भक्तो ने भी श्रुत-सेवा के पुण्य कार्य मे अपना उदार सहयोग प्रदान किया है। वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

मुझे विश्वास है इस कार्य मे दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन-व्यापक रूप मे होगा और इस शास्त्र की जीवन-निर्माणकारी शिक्षाएँ सभी के जीवन को आनन्दमय बनायेगी। इसी विश्वास के साथ–

—उपप्रवर्तक अमरमुनि

पदम धाम,
नरेला मण्डी, दिल्ली

PREFACE

The basic scriptures of the Vedic tradition are *the Vedas* and those of the Buddhist tradition are *Tripitaks* The Jains call their basic scriptures—*Agams*

According to the *Vedic* belief the *Vedas* are divine. Which means that they are not the creation of some human being The concept in vogue now is that the *Vedas* are the compilations of numerous *mantras* that were revealed to various sages

The Buddha and some other *Thers* (senior monks) are believed to be the original authors of the *Pitak*

The authors of the *Agams* were great visionaries and scholars.

The principles and the inherent message contained in the *Agams* were given by the omniscient and detached *Arihants* The themes and ideas thus acquired were composed and compiled in the form of *sutras* (aphorisms) into scriptures by the great visionaries and scholars popularly known as the knowers of the fourteen *Purvas*, or *Ganadhars* (principle disciples) and *sthavirs* (senior ascetics) These great sages were also called *Shrut Kevali* (omniscient in terms of all scriptural knowledge) The first compiler of the available *Agams* was Ganadhar Sudharma Swami, the first head of the religious order formed by Bhagavan Mahavir Many other *Shrut Kevalis* in his lineage augmented his work (*Avashyak Niryukti* 92)

The name of the complete set of original *Agams* (believed, by the Shvetambar tradition, to be the original compilation of the teachings of Bhagavan Mahavir) is *Dwadashangi* or *Ganipitak* (The Set of Works by Ganis) *Dwadashangi* is the oldest name and it means—The twelve *angas* (parts) At present only eleven *Angas* are available This set of works is called the *Anga Agams* The name of the twelfth *Agam* is *Drishtivad* and it is not available now There are said to be many sections of this *Drishtivad*, one of which is *Purvagat* or *Purva* which in turn are fourteen in number. Even these are not available now However, it is believed that some parts of these are available as brief excerpts and these are included in this work known as *Dashavaikalik Sutra*

There are numerous traditional beliefs about the number of available *Agams* The two extant schools being of 45 *Agams* and 32 *Agams*. The image-worshiping Shvetambar tradition is the 45 *Agam* school whereas the Sthanakvasi and the Terpanthi sects among the Shvetambars believe that only 32 of the *Agams* are original and authentic Others being elaborative or auxiliary works of the later period

In both these traditions *Dashavaikalik Sutra* comes in the category of *Mool Agams* and its author is said to be Shrut Kevali Acharya Shayyambhav

There are evidences of acceptance of *Dashavaikalik Sutra* as an ancient scripture even in the Digambar tradition There are mentions of this work in the famous Digambar scriptures like *Dhavala* and *Jaidhavala*

THE NAME

There is a story connected with the naming of this work In the 70th year after the nirvana of Bhagavan Mahavir the Nand dynasty had come to power in Magadh During the same decade, in the 75th year after the nirvana of Bhagavan Mahavir (395 B V/452 B C), Arya Shayyambhav became the head of the order after the death of Arya Prabhav, the third head of the order established by Bhagavan Mahavir Arya Shayyambhav was a *Shrut Kevali* having the knowledge of all the fourteen *Purvas* He wrote this book for the purpose of imparting the knowledge of all the scriptures in a condensed form to his son and disciple Manak It has ten chapters and it was written not during the time earmarked for studies in the daily routine of ascetics It was written in overtime or the *Vikal* and therefore it was called *Dash* + *Vaikalik* and became famous as *Dashavaikalik Sutra*

Dashavaikalik Sutra is in fact not an independent Agamic work It is a compilation of the essence of the *Agams* The technical term for this style is *Niryuhan* Some *Acharyas* believe that it was compiled from some *Purvas* of *Drishtivad* For instance—

The fourth chapter is from *Atma-pravad Purva*, the fifth chapter is from *Karma-pravad Purva*, the seventh chapter is from *Satya-pravad Purva*, and the other chapters are from *Pratyakhyan Purva* *(Avashyak Niryukti 16, 17)*

According to another belief this was compiled from the *Dwadashangi*. Acharyasamrat Shri Atmaram ji M has supported this opinion on the basis of his extensive research The salient points of his study are—

1 The first chapter has been inspired by one of the 12 metaphors used for a *shraman* in *Anuyogdvar Sutra* The metaphor of bumble-bee appears to have been taken from there and used aptly to describe the ascetic attitude guiding the alms-seeking

2 The second chapter is based on the 22nd chapter of the *Uttaradhyayan Sutra* Besides the similarity of the theme some of the verses are also very similar

3 The third chapter is based on *Nisheeth Sutra*

4 The fourth chapter deals with the subject dealt in the 24th chapter of *Acharang Sutra*

5 The fifth chapter is based on the first chapter, titled *Pindaishana*, of the second part of *Acharang Sutra*

6 The sixth chapter appears to be a commentary on the lessons about 18 *Samvayas* (relationship between virtues and the virtuous) in *Samvayang Sutra*

7 The seventh chapter is a compilation of selections from the thirteenth chapter, titled *Bhasha* (language), of the second part of *Acharang Sutra*

8 The eighth chapter has been excerpted from the text and commentary of the eighth chapter of *Sthanang Sutra*

In the same way the ninth and tenth chapters are also compilation of the lessons from different *Agams* All this supports the second belief rather than the first one (Preface of *Dashavaikalik Sutra* by Acharyashri Atmaram ji M page 9)

THE SUBJECT

This *Sutra* is about the code of ascetic conduct It details the routine of the ascetic life from different angles The important subjects discussed in the ten chapters are—

The first chapter deals with the importance of *Dharma* and alms-seeking

The second chapter deals with the advise of being steadfast in discipline

The third chapter deals with the simple rules for avoiding faults in discipline

The fourth chapter deals with the message of clemency towards six categories of living beings based on *ahimsa*

The fifth chapter deals with the method of faultless alms-seeking

The sixth chapter deals with the *Mahachar* (the lofty conduct) in the form of eighteen points

The seventh chapter deals with the purity of language based on *ahimsa*

The eighth chapter deals with the special teachings about conduct

The ninth chapter deals with the humbleness and four types of bliss

The tenth chapter deals with the true form of an ascetic

THE COMMENTARIES

When Acharyashri Atmaram ji M started writing a Hindi commentary on *Dashavaikalik Sutra* he had before him three independent works of commentary on this scripture—*Niryukti*, *Teeka*, and *Deepika*

The historical period of writing of *Niryukti* is the fifth-sixth century of the Vikram era (Vikram era started 57 years before the Christian era) and it is credited to Bhadrabahu second

The *Teeka* was written by Acharya Haribhadra Suri during the 8th century of the Vikram era

The *Deepika* was written by Samayasundar Gani during the 16th century of the Vikram era

Later Agam Prabhakar Muni Shri Punya Vijay ji, during his extensive research found two important *Churnis* (commentary works) on *Dashavaikalik Sutra* in some ancient libraries One of these is by Agastya Simha Sthavir (probable period is 3rd century Vikram) According to Acharya Mahaprajna the period of Agastya Simha Sthavir should be later than that of Devardhigani Kshamashraman, therefore the 6th century Vikram The second *Churni* is by Jindas Mahattar, 7th century Vikram

These explanatory works are very valuable in understanding the traditional meaning and theme of *Dashavaikalik Sutra* They also contain mentions of numerous religious traditions of that period and some connected stories

After studying all the available material two books were selected as the source books while preparing this edition They are—

1 Atma-Jnana-Prakashika Teeka of *Dashavaikalik Sutra* in Hindi by Acharyashri Atmaram ji M published in 2003 Vikram/1946 A D

2 Dasavealiyam with Hindi Translation and special notes edited by Muni Nathmal (now Acharya Mahaprajna) published in 2031 Vikram/1964 A.D

During the translating and preparing elaborations for this edition we have consulted and used these two reference works impartially It would not be out of place to mention a special observation about Acharyashri Atmaram ji M. 's work here It has been done in a simple and flowing language with a very appropriate selection of words At many places the selection of words and composition touches such heights of aptness that any effort to alter even a single word becomes almost impossible. Coming across the inherent clarity of meaning, at more places than not, in this translation, all the editors involved were unanimous in commenting that a more eloquent and apt translation was unthinkable That is the reason that while translating in our words, time and again we had to leave the alternatives and use the same words that revered Acharyashri used. At such places this edition may appear to be a copy of that under reference, to some scholarly readers However, it is a matter of honour for me to be able to follow such an illustrious forebearer of my on tradition, and rightfully so It has been my effort to translate the text in my own language but wherever I found it appropriate, for the purpose of conveying the spirit of the Agam, I have used the language of Acharyashri instead of playing with words I am sure this would be of a greater benefit to the readers

THE IMPORTANCE

Before the writing of *Dashavaikalik Sutra*, in the Jain ascetic tradition, the order of *Agam* studies commenced with *Acharang Sutra* at the first place, followed by *Uttaradhyayan Sutra* Once *Dashavaikalik Sutra* was available it replaced *Acharang Sutra* Immediately after *Diksha* a *shraman* was taught *Dashavaikalik Sutra* and then *Uttaradhyayan* followed by the other *Agams* This vital shift is an evidence of the importance of this work It fitted the slot it deserved in the ascetic life of a Jain *shraman*; that of a comprehensive compendium of ascetic conduct

During the period preceding the writing of *Dashavaikalik Sutra* the accepting of the five vows was confirmed only after a newly initiated ascetic had read and understood the *Shastra Parijna* chapter of *Acharang Sutra* Further, he was not allowed to go out to seek alms unless he had read and understood the *Pindaishana* chapter of the *Acharang Sutra* But in the post *Dashavaikalik Sutra* period these long and difficult

chapters were replaced by comparatively short and easy fourth and fifth chapters of *Dashavaikalik Sutra* This fact also enhances the importance and utility of this work

MY VIEW

With the blessings of revered Gurudev I got inspired to study the *Agams* since the beginning of my ascetic life I continue to do so even now I have an unwavering faith in the *Agams* It is my personal experience that the study of *Agams* helps in gaining concentration and purity of mind and faultless following of the code of conduct *Dashavaikalik Sutra* and *Uttaradhyayan* have been my favourite *Agams* Even among these I find the former more interesting and inspiring

I often feel that every *Agam* has some attributes unique to it For example—

Acharang Sutra uses a style of conveying profound meaning in few words, popularly known as the *sutra* style

Sutrakritang philosophically presents the *Anekantvad* (the Jain theory of relativity of truth) along with a comparative study of various other schools of philosophy

Sthanang Sutra is unique in its quadrilateral categorization, earthly metaphors and examples, and elaborative, interesting and eloquent style

Bhagavati Sutra, the great ocean of knowledge, makes even the abstract subjects easy as well as interesting with its question-answer or dialogue style

Jnata Sutra, besides the liberal use of allegories, examples, metaphors, and elucidations, is written in a highly ornamental, graceful and eloquent style

The detail discussions of vows and the exciting description of afflictions compiled in *Upasakdasha* are spellbinding The precipitation and fruition of pious and evil *karmas* explained with the help of examples are electrifying

The mystifying style and the puzzling categorizations included in *Prajnapana* require profound wisdom and sharp intelligence to unravel and grasp the meaning

The pithy comments, aphorisms, metaphors, and decorative language of *Uttaradhyayan Sutra* are highly exhilarating

But all said and done, *Dashavaikalik Sutra* has its own important place because it combines many of the said attributes

First of all, *Dashavaikalik Sutra* is written in verse as well as short passages of prose This makes it easy to understand and remember, as if it was a collection of aphorisms Secondly the variety of subjects contained gives it the attractive appearance of a bouquet. Different *Agams* discuss different themes, simple as well as complicated, but *Dashavaikalik Sutra* is a collection of all these themes including philosophy, ethics, behavior, and conduct. It is concise but profound

The aphorisms contained within *Dashavaikalik Sutra* have enriching messages for the benefit of humanity Every such aphorism is like a million rupee diamond If one follows the message contained in just one sentence his life will undergo a healthy change Every verse is so deeply meaningful that it may be appropriately called an urn containing an ocean It has been composed in a forceful language and eloquent style I will quote only a few examples to avoid making this preface too long—

कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं–२/५

Get rid of desires, miseries will disappear —2/5

जयं चरे जयं चिट्ठे–४/८

Be cautious in all you do including moving and standing —4/8

अदीणो वित्तिमेसिज्जा–५/२/२८

Do not demean yourself for the sake of subsistence —5/2/28

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो–६/२१

Fondness is possession —6/21

वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमिअं–७/५६

Use sweet and benefic language —7/56

बहु सुणेहि कन्नेहि बहु अच्छीहिं पिच्छइ।

न य दिट्ठं सुयं सव्वं भिक्खु अक्खाउमरिहइ। –८/२०

You see a lot through eyes and hear a lot through ears but utter not all what you saw or heard —8/20

बीयं तं न समायरे–८/३१

Do not commit a mistake twice —8/31

लोहो सव्व विणासणो–८/३८

Greed is all destroying —8/38

राइणिएसु विणयं पउजे–८/४१

Respect elders.—8/41

कुज्जा साहूहिं सथव–८/५३

Mix with pious people —8/53

धम्मस्स विणओ मूलं–९/२/२

Humbleness is the root of religion —9/2/2

असविभागी न हु तस्स मुक्खो–९/२/२३

He who does not share his meals with colleagues does not attain liberation —9/2/23

नो इह लोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा–९/४/४

Do not indulge in austerities in order to fulfill mundane desires —9/4/4

न पर वइज्जा सि अय कुसीले–१०/१८

Do not call others corrupt and debased 10/18

सपेहए अप्पगमप्पएण–चू २/१२

Indulge in self-review —C-2/12

अप्पा खलु सयय रक्खियव्वो–चू २/१६

Protect your body and soul yourself —C-2/16

There are hundreds of such aphorisms in this *Agam* that are resplendent like gems These short passages not only contain spiritual message but they also act like lamps on the social pathways of mundane life By following these we can infuse peace and success in our social life *Dashavaikalik Sutra* contains effective ways of leading a balanced and stress free life in the modern day world filled with personal, social, and political competitions and rivalries

It is my firm belief that realizing its mundane usefulness, the ancient sages gave it the position of the guard on the threshold of the ascetic life. Not only that, they made it compulsory to study some specific chapters from *Dashavaikalik Sutra* before an ascetic could be firmly and finally initiated into the ascetic way This is the proof of its importance and usefulness Therefore, in my opinion, *Dashavaikalik Sutra* is not just a book of ascetic codes of conduct, it deserves to be called the source book of human conduct It occupies the same place in Jain tradition as *Manusmriti* occupies in the Vedic tradition This is my personal

opinion. The readers may also agree with me when they do a detailed study of this work

THIS EDITION

Numerous editions of *Dashavaikalik Sutra* have been published till date. Many scholars have put in a lot of efforts to write commentaries and elaborations on the basis of ancient texts and interpretations; they all are valuable Before commencing my work on this edition I went through eight to ten different editions of *Dashavaikalik Sutra* After a comparative study I found two editions to be ideally suited for my work and I made them my source books.

The first of these is the Hindi translation and commentary by Acharyashri Atmaram ji M It was written about 53-54 years back and at that time not much reference and research material on Agams was available. Neither were any model books available for establishing a requisite style Acharyashri, thus set himself to the pioneering task of establishing a style with the help of his profound study of *Agams* and complete command over Prakrit and Sanskrit languages. Indeed, that style has now proved to be one of the established models

Acharyashri has done this translation in a simple and touching language with the most appropriate selection of words There is hardly any possibility or scope for any correction or alteration If even a single word is altered it reduces the clarity with which the spirit of the original text is conveyed It appears as if, on the canvas of language, he has fixed gem-like words in a radiant pattern in such a composite way that finding even one matching gem to replace one of the originals is very difficult if not impossible After the translation he has given his commentary based on the interpretations by original commentators This also has been done in a logical manner and in an easily understandable style

The second one is Dasavealiyam, edited by the present Acharya of the Terapanth sect. This too is a commendable work of its own independent style based on comprehensive research work. Although I do not assent to the pedantic and complex style of language and editing, I find the compilation of revealing references from numerous ancient and modern sources very useful for those who want to study and understand Agams Indeed, the effort is a praiseworthy milestone.

I have used these two works as source books for this edition and given credits wherever I have used any interpretation, word, reference, or

comment Even if I have inadvertently overlooked to give credit at some place it does not in any way reduce my indebtedness to these great scholars of *Agams* I express my gratitude to their scholarly endeavours of distilling the knowledge acquired through their long and arduous studies and experiences, for the benefit of the posterity

It was not very difficult to make illustrations for the Agams I edited before this one because they belong to the narrative style This is a book of the code of conducts, and to illustrate its content with appropriate visual representation was a difficult assignment However, my close associate and an expert scholar and editor of Agams in his own right, Shrichand ji Surana visualized and got the illustrations made from an experienced artist Shri Surendra Bothara has used his knowledge of languages and Jain terminology as well as the skill of translating to render the flowing English translation and make this work useful for non-Hindi readers also I am thankful to all these who have put in commendable efforts in bringing out this edition

This cost intensive work of producing illustrated Agams cannot be completed without the support of financial contributions Giving inspiration as well as actual contribution are equally important Some charitable individuals inspired by revered Mahasati Tapacharya Shri Mohanmala ji M and Shramanisurya Up-pravartini Dr Shri Sarita ji M have liberally contributed for this venture Many devotees of revered Gurudevshri have also liberally contributed to help the pious work of *Shrut Seva* (service to the scriptures) They all deserve my hearty thanks

I am confident that this edition will promote the study of *Dashavaikalik Sutra* in a wider area and people will benefit from the teachings contained in this *Agam* With the hope and wish that it will make their life blissful—

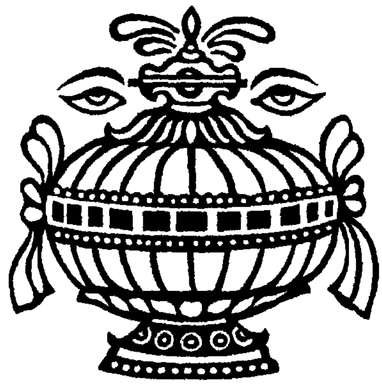
—Up-pravartak Amar Muni

PADMA DHAM,
NARELA MANDI, DELHI

विषयानुक्रम		CONTENTS	

सचित्र
दशवैकालिक सूत्र

ILLUSTRATED
DASHAVAIKALIK SUTRA



प्रथम अध्ययन : द्रुमपुष्पिका

प्राथमिक

जो आत्मा की सत्ता में विश्वास रखता है, वह आस्तिक है। आस्तिक विचारों का मूल आधार है, आत्मा। आत्मा की पूर्ण विकसित अवस्था का नाम है, परमात्मा। आत्मा को परमात्म-स्वरूप की उपलब्धि मे जो साधन सहायक हो, उसे कहते है धर्म।

धर्म साधना भी है और सिद्धि-स्वभाव भी है। जब आत्मा परमात्म-स्वरूप की साधना के पथ पर बढता है तब अहिसा, संयम और तप उसके साधन बनते है-इन तीनो साधनो द्वारा आत्मा अपने स्वरूप की उपलब्धि अर्थात् समग्र स्वरूप को प्रकट कर लेता है तब ये तीनो साधन आत्मा का स्वभाव अर्थात् गुण बन जाते है। उस दशा मे साधक सिद्ध बन जाता है। सिद्ध अशरीरी होते है। साधक शरीरधारी होते हैं। धर्म की साधना का निमित्त होता है-शरीर।

कहा है-**मोक्खसाहण हेउस्स साहु-देहस्स धारणा**-शरीर मोक्ष का साधन होने के कारण साधुओं को देह धारण की आवश्यकता रहती है।

निरन्तर विकास स्वभावी आत्मा का आवास है देह। इस देहरूपी आवास को टिकाए रखने तथा साधना योग्य बनाये रखने मे मुख्य सहायक है आहार। आहार के बिना शरीर नही टिकता और हिसा के बिना आहार कैसे निष्पन्न होगा? तब अहिसा का साधक शरीर धारण के लिए क्या करे? हिसा से बचे तो आहार नही मिलेगा, आहार नही मिलेगा तो शरीर कैसे टिकेगा और शरीर के बिना धर्म-साधना कैसे होगी?

इस जटिल समस्या का सरल समाधान उदाहरण द्वारा दिया है-**माधुकरी वृत्ति**। जैसे मधुकर फूलों को कष्ट, पीडा या हानि पहुँचाये बिना-थोडा-थोडा रस ग्रहण कर अपनी उदरपूर्ति कर लेता है वैसे ही साधक श्रमण किसी जीव की हिसा किये बिना, किसी को हानि व कष्ट पहुँचाये बिना-सहजभाव से अपनी उदर पूर्ति करके शरीर द्वारा धर्म-साधना करता रहे-इसका नाम है माधुकरी वृत्ति।

आचार्यश्री भद्रबाहु ने बताया है--**भमरो त्ति य एत्थ दिट्ठंतो**-भ्रमर-मधुकर यहाँ दृष्टान्त है अर्थात् उपमान है और श्रमण उपमेय है। मधुकर की अनियत वृत्ति (किसी एक स्थान से

बँधकर न रहना एवं किसी का आश्रित होकर न रहना) तथा किसी को कष्ट व हानि न पहुँचाने की वृत्ति यहाँ प्रतीक है। उसकी चार विशेषताएँ प्रसिद्ध हैं–

१ मधुकर जीवन निर्वाह के लिए किसी का हनन नहीं करता।

२ मधुकर फूलो से सहज निष्पन्न रस ग्रहण कर लेता है।

३ मधुकर अनेक फूलो से थोड़ा-थोडा रस ग्रहण कर अपनी उदरपूर्ति कर लेता है।

४ मधुकर जितना आवश्यक होना है, मात्र उतना ही रस ग्रहण करता है। दूसरे समय के लिए कुछ सग्रह नही करता ।

साधक श्रमण भी उक्त आदर्शों के अनुसार जीवनचर्या करता है इसलिए उसकी वृत्ति को माधुकरी वृत्ति कहा गया है।

इस अध्ययन मे माधुकरी वृत्ति द्वारा जीवन निर्वाह करने का वर्णन करते हुए श्रमण की कुछ विशेषताओ पर भी प्रकाश डाला गया है। अध्ययन का शीर्षक है–**द्रुमपुष्पिका।** द्रुम अर्थात् वृक्ष और पुष्प अर्थात् फूल। वृक्ष के पुष्प को माध्यम बनाकर श्रमण को अहिसा-सयम-तपमय धर्म की आराधना करने का उपदेश दिया गया है।

आचार्य भद्रबाहु ने कहा है–धर्म का आधार है धार्मिक। इसलिए इस अध्ययन मे धर्म की प्रशसा–पढमे धम्म पससा (गाथा २०) के द्वारा धार्मिक की भी प्रशसा की गई है।

FIRST CHAPTER : THE TREE-FLOWERS

INTRODUCTION

He who believes in the existence of *atma* (soul) as an entity is known as *astik* (a believer, here referring specifically to belief in Jain tenets). The foundation of the *astik* way of thinking is laid on the soul itself The soul in its supreme or purest state of development is known as *param-atma*, or the super-soul (for the theist the word *param-atma* means God) That which acts as the means or the instrument in a soul's attaining the state of *param-atma* is called *dharma*.

Dharma is not only the path, it is the goal as well This is because *dharma* also refers to fundamental attributes, inherent or absorbed virtues, or basic nature When a soul proceeds on the path of spiritual practices directed at that lofty state, then *ahimsa*, discipline, and austerities become the instruments When by means of these three the true form of the soul is revealed, then they become the basic nature or the virtue of that soul At this level the practicer becomes enlightened, or liberated, or the *Siddha*. A *Siddha* is formless or without a body. The practicer has a form or a body Thus, the body is the arena of spiritual practice!

It is said that as the body is the means of attaining *moksh* or liberation, it is necessary for an ascetic to have and maintain the body

The body is the abode of the ever evolving soul Food is the prime requirement for the sustenance of this abode, necessary to keep it fit for spiritual practices Without food the body cannot subsist, and without harming something or somebody food cannot be obtained. In such a situation, what should a practicer of *ahimsa* do for sustenance? If he avoids harming, he does not get food;

without food his body cannot exist; and without the body he cannot engage in his practices!

The solution to this complex problem has been provided with the help of an example—**the attitude of the bumble-bee.** Just as a bumble-bee sucks pollen from flowers just a little at a time and satisfies its need without harming the flowers in any way, the ascetic should also collect food from numerous houses without causing any inconvenience or pain to anyone, and should do so only in order to maintain his body and continue his spiritual pursuits. This is called the attitude of the bumble-bee.

Acharyashri Bhadrabahu says, "Here bumble-bee is used as a metaphor." The subject is an ascetic. Its activities of wandering and not depending on one source for sustenance, and also of non-harming intent, are used as a symbol of the ascetic attitude. Four well known qualities of a bumble-bee are—

1. It does not destroy for its subsistence.
2. It collects the naturally produced pollen from flowers.
3. It satisfies its need by collecting a little from each of many flowers.
4. It collects only for its immediate needs and does not store for future needs.

A *shraman* follows these ideals. Therefore, the attitude guiding his alms collection is called **the attitude of the bumble-bee**.

While describing the ascetic way of subsistence some other virtues of a *shraman* have been explained in this chapter. The title of the chapter is *Drum-Pushpika*. *Drum* means tree and *Pushp* means flower. Using these metaphors *shramans* have been advised to practice the *dharma* that includes *ahimsa*, discipline, and austerities.

According to Acharya Bhadrabahu religion is dependent on the devotees. Therefore, in this chapter the devotee has been praised as a way of praising religion.

■■



अहिंसा
संयम
तप
धर्म वृक्ष
द्रव्य मंगल

चित्र परिचय : १

Illustration No. 1

धर्म वृक्ष की तीन शाखाएँ

THE THREE BRANCHES OF THE DHARMA-TREE

धम्मो मगलमुक्किट्ठ–धर्म को एक विशाल वृक्ष के रूप मे चित्रित कर उसकी तीन मुख्य शाखाएँ वतायी हैं-

Dharma has been depicted as a giant tree having three main branches The branches are—

१. अहिंसा–षड्जीवकाय की हिंसा नही करना तथा प्राणि-रक्षा, मैत्री, करुणा और आत्मतुल्य भावना रखना। अहिंसा-शाखा की दस पत्तियो के रूप मे अहिंसा के इन दस रूपो का सकेत किया है।

1. Ahimsa—Not to harm any of the six classes of beings and to nurture such feelings as amnesty. fraternity, compassion, and equality towards all beings These ten forms of *ahimsa* have been shown as the ten leaves on this branch

२ सयम–धर्म वृक्ष की दूसरी शाखा मे सयम के सत्रह भेदो का सकत सत्रह पत्तियो द्वारा किया गया है। सयम के सत्रह भेद इसी श्लोक के विशेषार्थ मे वताये गये है।

2. Samyam (discipline)—The seventeen sections of discipline described in the elaboration of this verse have been shown as the seventeen leaves of another branch

३ तप–अनशन, ऊनोदरी आदि के रूप मे तप के वारह भेदो का सकेत वारह पत्तियो द्वारा दर्शाया है।

अहिंसा-सयम-तप रूप उत्तम धर्म मे जिसका मन रमण करता है, उसे देवता एव चक्रवर्ती आदि मानव नमस्कार करते है। ऐसा धर्म ही भाव-मगल है।

द्रव्य मगल के रूप मे अष्ट मगल एव शख तथा श्रीफल आदि वताये गये है।

(अध्ययन १, श्लोक १)

3. Tap (austerity)—The twelve sections of austerity, including fasting, dieting, and others have been shown as twelve leaves of the third branch.

Even gods and men of high status revere the person who follows this three branched *Dharma* or the august attitude. At the bottom are shown the eight auspicious objects flanked by a conch-shell and coconut

(Chapter 1, verse 1)

पढमं अज्झयणं : दुमपुप्फिया
प्रथम अध्ययन : द्रुमपुष्पिका

FIRST CHAPTER : DUM PUPFIYA
THE TREE-FLOWERS

धर्म का स्वरूप

१ : धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो॥

धर्म उत्तम मंगल है। धर्म का लक्षण है--अहिंसा, संयम और तप। जिसका मन धर्म में सदा रमा रहता है उस साधक को देवता (चक्रवर्ती आदि) भी नमस्कार करते हैं॥१॥

THE FORM OF DHARMA

1. *Dharma* is the best among propitious things The attributes of *dharma* are *ahimsa*, discipline and austerities (*tap*) Even gods (and emperors, kings, etc) salute him who is ever absorbed in *dharma*

विशेषार्थ

श्लोक १. अहिंसा--प्रमादयुक्त मन-वचन-कर्म से किसी जीव को कष्ट व पीडा पहुँचाना तथा उसके प्राणो का वध करना हिंसा है। हिंसा का अभाव अहिंसा है। साथ ही समस्त जीवो के प्रति करुणा, दया, मैत्री एव समवृत्ति रखना अहिंसा है।

विस्तार से पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति एव त्रसकाय--इन छह प्रकार की जीव योनियों को किसी भी प्रकार का कष्ट नही पहुँचाना, उनकी हिंसा नही करना अहिसा का निषेधपक्ष है तथा प्राणिरक्षा, मैत्री, करुणा, और अपनी आत्मा के समान सबका सुख-दु.ख समझना अहिसा का विधायक रूप है।

संयम–अशुभ भाव व पापाचरण में प्रवृत्त इन्द्रिय एवं मन का निग्रह करना संयम है। हिंसा, असत्य आदि पाँच आस्रव द्वारो के सेवन से आत्मा को विरत करना (५). क्रोध आदि चार कषायों पर विजय (४), पाँच समितियो का पालन (५), तथा मन-वचन-काय (३) की अशुभ प्रवृत्तियों पर रोक लगाना सभी (१७ भेद) संयम में सम्मिलित है।

एक अन्य प्रकार से भी संयम के १७ भेद बताये है–पृथ्वी. अप्, तेजस्, वायु, वनस्पतिकाय-सयम (५), द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पचेन्द्रिय-संयम (४). अजीवकाय-संयम, प्रेक्षा-संयम, उत्प्रेक्षा-संयम, अपहृत्य-संयम, अप्रमार्जना-सयम, मन-संयम, वचन-सयम और काय-सयम (८)।[1]

तप–कर्मों का क्षय कर आत्मा को विशुद्ध बनाने की क्रिया को तप कहा जाता है। विस्तार की दृष्टि से अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रसत्याग. कायक्लेश. प्रतिसंलीनता, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग, तप के ये बारह भेद बताये गये है।

अहिंसा के सूक्ष्म रूप का विस्तार संयम मे तथा संयम के विविध रूपो का विधायक पक्ष तप में प्रकट होता है। इस प्रकार तीनों में परस्पर एक शृंखला जुड़ी हुई है और इनका समवाय रूप है–धर्म।

धर्म–धर्म की व्याख्या बहुत सूक्ष्म और विस्तृत है। सामान्यत वस्तु का स्वभाव धर्म कहा जाता है। जीव या आत्मा का स्वभाव है ऊर्ध्वगमन। आत्मा की विशुद्धि तथा उसके ऊर्ध्वगमन मे जो सहायक होता है–वह है धर्म। अहिंसा, सयम एवं तप द्वारा आत्मा पापकर्मो का क्षय कर शुद्धि प्राप्त करता है, इसलिए यह तीनो धर्म के अग हैं। प्राचीन व्याख्या के अनुसार दुर्गति मे गिरते जीव को धारण कर जो उसकी रक्षा करता है, उसे धर्म कहा जाता है।[2]

मगल–जो शुभ और कल्याणकारी हो। आचार्यो ने मगल के द्रव्यमगल और भावमगल के रूप में दो भेद बताये है। प्रतीक रूप मे कलश, स्वस्तिक आदि अष्टमगल तथा वस्तु रूप में दही, अक्षत, शख, श्रीफल आदि द्रव्यमगल है। आत्मा को सुख-शान्ति पहुँचाने वाला धर्म तत्त्व भावमंगल कहा गया है–

धम्मो उ भाव मगलमेत्तो सिद्धि त्ति काऊण। —*निर्युक्ति, गाथा ४४*

(प्रथम श्लोक का भाव स्पष्ट समझने के लिए चित्र क्रमाक १ पर ध्यान देवे।)

---

१ देखें दशवैकालिकसूत्र आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज, पृ ५

२ दुर्गतौ प्रपतन्तमात्मान धारयतीति धर्म। —*उद्धृत दशवै आ आत्माराम जी म., पृ. ४*

ELABORATION :

(1) *Ahimsa*—To cause, under the influence of illusion, harm or pain or death to some being by thought, speech, or action is known as *himsa* (this Hindi term envelopes the meaning conveyed by English words like violence, harm, termination of life, transgression, aggression, rudeness, and many others). The absence of *himsa* is *ahimsa*. *Ahimsa* also includes the attitudes of compassion, amnesty, fraternity, and equality towards all living beings.

Elaborating further, not to cause pain or harm or destroy any of the six types of beings—including the earth, water, fire, air, plant, and mobile bodied—is the negating aspect of *ahimsa* Protection of life, universal fraternity, compassion, and equality are the positive aspects of *ahimsa*

Discipline—To stop the mind and the senses from indulging in evil thinking and sinful activity is called discipline. There are seventeen factors of discipline—to refrain from the five activities that cause the inflow of *karmas*, namely *himsa*, falsehood, stealing, lechery, and avarice (totalling five) Disciplining the four passions namely anger, conceit, deceit, and greed (three) Observing the five *samitis* (self-regulation) (five) Restraining the evil activities of mind, speech, and body (three)

From a different count we also obtain a total of seventeen factors—discipline related to five types of one-sensed living organisms, namely earth, water, fire, air and plant (five); discipline related to four types of many-sensed beings, namely two, three, four, and five sensed beings (four), discipline related to non-living things, discipline of perception; discipline of imagination, discipline of non-stealing; discipline of non-trimming; discipline of thought; discipline of speech, and discipline of action (eight) [1]

Austerities (*tap*)—The act of purifying the soul by means of the shedding of *karmas* is known as *tap* or austerities To go into

1 *Dashavaikalik Sutra* by Acharyashri Atmaram ji M , page 5

greater detail, twelve categories of austerities have been mentioned—fasting, limiting food intake, procuring alms, abandoning tasty food, penance or mortifying the body, withdrawing mind and surges, temperance, humbleness, taking care of seniors, self-study, meditation, abandonment

The subtle meaning of *ahimsa* expands into discipline, and the various aspects of discipline reveal their practical form in austerities Thus these three are inter-linked and their unified form is *dharma*

Dharma—The definition of this term is very subtle as well as elaborate The literal meaning of *dharma* is the nature of things The nature of soul is upward movement or elevation That which helps in elevating or purifying the soul is called *dharma* The soul attains purity by shedding *karmas* through practicing *ahimsa*, discipline, and austerity; therefore, these three are components of *dharma*. According to an ancient definition, that which holds a soul back from falling into the abyss of depravity and saves it is called *dharma* [1]

Propitious—That which is auspicious and beneficent The *Acharyas* have made two categories of propitious things—propitious things (physical) and propitious attitudes The urn, swastika, etc are the eight auspicious symbols, and curd, rice, conch-shell, coconut, etc are auspicious things *Dharma*, the instrument of peace and happiness is called the propitious attitude [2]

(For clarification see **illustration 1.**)

२ : जहा दुमस्स पुप्फेसु भमरो आवियइ रसं।
णय पुप्फं किलामेइ सो अ पीणेइ अप्पयं॥

जिस प्रकार भँवरा फूलो मे थोडा-थोडा रस पीता हुआ किसी पुष्प को कष्ट या हानि नहीं पहुँचाता है और स्वय को भी तृप्त कर लेता है॥२॥

1 Ibid, page 4
2 *Dashavaikalik Niryukti* verse 44



माधुकरी वृत्ति

THE BUMBLE-BEE ATTITUDE

जहा दुमस्स पुप्फेसु–जिस प्रकार खिले हुए फूलों में रस पीकर भँवरा चुपचाप चला जाता है, फूलों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता और भँवरे की क्षुधा भी तृप्त हो जाती है। उसी प्रकार गृहत्यागी श्रमण किसी के भी आश्रित नहीं होकर गृहस्थ के घरों में सहज भाव से उपलब्ध निर्दोष भिक्षा की एषणा करते है, उसमें से थोडी-थोडी ग्रहण कर लेते है। इससे गृहस्थ को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता और मुनि की देहयात्रा भी चलती रहती है।

A bumble-bee sips nectar from flowers and drifts away, it satisfies its need without causing any harm to the flowers This is known as the bumble-bee attitude A *shraman* who has renounced the world adopts the same attitude Without depending on any single person he visits numerous houses seeking proper food and accepting only a little at one house This allows him to subsist without being a burden on any of the householders

चित्र में ऊपर फूल का दृष्टान्त देकर मुनि की माधुकरी वृत्ति दिखाई गई है। गृहस्थ के घर के समान फूल है मधुकर के समान श्रमण है।

(अध्ययन १, श्लोक २-३)

The top half of the illustration shows the bumble-bee attitude and the bottom half the activity of a *shraman* The house is like a flower and the *shraman* a bumble-bee

(Chapter 1, verses 2-3)

2. As a bumble-bee sucks pollen from flowers just a little at a time and satisfies its need without harming the flowers in any way, . . .

३ : एमेए समणा मुत्ता जे लोए संति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु दाणभत्तेसणे रया॥

उसी प्रकार संसार में जो ये परिग्रह आदि से मुक्त श्रमण साधु हैं, वे (दान + भक्त) दाता द्वारा दिये गये निर्दोष आहार की एषणा एवं भोजन वैसे ही करते हैं जैसे भ्रमर फूलों से रस ग्रहण करता है॥३॥

3. . . so are these absolutely detached *shramans*. They seek and gather faultless food from numerous houses exactly as the bumble-bees gather pollen from flowers.

विशेषार्थ

श्लोक ३ समण-'श्रमण' शब्द का भाववाचक अर्थ है-सम-मण-अर्थात् जिसका मन राग-द्वेष रहित हो, साम्य-भाव-मध्यस्थ वृत्ति युक्त हो और सबको आत्म समान मानने वाला हो। साधना में श्रम व तप करने वाला 'श्रमण' कहलाता है। प्राचीन समय में श्रमणो के पाँच सम्प्रदाय थे- निर्ग्रन्थ (जैन), शाक्य (बौद्ध), तापस, गैरिक तथा आजीवक (गौशालक अनुयायी) किन्तु यहाँ पर श्रमण के साथ 'मुक्त' विशेषण उसके सर्वथा अपरिग्रही निर्ग्रन्थ होने का सूचक है।

ELABORATION :

(3) ***Saman—Shraman***—One who is free of attachment and aversion, is equanimous, and believes in the equality of all beings Also, one who is steadfast in his spiritual practices and austerity. In the remote past there were five independent *Shraman* schools—*Nirgranth* (Jain), *Shakya* (Buddhist), *Tapas*, *Gairik*, and *Aajeevak* (the followers of *Gaushalak*) But the adjective *mukt* (free) indicates that here it means absolutely detached *nirgranth* or Jain ascetic

४ : वयं च वित्तिं लब्भामो न य कोइ उवहम्मइ।
अहागडेसु रीयंति पुप्फेसु भमरा जहा॥

हम (श्रमण) वृत्ति (भिक्षा) इसी प्रकार ग्रहण करेंगे कि जिससे किसी जीव को कष्ट या हानि न पहुँचे। जैसे भँवरा फूलों से थोड़ा-थोड़ा रस ग्रहण करता है वैसे हम भी गृहस्थों से यथाकृत (सहज बना हुआ) आहार लेते हैं॥४॥

4. We shall collect alms in a manner that causes no harm or pain to any living being As a bumble-bee sucks pollen just a little each from many flowers, so do we collect normally prepared food from householders.

विशेषार्थ

श्लोक ४ यथाकृत–गृहस्थ अपने उपयोग के लिए जो आहार व प्रासुक जल आदि तैयार करता है, वह 'यथाकृत' कहा जाता है। श्रमण ऐसा यथाकृत आहार ग्रहण करता है।

ELABORATION :

(4) *Yathakrit*—The food and disinfected water that a householder normally prepares for his own use is called *yathakrit* or normally prepared A *shraman* takes such food only

५ : महुगारसमा बुद्धा जे भवंति अणिस्सिया।
नाणापिंडरया दंता तेण वुच्चंति साहुणो॥
त्ति बेमि।

जो ज्ञानी पुरुष मधुकर–भ्रमर के समान अनिश्रित अर्थात् किसी एक पर आश्रित नही है तथा अनेक घरो से प्राप्त भिक्षा से संतुष्ट हैं। मन व इन्द्रियों का दमन करने वाले हैं–वे अपने इन्हीं गुणों के कारण साधु कहलाते हैं।

ऐसा मै कहता हूँ॥५॥

5. Those wise individuals who are not dependent on one particular person, are contented with the food collected from numerous houses, and have disciplined their mind and senses are called *Sadhus* (a sage, referring to a Jain ascetic here) for these virtues alone. . So I say

विशेषार्थ :

श्लोक ५. अनिस्सिया-इस शब्द से तीन अर्थ ध्वनित होते हैं-(१) अनिश्रित-किसी एक पर निर्भर नहीं रहने वाला। (२) अनियत-जिसके आने का कोई निश्चित समय न हो। (३) अप्रतिबद्ध-जिसकी चर्या के लिए कोई बधन या प्रतिबंध नहीं हो।

ELABORATION :

(5) *Anissiya*—This word has three different meanings—(1) *Anishrit* or not dependent on one particular person, (2) *Aniyat* or having an indefinite time of arrival, and (3) *Apratibaddh* or having unrestricted movement.

उपसहार

इस प्रथम अध्ययन में धर्म को उत्कृष्ट मंगल बताते हुए उसके अहिंसा-संयम-तप ये तीन अंग बनाये है। धर्मशील साधु अहिसा का पालन करने के लिए भ्रमर की तरह, गृहस्थ के घर से शुद्ध निर्दोष भोजन की एषणा करके शरीर निर्वाह करता है। ऐसा संयमशील तपस्वी देवताओं का भी पूज्य होता है।

Conclusion

In this first chapter *dharma* has been presented as the best of the beneficent things and as having three components—*ahimsa*, discipline and austerities Like a bumble-bee, an ascetic seeks faultless food from numerous houses to maintain his body. Even gods salute such disciplined ascetics

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

END OF FIRST CHAPTER

द्वितीय अध्ययन : श्रामण्यपूर्विका

प्राथमिक

सयम मे पुरुषार्थ रूप श्रम करना श्रमण की पहचान है। श्रमण का भाव (सार) है श्रामण्य-(श्रमणत्व)।

इस अध्ययन का नाम है **श्रामण्यपूर्विका**। अर्थात् श्रमण होने से पूर्व की आधारभूमि। जैसे वृक्ष की आधारभूमि है बीज एव भूमि। दही, नवनीत आदि की आधारभूमि है दूध। भवन की आधारभूमि है नीव। इसी प्रकार पूछा गया है कि श्रामण्य की आधारभूमि क्या है? अर्थात् वह कौन-सी बात है जिसके विना श्रमणत्व नही टिकता। इसी प्रश्न का उत्तर है-श्रामण्यपूर्विका अध्ययन। पहले अध्ययन मे धर्म का वर्णन है और श्रमण का भी। प्रश्न होता है--धर्म व श्रमणत्व की आधारभूमि क्या है? इसका उत्तर है-धृति ! धैर्य ! कहा गया है-

जस्स धिई तस्स तवो जस्स तवो तस्स सुगई सुलभा।

जिसकी धृति होती है, उसके तप होता है। जो तप करता है उसको सुगति सुलभ हो सकती है।

इस अध्ययन का प्रतिपाद्य है-श्रामण्यरूपी भवन की नीव (आधारभूमि) धृति बताकर उसके लिए मनोभूमि तैयार करना। धृतिवान आत्मा स्थिर होता है। काम-राग का निवारण वही कर सकेगा जिसमे स्थिरता, धीरता होगी। वही अपने श्रमणत्व की रक्षा कर पायेगा। अत श्रमणत्व की रक्षा के लिए काम एव मोह पर विजय पाना आवश्यक है।

राजीमती की एक प्राचीन घटना के परिप्रेक्ष्य मे इस अध्ययन मे काम-राग निवारण के लिए बडी सजीव और हृदयस्पर्शी प्रेरणा दी गई है। राजीमती रथनेमि का वह सन्दर्भ सक्षिप्त रूप मे इस प्रकार है-

भगवान अरिष्टनेमि के दीक्षा लेने के पश्चात् उनके भाई रथनेमि, अरिष्टनेमि द्वारा परित्यक्ता राजीमती के प्रति अनुरक्त हो गये। राजीमती ससार के काम-भोगो से उदासीन हो सयम-साधना के लिए तैयारी कर रही थी। तभी कुमार रथनेमि ने राजीमती को प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रयत्न किये। एक बार रथनेमि को समझाने के लिए राजीमती ने कोई मधुर

पेय पीया और फिर मदनफल मुँह में लेकर उल्टी कर दी और रथनेमि से पूछा-"क्या तुम इस वमन को पीना चाहोगे?"

रथनेमि बोले-"वमन किया हुआ मैं कैसे पीऊँ?"

राजीमती-"यदि वमन नहीं पीना चाहते तो फिर मैं भी अरिष्टनेमि स्वामी द्वारा वमन की हुई हूँ? मुझे क्यों चाहते हो?"

राजीमती के वचन से रथनेमि के विवेक चक्षु खुल गये। राजीमती प्रव्रजित हुई। रथनेमि भी प्रव्रजित हो गये।

एक बार रथनेमि भगवान अरिष्टनेमि को वन्दन करने रैवतगिरि पर जा रहे थे। रास्ते मे वर्षा हुई तो वे एक गुफा मे ठहरकर ध्यान करने लग गये। इधर राजीमती भी भगवान की वन्दना कर वापस लौट रही थी। वर्षा से भीगकर वह भी उसी गुफा में प्रविष्ट हो गई और अपने गीले वस्त्र सुखाने लगी। उसी समय आकाश में बिजली चमकी तो उसके झिलमिल प्रकाश मे मुनि रथनेमि साध्वी राजीमती के खुले अग-प्रत्यंग देखकर काम-विह्वल हो गये और राजीमती के पास आकर भोग-याचना करने लगे। चचल चित्त श्रमण रथनेमि को साध्वी राजीमती ने प्रखर वचनो से जब उपदेश दिया तो रथनेमि पुन अपने सयम में स्थिर हो गये।

राजीमती द्वारा रथनेमि श्रमण को दिया गया वह उपदेश-धृति/स्थिरता का सन्देश है और वही इस अध्ययन की पृष्ठभूमि है। चूर्णिकार अगस्त्यसिह तथा टीकाकार हरिभद्रसूरि के मतानुसार इस अध्ययन का ७, ८ और ९वॉ श्लोक राजीमती का कथन है। इसी प्रसंग पर चूर्णिकार ने राजीमती की उक्त घटना का उल्लेख कर इसका पूर्वापर सम्बन्ध जोडा है। यो यह ११ गाथाओ का सम्पूर्ण अध्ययन इसी तथ्य को व्यक्त करता है। उत्तराध्ययनसूत्र के २२वे अध्ययन के ५ श्लोक (४२ से ४८) भी इसी अध्ययन के श्लोक ७ से ११ तक अक्षरश मिलते हैं।

SECOND CHAPTER : THE FOUNDATION OF ASCETICISM

INTRODUCTION

Striving for discipline is the mark of a *shraman* This also is the essence of asceticism

The title of this chapter literally means the preamble to asceticism It points to the basis or foundation of asceticism The origin of a tree is a seed The source of butter and curd is milk The foundation is the base on which a house is constructed. With all this in mind, the question of what is the foundation of asceticism has been raised Which is the factor in the absence of which asceticism cannot be said to exist? This chapter provides an answer to this question The first chapter defines *dharma* as well as *shraman* This gives rise to the question of what is the basis of these two The answer is *dhriti* or patience It is said that he who has patience can practise austerities And he who practises austerities can achieve better rebirth.

The topic first discussed in this chapter is to establish that patience is the foundation of asceticism After this it presents the process of preparing one's mind for that A person with patience is stable Victory over lust is possible only for one who has patience and stability Only such a person can keep his asceticism intact Therefore, it becomes necessary to subdue lust and attachment.

A touching and effective inspiration for the discipline of lust has been given with the help of the ancient story of Rajimati In brief the story goes as follows—

After Bhagavan Arishtnemi's renunciation, his brother Rathnemi got attracted towards Rajimati whom Arishtnemi refused to marry Rajimati also had become detached from mundane activities and was preparing to become an ascetic At that time prince Rathnemi tried his best to seduce Rajimati When he

continued to pester her, Rajimati one day sipped some tasty drink. She put some bitter thing in her mouth and vomited what she drank in a vessel. Pointing at this vessel she asked Rathnemi, "Would you like to drink this?" Rathnemi replied, "How can I drink vomit?"

Rajimati, "When you refuse to drink vomit how can you think of accepting me? As I have been rejected by lord Arishtnemi, I am just like a spewed out thing "

These words of Rajimati jolted Rathnemi out of his lust and opened his inner eyes Rajimati got initiated Rathnemi too got initiated

One day Rathnemi was proceeding to pay homage to Bhagavan Arishtnemi stationed at the peak of Raivat hill. While he was on his way it started raining He entered a cave and started meditation Rajimati was returning after paying homage to the Lord She got drenched and then entered the same cave Once inside she started drying her clothes Suddenly the cave was filled with a flash of light caused by lightening. In that momentary glow ascetic Rathnemi saw the partially exposed figure of Rajimati and was overcome by lust He approached Rajimati and begged her to quench his burning desire With her piercing words Rajimati chastised Rathnemi who reined in his wavering mind and regained his serenity

This sermon of Rajimati is a powerful message of patience and stability and that is the backdrop of this chapter According to the commentators *Agastya Simha* and *Haribhadra Suri*, verses 7, 8 and 9 of this chapter are the words of Rajimati. In their commentaries they have narrated this story to establish the context of these verses Thus this small chapter with eleven verses is devoted only to this message Five verses (42 to 46) in the 22nd chapter of *Uttaradhyayan Sutra* are exactly same as verses 7 to 11 of this chapter

It is believed that the content of this chapter has been reproduced from the third chapter of the extinct *Pratyakhyan Purva* (one of the fourteen extinct subtle canonical texts) ■■

बिइयं अज्झयणं : सामण्णपुव्विया
द्वितीय अध्ययन : श्रामण्यपूर्विका

SECOND CHAPTER : SAMANNA PUVVIYA
PROLOGUE TO ASCETICISM

काम और श्रमणत्व का परस्पर विरोध

१ : कहं नु कुज्जा सामण्णं जो कामे न निवारए।
पए पए विसीयंतो संकप्पस्स वसंगओ॥

जो काम-राग (विषयों की आसक्ति) का निवारण नहीं करता, वह अपने श्रामण्य (श्रमण-धर्म) का पालन कैसे करेगा? ऐसा व्यक्ति संकल्पों (काम अध्यवसाय) के वश होकर पग-पग पर विषादग्रस्त (खेद-खिन्न) होता रहता है॥१॥

CONTRARIETY BETWEEN LUST AND ASCETICISM

1. How can a person who cannot control his desires to indulge in lust and other such activities be steadfast in his asceticism? Driven by his desires, such a person embraces misery at every step

विशेषार्थ

श्लोक १ काम–किसी प्रिय वस्तु की इच्छा करना–कामना या काम है।

कामिज्जमाणा विसयपसत्तेहिं कामा। –जिनदासचूर्णि, पृ ७५

पाँच इन्द्रियो को प्रिय-शब्द-रूप-गध-रस तथा स्पर्श–के सेवन की लालसा द्रव्य-काम कहलाता है। भाव-काम के दो भेद है- इच्छा-काम तथा मदन-काम।

चित्त की अभिलाषा इच्छा-काम है तथा वेदोदय जनित काम-भोग में प्रवृत्ति करना मदन-काम (सेक्स) है।

यहाँ पर मदन-काम को ध्यान में रखकर 'काम' शब्द का प्रयोग किया गया है। मदन-काम का अभिलाषी श्रामण्य का पालन नहीं कर सकता।

भोग—इन्द्रिय-विषयों का सेवन करना भोग है। सामान्यतः काम-भोग शब्द का प्रयोग एक साथ होता है और एकार्थक जैसे लगते हैं, किन्तु काम का अर्थ वासना है, जबकि भोग का अर्थ है विषय का सेवन करना। आगमो में रूप और शब्द को 'काम' तथा स्पर्श, रस और गंध को 'भोग' कहा गया है।

प्रस्तुत प्रसंग में काम-भोग का अर्थ है, इच्छित प्रिय विषयों का सेवन करना।

ELABORATION :

(1) *Kaam*—The wish to possess a desired thing is *Kamana* (desire) or *Kaam* (lust) According to *Jinadas Churni* (page 75), the desire to satisfy the pleasurable needs of the five senses—word, form, aroma, taste, and touch—is known as physical lust. Mental lust has two types—fancies and indulgence in sexual activities Here the context is sexual activities One having sexual cravings cannot observe asceticism

***Bhog*—**To indulge in activities pleasurable to the five senses is *bhog* or indulgence. Generally *kaam* and *bhog* are used in conjunction and they appear to be synonyms However, *kaam* means lust and *bhog* means indulgence In the *Agams* the subjects of desire are form and words or speech, and those of indulgence are touch, taste, and smell. Here the reference is to indulgence in desires

त्यागी कौन ?

२ : वत्थगन्धमलंकारं इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छंदा जे न भुंजंति न से चाइ त्ति वुच्चइ॥

जो व्यक्ति पराधीनता या परवशता के कारण वस्त्र, सुगन्धित वस्तुएँ, अलंकार, स्त्री और शयन-आसन आदि का उपभोग नहीं कर सकता, वह त्यागी नहीं है॥२॥

WHO IS A RENOUNCER ?

2. A person who is unable to enjoy things like clothing, perfumes, ornaments, a woman, a seat, a bed, etc for reasons beyond his control is not a renouncer

विशेषार्थ :

श्लोक २. अच्छन्दा–अस्ववशा –जो परवश पराधीन हो तथा इन्द्रिय आदि से अक्षय हो। ये दोनो अर्थ ही यहाँ उपयुक्त है। प्रचलित भाषा मे–मजबूरी, चाहे वह किसी के दबाव की हो अथवा अपने अभाव की। मजबूरी के कारण भोग से विमुख होने वाला त्यागी नही है।

ELABORATION :

(2) *Acchanda*—He who is dependent on, or a slave of, someone or is physically disabled Both these meanings apply here In common terms, it means compulsion arising out of outside pressures or inner weakness If a person has to abandon mundane indulgences under compulsion he cannot be called a renouncer

३ : जे य कंते पिए भोए लद्धे विपिट्ठिकुव्वई।
साहीणे चयइ भोए से हु चाइ त्ति वुच्चइ॥

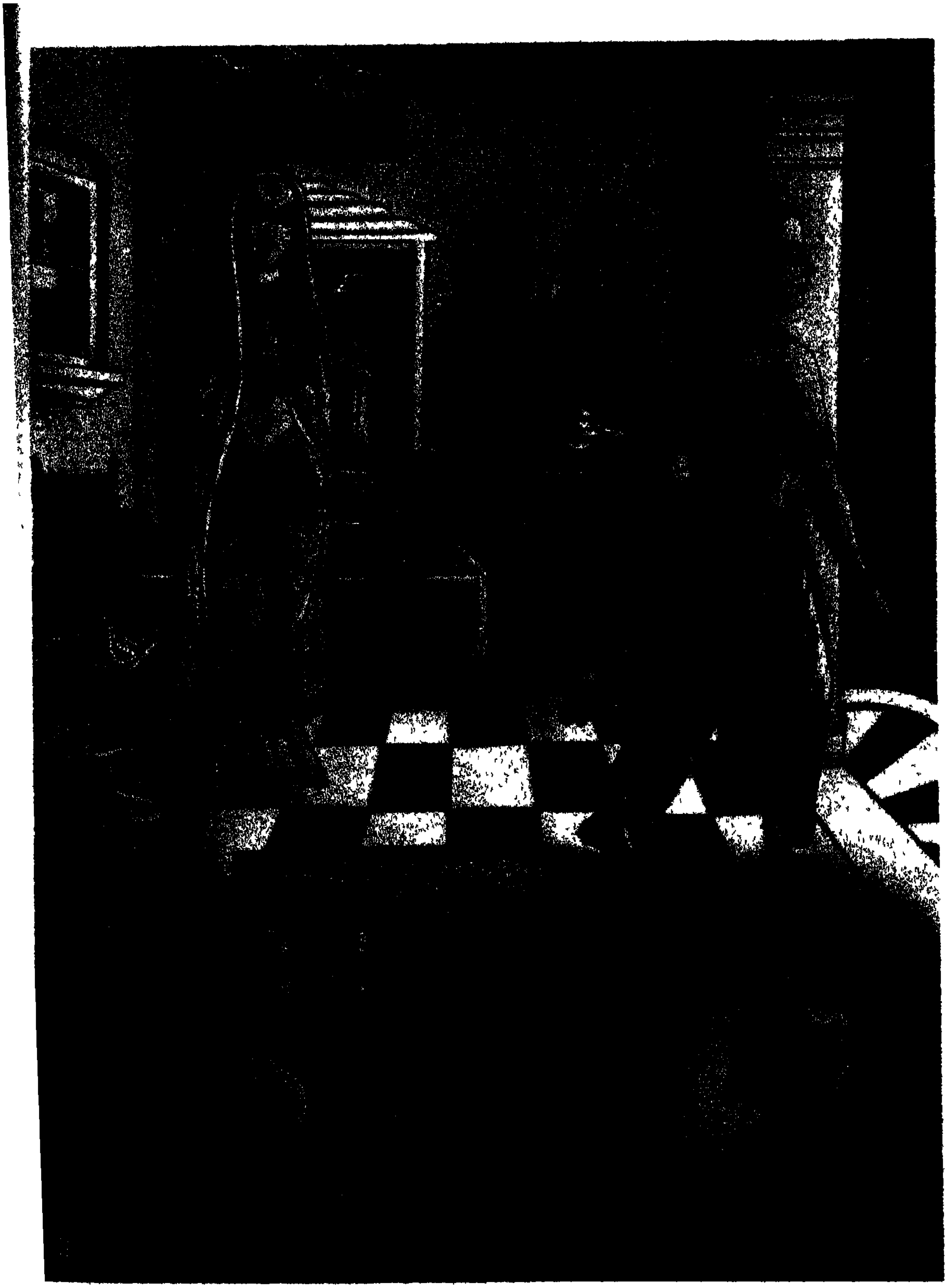
त्यागी तो वही कहलाता है, जो स्वाधीन (समर्थ और स्वच्छन्द) होते हुए उपलब्ध, कान्त और प्रिय भोगो से मुँह फेर लेता है और स्वत· इच्छापूर्वक उनका त्याग करता है॥३॥

(अधिक स्पष्टता के लिए चित्र क्रमाक ३ देखे।)

3. Only he is a true renouncer who is his own master, who turns away from all available and desired indulgences, and abandons them of his own free will **(illustration No. 3)**

विशेषार्थ

श्लोक ३. यहाँ एक सन्देह उठता है कि उपलब्ध का त्याग करना ही यदि त्याग है तो जिसके पास कुछ भी उपलब्ध नही है ऐसा अकिंचन क्या त्यागी नही बन सकता? क्या उसका प्रव्रज्या लेना निरर्थक है? इस शंका के समाधान मे व्याख्याकारो ने एक सुन्दर दृष्टान्त दिया है–



चित्र परिचय : ३

Illustration No. 3

सच्चा त्यागी

THE TRUE RENOUNCER

१ जेय कते पिय भोए–जो व्यक्ति मन को प्रिय लगने वाली भोग सामग्री, सुन्दर रमणी, धन-वैभव, नौकर, रथ, अश्व आदि स भरपूरे घर को वैराग्यपूर्वक त्याग देता है, वह वास्तव मे त्यागी कहलाता है।

(अध्ययन २, श्लोक ३)

1 A person who abandons all objects of fondness—such as a house filled with conveniences, a beautiful woman, wealth and glory, servants, horses and chariots—with a feeling of detachment is a true renouncer

(Chapter 2, verse 3)

२ वत्थ-गधमलकार–जो व्यक्ति उपर्युक्त सभी प्रकार की भोग-सामग्री का किसी बधन, पराधीनता या शारीरिक अक्षमता (बुढापा-रोग) अथवा अन्य किसी मजबूरी के कारण भोग नही कर सकता, वह त्यागी नहीं है।

2 A person who is unable to enjoy any or all of such things owing to some necessity such as restrictions, dependence, physical or mental disability, etc is not a true renouncer.

चित्र मे प्रदर्शित बधनो मे जकडा पराधीन व्यक्ति तथा जीर्ण शरीर के कारण भोगो मे असमर्थ वृद्ध पुरुष परवशता के दो रूप है।

(अध्ययन २, श्लोक २)

The illustration explains such necessity by showing a man bound with ropes within a prison and an emaciated old man incapable of any physical activity

(Chapter 2, verse 2)

राजगृह में एक लकड़हारे ने सुधर्मा स्वामी के पास दीक्षा ली। जब वह भिक्षा के लिए जाता तो लोग ताने मारते कि यह तो गरीब लकडहारा है जो दीक्षा लेकर त्यागी बन गया है। नव-श्रमण ने सुधर्मा स्वामी से सरल बुद्धि से कहा–"मुझे यहाँ से कही और ले चलें, ये ताने मुझसे सहन नहीं होते।" गणधर सुधर्मा ने अभयकुमार से कहा–"हम यहाँ से विहार करेंगे।" जब अभयकुमार ने सुधर्मा स्वामी से पूछा कि आपश्री को क्या असुविधा है? तो उन्होंने सारी बात बताई। अभयकुमार ने आश्वस्त किया कि मैं युक्ति से यह चर्चा समाप्त कर दूँगा।

दूसरे दिन अभयकुमार ने रत्नों के तीन ढेर लगाये और घोषणा करवा दी कि कुमार दान दे रहे है। जब लोग आने लगे तो उन्होने कहा–"जो व्यक्ति अग्नि, पानी तथा स्त्री का त्याग करेगा उसे मै ये तीन रत्न ढेर दूँगा।' लोगो ने कहा–"इन तीनों को त्याग देने के बाद ये रत्न किस काम आयेंगे।" तब अभयकुमार ने समझाया–"यह समझते हो तो लकडहारे के त्याग को त्याग न मानकर ताने क्यो देते हो? जो इन तीन महत् वस्तुओं का त्याग कर सयम मे स्थित होता है वह अकिंचन भी त्यागी है।"

ELABORATION :

(3) A question arises here If only he can be called a renouncer who abandons all he has, then what about someone who is a poor destitute? Is his getting initiated meaningless? In order to resolve this doubt the commentators have given a very good story—

In Rajagriha a wood-cutter got initiated by Sudharma Swami. When he went begging, people made fun of him by commenting that he was a poor wood-cutter, and that by getting initiated he is trying to glorify his misery, he was no renouncer. The young ascetic approached Sudharma Swami and said without any guile, "Please take me to some other place. I cannot tolerate these taunts" Ganadhar Sudharma, in turn, said to Abhaya Kumar, "I would like to leave Rajagriha." When Abhaya Kumar asked about the reason for this sudden decision, Sudharma Swami told him the story Abhaya Kumar assured him that he would stop the taunting at once.

The next morning Abhaya Kumar placed three heaps of gems in his courtyard and made an announcement to the effect that the prince was making charitable gifts When the masses arrived he said, "I will give these three heaps of gems to the person who

abandons fire, water, and his wife. The people who had gathered around whispered, "Of what use will these gems be once we abandon those three things?" Abhaya Kumar commented, "When you all understand this fact of life, why do you taunt the wood-cutter and refuse to accept him as a renouncer? Know this that even a destitute who abandons these three most important things in life is a renouncer."

राग दूर करने का उपाय

**४ : समाइ पेहाइ परिव्वयंतो सिया मणो निस्सरई बहिद्धा।
न सा महं नोवि अहं पि तीसे इच्चेव ताओ विणइज्ज रागं॥**

समता की प्रेक्षा करते हुए अर्थात् समभावों में प्रशस्त ध्यानपूर्वक विचरते हुए भी यदि कभी मन संयम से भटक जाये (किसी नारी के मोह में फँस जाये) तो यह विचार करे कि वह मेरी नहीं है और मैं उसका नहीं हूँ, इस प्रकार मुनि उसके प्रति जगने वाले काम-राग को दूर करे॥४॥

METHODS OF VANQUISHING ATTACHMENT

4. While still deeply meditating with equanimity, if perchance the mind of an ascetic drifts and is possessed by an attraction for some woman, he should think that neither does she belong to me nor I to her. Convincing himself thus, the ascetic should free himself of the lustful desire.

**५ : आयावयाही चय सोगमल्लं कामे कमाही कमियं खु दुक्खं।
छिन्दाहि दोसं विणइज्ज रागं एवं सुही होहिसि संपराए॥**

सुकुमारता का त्याग कर ! स्वय को तपा। कामना (इच्छा व अनुराग) को दूर हटा दिया तो समझ लो दुःख और विषाद अपने आप मिट गया। द्वेष-भाव को छिन्न करने व राग-भाव को दूर करने से ही संसार (लोक-परलोक) में तू सुखी हो जायेगा॥५॥

5. Rise above tenderness and frailty and anneal yourself through austerities. When you free yourself from desire, then

sorrow and miseries will automatically vanish. By destroying aversion and removing attachment you will attain bliss in this life and the next.

विशेषार्थ :

श्लोक ५. संपराए–इस शब्द में जीवन, संसार, परलोक, भविष्य; संग्राम सभी अर्थ समन्वित हैं। मनुष्य का संसार उसका जीवन है। जो बीत चुका वह अपरिवर्तनीय है। जिसमें संभावनाएँ हैं वह भविष्य है अथवा परलोक और जिसमें सुख-दु:ख की संभावनाएँ हों, उनके लिए प्रयत्न हो वह संग्राम है। यहाँ पर संसार या परलोक दोनों ही अर्थ उपयुक्त हैं।

ELABORATION :

(5) ***Samparaye***—World; this word also encompasses the meanings of life, the other world or next life, the future, and struggle in life. Man's world is his life What is past is irreversible. That which has possibilities is the future as well as the next birth. Where there are possibilities of sorrow and joy there is struggle. Therefore, in the present context this term means this life and the next

वान्त भोग की इच्छा मत करो

६ : पक्खन्दे जलियं जोइं धूमकेउं दुरासयं।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं कुले जाया अगंधणे॥

अगन्धन कुल में जन्मा सर्प जलती हुई विकराल अग्नि (धूमकेतु) में प्रवेश कर जाना स्वीकार कर लेता है, किन्तु वमन किया (थूका हुआ) विष वापस पीने की इच्छा नहीं करता॥६॥

DON'T DESIRE THAT WHICH YOU HAVE ABANDONED

6. A serpent of the *Agandhan* species prefers to enter fiercely burning flames rather than to suck back the vomited venom.

विशेषार्थ :

श्लोक ६. अगंधन कुल में उत्पन्न सर्प–सर्पों की अनेक जातियाँ होती हैं। उनमे दो प्रमुख हैं–अगन्धन व गन्धन जाति। गन्धन जाति में उत्पन्न सर्प किसी को डस लेता है तो मंत्रवादी

द्वारा बुलाये जाने पर वह उस व्रण (घाव) पर मुँह लगाकर वापस विष को पी लेता है। किन्तु अगन्धन जाति का सर्प-अग्नि मे जलकर मर जाना स्वीकार कर लेता है, वमन किये विष को वापस नही पीता।

इसी उदाहरण द्वारा सती राजीमती मुनि रथनेमि को उद्बोधन देती है कि अगन्धन कुल में उत्पन्न सर्प की तरह त्याग किये हुए विषयों को वापस ग्रहण करने से तो मर जाना अच्छा है। चित्र क्रमाक ४ मे इसे दर्शाया गया है। इस विषय मे आचार्य महाप्रज्ञ ने विसवन्त जातक का सुन्दर दृष्टान्त दिया है, जो इस उदाहरण पर अच्छा प्रकाश डालता है-

एक बार शास्ता (तथागत बुद्ध) ने भिक्षुओ को सम्बोधित करके कहा-"भिक्षुओ ! एक बार छोडी हुई चीज को सारिपुत्र ग्रहण नही करता, भले ही प्राण छोडने पडे।" फिर उन्होंने अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाई-प्राचीन काल मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व एक विष-वैद्य कुल मे उत्पन्न हुए। एक बार किसी ग्रामीण को सॉप ने डस लिया। उसके स्वजनो ने तुरन्त विष-वैद्य को बुलाया। वैद्य ने उनसे पूछा-"औषधि से विष दूर करूँ अथवा जिस सॉप ने डसा है, उसे बुलाकर उसी के द्वारा विष वापस निकलवाऊँ?" लोगो ने कहा "सॉप को बुलाकर विष निकलवाओ।" वैद्य ने सॉप को बुलाकर पूछा-"तुमने इसे डसा है?" सॉप ने उत्तर दिया-"हॉ, मैंने ही डसा है।"

वैद्य-"अपने डसे हुए स्थान से उस विष को वापस पी।"

सॉप-"मैने एक बार छोडा हुआ विष कभी पुन: ग्रहण नही किया। अत: मै ऐसा नही करूँगा।"

वैद्य ने लकडियॉ मॅगाकर आग जलाई और कहा-"अगर अपने उगले हुए विष को वापस नही खीचता है तो इस जलती अग्नि मे प्रवेश करना पडेगा।"

सर्प ने कहा-"अग्नि प्रवेश कर मर जाना मजूर है, किन्तु एक वार छोडा हुआ विष फिर नही चाटूँगा। यह कहकर सर्प ने एक गाथा कही-

धिरत्थु ते विस वन्त यमह जीवितकारणा।
वन्त पच्चाविस्सामि मतम्मे जीविता करे॥

-धिक्कार है इस जीवन को, जिस जीवन के लिए एक बार विष उगलकर वापस निगलना पडे। ऐसे जीवन से मरना अच्छा है। यह कहकर सर्प अग्नि मे प्रविष्ट होने को तैयार हो गया। तब वैद्य ने उसे रोका और कहा-"अब किसी को दु:ख न देना।" यह कहकर सर्प को निर्विष करके छोड दिया और रोगी को औषधि से ठीक कर दिया।

(जातक प्र खण्ड, पृ. ४०-४७)





वमन किया मत पीओ

DO NOT DRINK WHAT YOU HAVE VOMITED

पक्खंदे जलियं जोइं-(नीचे का दृश्य) गुफा के एकान्त मे मती राजीमती के रूप-लावण्य को देखकर मुनि रथनेमि का चित्त चचल हो उठा। उनके मोह भरे वचन सुनते ही सती राजीमती ने अपनी भीगी शाटिका शरीर पर लपेट ली और सिकुडकर बैठ गई।

(below) Alone in the cave, when ascetic Rathnemi saw the beauty of Sati Rajimati he was filled with lust At his lewd invitation, Rajimati covered her body in her robe and squeezed into a corner

फिर वह उदाहरण देकर समझाती है-(ऊपर का दृश्य) "सर्प दो प्रकार के होते है, एक गधन कुल मे जन्मा, जो अपन द्वारा काटे हुए को मत्र द्वारा बुलाये जाने पर आकर वापस उसका जहर चूस लेता है और दूसरा अगधन कुल का सर्प, जो मत्रवादी द्वारा आकर्षित करने पर आता तो है, परन्तु अपना उगला हुआ विष वापस चूसने से साफ इन्कार कर देता है। मत्रवादी कहता है -या तो अपना विष वापस पी अथवा जलती हुई अग्नि मे भस्म होना पडेगा। तो अगधन कुल का सर्प अग्नि में जलकर भस्म होना स्वीकार कर लेता है, परन्तु वमन किया विष वापस नही पीता।

Giving an example she tries to rid him of his lust—(above) There are two types of snakes One sucks back its venom from the body of its victim when summoned with the help of mantra It is of the Gandhan species. The other type, belonging to the Agandhan species, approaches under the influence of the mantra but refuses to suck back the venom When the Mantra-chanter threatens to throw it into fire, it prefers to turn into ashes rather than to suck back the vomited venom

राजीमती का उद्बोधन-इसी प्रकार तुम त्याग किए हुए भोगो को वापस भोगने की इच्छा मत करो, भले ही मृत्यु का वरण करना पड़।

(अध्ययन २, श्लोक ६-१०)

The inspiration given by Rajimati—In the same way you should not desire to indulge in pleasures you have abandoned even when you are left with no alternative but death

(Chapter 2, verses 6-10)

ELABORATION :

(6) The serpent of the *Agandhan* species—Mention is found in the scriptures of numerous species of snakes. Two important— ones are *Agandhan* and *Gandhan* The snake of the *Gandhan* species sucks back its venom from the body of its victim when summoned with the help of a *mantra* But that belonging to the *Agandhan* species prefers to turn into ashes rather than to suck back the vomited venom.

Giving this example, Sati Rajimati explained to ascetic Rathnemi, "Rather than yielding to the once abandoned desires it is better to die like a snake of the *Agandhan* species. (see **illustration No. 4**). In this context Acharya Mahaprajna has quoted a similar story from the Jatak Tales—

Once the Buddha said to his disciples, "*Bhikkhus*! Sariputra does not accept a thing once abandoned even if he has to lose his life" And he then narrated a story about one of his past incarnations—In the remote past, king Brahmdatt ruled over Varanasi During that period Boddhisatva was born as a venom-doctor Once a villager was bitten by a snake The members of his family at once called the venom-doctor. The doctor asked, "Should I cure him by medicine or call back the snake and make him suck back the venom?" The family members asked him to call the snake The doctor called the snake and asked it, "Did you bite this person?" The snake replied, "Yes! It was I who bit this man."

The doctor, "Suck back the venom."

The snake, "I have never sucked back the venom I have expelled. So I will not do now"

The doctor asked for wood and lit a fire. He then said to the snake, "If you do not suck back the venom you will be thrown into the fire."

The snake said, "I would prefer to turn into ashes rather than to suck back the venom I have once expelled," and it recited a verse—

"Curse that life for which one has to suck back the venom once expelled Death is better than such a life " After this the snake was ready to jump into the fire The doctor prevented it from doing so and said, "Do not harm anybody now " The doctor took out its fangs and let it go free. He then cured the patient with medicines.

(***First Jatak*****, page 40-47)**

७ : धिरत्थु तेऽजसोकामी जो तं जीवियकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं सेयं ते मरणं भवे॥

(राजीमती का कथन रथनेमि के प्रति)

हे यश की कामना करने वाले ! धिक्कार है तुझे, जो तू इस नश्वर जीवन के लिए वमी हुई (त्यागी हुई) वस्तु को पीने की इच्छा करता है। तेरे इस जीवन मे तो मृत्यु अच्छी है॥७॥

(Rajimati addresses Rathnemi)

7. O desirous of fame, fie upon you that for the sake of your ephemeral life you wish to feed on what you have vomited Death is better than such life.

८ : अहं च भोगरायस्स तं चऽसि अंधगवण्हिणो।
मा कुले गंधणा होमो संजमं निहुओ चर॥

मैं (राजीमती) भोजराज की पुत्री हूँ और तू (रथनेमि) अधकवृष्णि का पुत्र है। हम उस गन्धन कुल के सर्प की तरह परित्यक्त भोगों का सेवन करने वाले न बने, तू मन को सयम में स्थिर करके विचरण कर॥८॥

8. I (Rajimati) am the daughter of the king of Bhojas and you (Rathnemi) the son of Andhak Vrishnis. Let us not become wallowers in abandoned pleasures like *Gandhan* snakes. Lead your life in a disciplined manner.

विशेषार्थ

श्लोक ८. भोजराज एव अंधकवृष्णि–आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज ने भोजराज की पुत्री का अर्थ किया है–उग्रसेन राजा की पुत्री राजीमती और अंधकवृष्णि के पुत्र–अर्थात् समुद्रविजय के पुत्र रथनेमि।

ELABORATION :

(8) ***Bhoyaraya and Andhagvahinno***—According to Acharyashri Atmaram ji M., the daughter of the king of Bhojas means Rajimati, the daughter of king Ugrasen, and the son of Andhak Vrishnis means Rathnemi, the son of king Samudravijaya.

९ : जइ तं काहिसि भावं जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धो व्व हडो अट्ठिअप्पा भविस्ससि॥

यदि तू जिस-जिस स्त्री को देखेगा, उसके प्रति राग-भाव करेगा तो वैसा ही अस्थिर चित्त होकर डोलता रहेगा जैसे वायु के वेग से हट नामक वनस्पति। (यह विना जड की एक जलीय वनस्पति होती है जैसे–जलकुम्भी)॥९॥

9. If you feel passion for whichever woman you set your eye upon, you will be unsteady in mind and waver as the *hut-plant* does in wind (this is a rootless aquatic plant; plankton).

रथनेमि स्थिर हो गया

१० : तीसे सो वयणं सोच्चा संजयाइ सुभासियं।
अंकुसेण जहा नागो धम्मे संपडिवाइओ॥

उस (राजीमती) संयमवती के सुभाषित वचन सुनकर रथनेमि संयम में वैसे ही सुस्थिर हो गया जैसे अकुश लगने पर हाथी वश में आ जाता है॥१०॥

RATHNEMI COMPOSES HIMSELF

10. Having heard these inspiring words from the disciplined lady (Rajimati), like a mad elephant goaded by the lance, Rathnemi regained his composure and established himself in religious discipline

११ : एवं करेंति संबुद्धा पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु जहा से पुरिसोत्तमो॥
त्ति बेमि।

बुद्धिमान् (सम्यग्दृष्टि), पण्डित (सम्यग्ज्ञानी), तथा पापमुक्त (सम्यक् चारित्रवान) पुरुष ऐसा ही करते हैं। वे भोगों से उसी प्रकार निवृत्त हो जाते हैं जैसे पुरुषोत्तम (रथनेमि) हो गये।

ऐसा मैं कहता हूँ॥११॥

11. The sagacious, scholarly, and pious men act thus. They rise above indulgences just as the great man (Rathnemi) did. .. So I say.

विशेषार्थ

श्लोक ११. पुरुषोत्तम–आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज ने अपनी टीका मे प्रश्न उठाया है कि मुनि रथनेमि तो विषयो के प्रति आकृष्ट होकर विचलित हो गये, फिर उन्हे पुरुषोत्तम क्यों कहा गया। इसका समाधान दिया है–मोहोदयवश उनके विचार डगमगाये जरूर, परन्तु राजीमती सती के शिक्षा वचनो से वे पुन: सयम मे स्थिर हो गये और दृढ मन से चारित्र-पालन कर मोक्ष में गये। इस धीरता के कारण उन्हे पुरुषोत्तम कहा गया है। मोहोदयवश विचलित होकर जो विवेकोदय होने पर पुन सँभलकर सयम मे स्थिर हो जाता है, उसे महान् माना जाता है।

ELABORATION :

(11) *Purisottamo*—great man The doubt about how Rathnemi could be called a great man when he got attracted towards a female body and was filled with lust has been resolved by Acharyashri Atmaram ji M —Because of the rise of feeling of desire he wavered, but after hearing the sermon of Rajimati he regained his composure He then led a disciplined life and attained liberation Due to this inner strength he was called a great man. Those who re-establish themselves in the disciplined way after circumstantially losing their composure are believed to be great.

उपसंहार

इस अध्ययन में श्रमण जीवन मे स्थिर और साधनालीन रहने के लिए काम-राग निवारण करने का संदेश है। ससार-विषयों से विरक्त साधक ही एकाग्र भाव से साधना कर सकता है। जो स्त्रियो के रूप आदि देखकर संयम से चलित हो जाता है, वह डगमगाते चरणो से इस असिधारा पथ पर कैसे चलेगा? अतः काम-विजय कर संयम में स्थिर रहे, यदि कभी मन चलित हो जाये तो 'वमन किया हुआ पीने से तो मरना अच्छा' यह मानते हुए पुन. संयम-पथ मे सुस्थिर हो जाये।

Conclusion

This chapter contains the message that to be steadfast and unwavering in the ascetic way one should free oneself from the attitude of lust. Only a detached person can concentrate fully in his practices How can a person who loses his determination when he looks at the beauty of the female body walk on the razor's edge? Therefore an ascetic should vanquish lust, remain unwavering in discipline, and if he happens to waver by chance, he should regain his composure with the thought that it is better to die than to drink what one has vomited.

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

END OF SECOND CHAPTER

तृतीय अध्ययन : क्षुल्लकाचार कथा

प्राथमिक

दूसरे अध्ययन में श्रामण्य में स्थिरता व धृति के लिए काम-राग अर्थात् मोह से दूर रहने की प्रेरणा दी गई है। विरक्त आत्मा ही सयम का शुद्ध पालन कर सकता है। सयम की शुद्ध-पालना-विधि का नाम है आचार।

जो अनुष्ठान मोक्ष-प्राप्ति में सहायक हो तथा जो व्यवहारशास्त्र-मर्यादा के अनुकूल एव लोक-व्यवहार के विरुद्ध न हो वह आचार तथा शेष अनाचार माना जाता है। आचार धर्म है, कर्त्तव्य है; अनाचार अधर्म है, अकर्त्तव्य है। वह निषिद्ध कर्म है।

स्थानागसूत्र मे आचार के पाँच भेद बताये गये हैं-(१) ज्ञानाचार, (२) दर्शनाचार, (३) चारित्राचार, (४) तपाचार, एव (५) वीर्याचार। इसी मे सम्पूर्ण मुनिधर्म समाहित है।

प्रस्तुत अध्ययन का नाम **क्षुल्लकाचार कथा** है। क्षुल्लक का अर्थ है, छोटा या अल्प। क्षुल्लकाचार से अभिप्राय है- श्रमण आचार का सक्षेप मे वर्णन। इस अध्ययन के १५ श्लोको मे श्रमणचर्या के अनाचारो का वर्णन है। अनाचारों की सख्या भिन्न-भिन्न सूत्रो में भिन्न-भिन्न है। जैसे सूत्रकृताग (१/९/१२) में **धोवण** (वस्त्र धोना), **रयण** (वस्त्र रगना), **पामिच्च** (साधु के लिए उधार लिया हुआ), आदि भी श्रमण के लिए वर्जनीय हैं, वह भी अनाचार है। अत आचार-अनाचार का विवेक करना श्रमण की स्वय की प्रज्ञा पर निर्भर है।

इन अनाचारों मे कुछ अनाचार ऐसे है जो अग्राह्य, अभोज्य और अकरणीय है। जिनका हिसा से प्रत्यक्ष सम्बन्ध जुडता है, जैसे–सचित्त भोजन, रात्रि भोजन आदि। कुछ अनाचार ऐसे है जिनका निरूपण सयम की विशुद्धि व ब्रह्मचर्य-रक्षा की दृष्टि से हुआ है। वे अनाचार परिस्थिति तथा विशेष मे आचार भी वन सकते हैं, जैसे–वस्तिकर्म (विरेचन)। यह रुग्णावस्था में अनाचार नही है जबकि शरीर पुष्टि के लिए अनाचार है। अजन–शोभाविभूषा के लिए यह अनाचार है किन्तु नेत्ररोग की अवस्था में अनाचार नहीं है। वृद्ध अवस्था मे स्थविर को छत्र धारण व उपानत् (पद त्राण) आदि भी अनाचार नही है।

● ●

THIRD CHAPTER : CONDENSED CODES

INTRODUCTION

In the second chapter it is mentioned that in order to be steadfast in observing asceticism one should avoid indulgence. Only a detached person is capable of properly observing ascetic discipline The process of strictly following ascetic discipline is known as *achar*, or proper code of conduct.

Ritual of the sort that is helpful in attaining liberation and also behavior that follows the scriptures and is not against social norms—these two things are considered proper conduct; what is not included in these is improper conduct Proper conduct is religion as well as duty Improper conduct is against religion and duty and is proscribed

The *Sthanang Sutra* refers to five types of codes—(1) the code of knowledge, (2) the code of perception, (3) the code of behavior, (4) the code of austerity, and (5) the code of potency All these combined cover the complete ascetic conduct

The name of this chapter is Kshullakachar Katha *Kshullak* means small or little Thus in this chapter are included the codes in brief or in their condensed form The fifteen verses of this chapter list what is proscribed for an ascetic The number of these acts of indiscipline varies from source to source. For example, in *Sutrakritang* it is held that washing and dying of clothes and borrowing for the use of ascetics are also proscribed as indiscipline. Therefore, the final decision about what is proper and what is not is subject to individual judgment.

Of these acts of indiscipline, some are absolutely prohibited. These include the ones that are directly related to *ahimsa*, viz. eating uncooked food, eating after sunset, etc. Some others have been formulated with a view to enhancing discipline and protecting celibacy. These acts may become acceptable in special conditions and circumstances Some examples are—purgation is not proscribed for an ailing ascetic; putting collyrium in eyes to enhance beauty is prohibited but is allowed as a treatment for eye ailments, and the use of umbrella and sandals is allowed in old age.

According to Acharya Bhadrabahu this chapter has been taken from the third chapter of the ninth *Purva*

तइयं अज्झयणं : खुड्डयायार कहा
तृतीय अध्ययन : क्षुल्लकाचार कथा

THIRD CHAPTER : KHUDDAYAYAR KAHA
CONDENSED CODES

१ : संजमे सुट्ठिअप्पाणं विप्पमुक्काण ताइणं।
तेसिमेयमणाइण्णं निग्गंथाण महेसिणं॥

जो संयम में अच्छी प्रकार स्थिर हैं, बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त हैं, षट्काय जीवों के रक्षक (त्राता) हैं उन महर्षि निर्ग्रन्थों के लिए जो आचार योग्य नहीं हैं ऐसे ये आगे कहे जाने वाले अनाचीर्ण हैं॥१॥

1. The following are the prohibitions for those great ascetics who are steadfast in their discipline, free of any physical or mental attachments, and the saviors of all beings.

विशेषार्थ :

श्लोक १ सुस्थितात्मा–जिनकी आत्मा सयमाचरण मे भली प्रकार स्थिर है। विप्रमुक्त–जो बाह्य (स्त्री, धन आदि) एव आभ्यन्तर (मान, माया, लोभ आदि) परिग्रह से सर्वथा दूर है। त्राता–रक्षक। त्राता शब्द से अनेक अर्थ व्यक्त होते है, जैसे–दुराचार से अपनी आत्मा की रक्षा करने वाला स्व-रक्षक, सदुपदेश देकर दूसरे जीवों को दुर्गति से बचाने वाला पर-रक्षक, सब जीवों के प्रति करुणाभाव रखते हुए उनकी दया पालने वाला स्व-पर-रक्षक। निर्ग्रन्थ–राग-द्वेष की गाँठें अथवा परिग्रहरूप ग्रन्थि से जो मुक्त है। महर्षि–महान् ऋषि, अथवा महेसी–मोक्ष की इच्छा रखने वाला–ये पाँचों विशेषण मुनि के विविध चारित्रिक गुणों को सूचित करने वाले है।

ELABORATION :

(1) ***Sutthiappanam***—meticulously firm in his discipline.

Vippamukkan—free of all attachments, physical (woman, wealth, etc.) or mental (conceit, illusion, greed, etc). ***Tainam***—protector or savior. This word conveys various meanings. One who protects himself from evil deeds, one who protects others by showing the right path, and one who protects himself as well as others by nurturing the feeling of compassion for all beings ***Nigganthanam***—free of the knots of attachment and aversion. ***Mahesinam***—great sage who is desirous of liberation These five are adjectives revealing various virtues inherent to ascetic conduct.

अनाचार वर्णन

२ : उद्देसियं कीयगडं नियागमभिहडाणि य।
राइभत्ते सिणाणे य गंधमल्ले य वीयणे॥

१. औद्देशिक–निर्ग्रन्थ के निमित्त आरंभ-समारंभ करके वनाया हुआ, २. क्रीतकृत–निर्ग्रन्थ को देने के लिए खरीदा हुआ, ३. नियाग (नित्याग्र-नियोगिक) आदरपूर्वक निमंत्रण देकर प्रतिदिन दिया जाने वाला, ४. अभिहृत (अभ्याहृत) साधु को देने के लिए दूसरे स्थान या ग्राम आदि से लाया हुआ, ५. रात्रि भोजन, ६. स्नान, ७. गंध (सुगन्धित पदार्थ का लेप या सूँघना), ८. माल्य–पुष्प आदि की माला, ९. वीजन–पंखा झलना-झलवाना॥२॥

THE PROHIBITIONS

2. The list of acts and things proscribed for an ascetic— 1 ***Auddeshik***—food specifically prepared for ascetics, 2. ***Kreetkrit***—food specifically purchased for ascetics, 3. ***Niyaag***—food offered with due respect every day after inviting an ascetic, 4 ***Abhihrit***—food specifically brought from some other place or village for ascetics, 5 **Eating after sunset.** 6 **Bathing,** 7 **Applying or smelling perfumes,** 8 ***Malya***—the use of garlands made of flowers or other things, 9 ***Veejan***—making use of a fan for oneself or others.

विशेषार्थ :

श्लोक २. रात्रिभुक्त अथवा रात्रि भोजन–यह चार प्रकार का बताया है–(१) दिन में लाकर दूसरे दिन, दिन के समय खाना, (२) दिन में लाकर रात्रि में खाना, (३) रात में लाकर दिन में खाना, और (४) रात में लाकर रात में खाना। इन चारों का ही निषेध है। *(अगस्त्यसिंह चूर्णि)*

आगमों में स्थान-स्थान पर रात्रि भोजन को जीवहिंसा का कारण बताकर उसका सर्वथा निषेध किया है।

स्नान निषेध–इसके पीछे दो महत्त्वपूर्ण कारण बताये जाते हैं। पहला–वैदिक परम्परा में स्नान को एक पवित्र कर्म और मोक्ष की प्राप्ति का साधन माना जाता है। जबकि भगवान महावीर ने कहा है–स्नान से अपकाय के जीवों की हिंसा स्पष्ट रूप में होती है, अतः जल-स्नान से मुक्ति मानना निरा अज्ञान व मिथ्यात्व है। दूसरा कारण ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए शरीर को विभूषा से दूर रखने के लिए मुनि को अस्नान व्रत का विधान है। इसी कारण अचित्त जल से स्नान करने का भी निषेध किया गया है। *(सूत्रकृतांग सूत्र १/७/१२-२२)*

ELABORATION :

(2) **Eating after sunset**—This is of four types—(1) bringing food during the day and eating it the next day, (2) bringing during the day and eating during the night; (3) bringing during the night and eating the next day, and (4) bringing during the night and eating the same night All these are prohibited (*Agastyasimha Churni*)

In the canonical literature eating during the night has been strictly prohibited time and again because it is held to be a cause of harm to beings

Prohibition of bathing—Two reasons are given for this One is that in Vedic tradition bathing or anointing is believed to be one of the means of attaining liberation. Opposing this, Bhagavan Mahavir has said that bathing or anointing certainly causes harm to the water-bodied beings Thus, the belief that bathing leads to liberation is clearly a fallacy and ignorance. The other reason is that in order to protect celibacy an ascetic is not allowed to beautify his body. Therefore, taking a bath with uncontaminated water is also prohibited (*Sutrakritang Sutra* 1/7/12-22)

३ : सन्निही गिहिमत्ते य रायपिंडे किमिच्छए।
संबाहणा दंतपहोयणा य संपुच्छणा देहपलोयणा य॥

१०. सन्निधि–खाद्य वस्तु का संग्रह करना (रात बासी रखना), ११. गृहि अमत्र–गृहस्थ के बर्तन में भोजन करना, १२. राज पिण्ड–राजाओं के भोजनशाला में बना अर्थात् अत्यन्त स्वादिष्ट तथा पौष्टिक भोजन, १३. किमिच्छक–तुम कौन हो क्या चाहते हो? इस प्रकार पूछकर दिया जाने वाला दानशाला या सदाव्रतों का भोजन, १४. सम्बाधन–अंगमर्दन (मालिश करना), १५. दंत प्रधावन–दंत-मजन, दातुन आदि से दाँत पखारना, १६. संप्रच्छन–गृहस्थ से कुशलक्षेम पूछना तथा उसमें रुचि रखना, १७. देह प्रलोकन–विभूषा की भावना से दर्पण में शरीर आदि देखना॥३॥

3. 10. ***Sannidhi***—to store eatables, 11 ***Grihi amatra***—to eat from the same plate with a householder, 12 ***Raj pind***—food from a king's kitchen or very tasty and nutritious food, 13 ***Kimicchak***—food from welfare kitchens which is given after asking questions like who are you?, what do you want?, 14. ***Sambadhan***—being massaged, 15. ***Dant pradhavan***—cleaning teeth with paste, powder, or fingers, 16. ***Sampracchan***—to be interested in a householder and to inquire about his welfare, 17. ***Deh pralokan***—to look into a mirror with the intention of appreciation and beautification of one's own body.

४ : अट्ठावए य नालीए छत्तस्स य धारणट्ठाए।
तेगिच्छं पाहणा पाए समारंभं च जोइणो॥

१८. अष्टापद–जुआ, शतरज खेलना, १९. नालिका–पासा खेलना अथवा अन्य प्रकार की द्यूत क्रीड़ा, २०. छत्र–छत्र अथवा छाता का उपयोग करना, २१. चैकित्स्य–चिकित्सा करवाना, २२. उपानत्–जूते पहनना, २३. ज्योति समारम्भ–आग जलाना॥४॥

4. 18. ***Ashtapad***—to indulge in gambling or playing chess, 19. ***Nalika***—to gamble using dice or otherwise, 20. ***Chhatra***—use of umbrella, 21. ***Chaikitsya***—getting treatment for various ailments, 22. ***Upanat***—wearing shoes, 23. ***Jyoti samarambh***—igniting a fire.

विशेषार्थ ·

श्लोक ४. छत्र–छत्र-धारण के निषेध के संबंध में दो विकल्प हैं। जिनकल्पी के लिए संपूर्ण निषेध है किन्तु स्थविरकल्पी के लिए विशेष परिस्थिति (रोगादि) में छत्र-धारण का निषेध नहीं है।

चिकित्सा निषेध के संबंध मे भी दो विकल्प हैं। जिनकल्पी श्रमण के लिए संपूर्ण निषेध है किन्तु स्थविरकल्पी के लिए केवल सावद्य चिकित्सा करने या करवाने का निषेध है। *(आचार्य श्री आत्माराम जी म -दशवै., पृ. ४०-४१)*

जूते आदि के निषेध के संबध मे एक मत यह भी है कि अस्वस्थ अवस्था में पैरों या ऑखों के दुर्बल हो जाने पर उपानत् पहनने मे दोष नहीं है जैसा कि कहा है–दुब्बलपाओ चक्खु दुब्बलो वा उवाहणाओ आविधेज्जा ण दोसो भवति *(जिनदास चूर्णि, पृ. ११३)*

ELABORATION :

(4) ***Chhatta***—There are two conditions about the use of an umbrella For a *jinakalpi* (an ascetic who goes into near or complete isolation to pursue higher spiritual practices) the ban is absolute, but for a *sthavirkalpi* or normal ascetic the use of umbrella is allowed under special conditions such as old age or sickness

Same rule applies to getting medical treatment For *jinakalpi* it is totally banned, but for *sthavirkalpi* those processes are allowed where there is no possibility of harming living organisms. (*Dashavaikalik* by *Acharyashri Atmaram ji M*, page 40-41)

Regarding the wearing of shoes, there is another rule that permits it when one is ill or when one's legs or vision get weak. (*Jinadas Churni*, page 113)

५ : सिज्जायरपिंडं च आसंदीपलियंकए।
गिहंतरनिसिज्जा य गायस्सुव्वट्टणाणि य॥

२४. शय्यातर पिण्ड–जिस भवन मे रात्रि विश्राम करे उस भवन स्वामी के घर से भिक्षा लेना, २५. आसंदी–चौकी, पाटा, मोढा आदि बैटने के उपकरण का उपयोग करना, २६ पर्यंक–पलंग, खाट आदि का उपयोग करना, २७. गृहान्तर निषिद्या–भिक्षा लेते समय गृहस्थ के घर के भीतर वैठना, २८. गात्र उद्‌वर्तन–शरीर पर उबटन करना॥५॥

5. 24 ***Shayyatar pind***—to take food from a house that provides facilities for staying overnight, 25. ***Asandi***—the use of furniture for sitting, 26. ***Paryank***—the use of furniture for sleeping, 27. ***Grihantar nishaddya***—to sit inside a house while collecting alms, 28 ***Gaat udvartan***—to rub one's body with some paste for cosmetic purposes

विशेषार्थ

श्लोक ५ शय्यातर–यह वडा गौरवपूर्ण शब्द है। श्रमण को ठहरने के लिए आवास आदि देना शय्यादान है, शय्यादान करके भव-समुद्र तैरने वाला शय्यातर कहलाता है। श्रमण रात मे जिस उपाश्रय मे ठहरे, चरम आवश्यक करे उसका स्वामी शय्यातर कहलाता है। *(निशीथभाष्य गाथा ११४८, देखें दशवै युवा म, पृ ७४)*

गृहान्तर निषद्या–भिक्षा लेते समय गृहस्थ के घर बीच बैठना। इस सम्बन्ध मे टीका एवं चूर्णि मे काफी विस्तृत चर्चा है (देखे युवाचार्य महाप्रज्ञ दशवै)

ELABORATION :

(5) *Shayyatar*—This is a glorifying term for a householder To provide facilities for sleeping to a monk is called bed donation or *shayyadaan* One who helps himself to cross the ocean of life by this act is called *shayyatar* The owner of the house used by an ascetic for performing essential duties and sleeping is called *shayyatar* (*Nisheeth Bhashya,* verse 1148; *Dashavaikalik* by Acharya Mahaprajna, page 74)

Detailed discussions about sitting inside a house while collecting alms are available in the commentaries (*Dashavaikalik* by Acharya Mahaprajna)

६ : गिहिणो वेयावडियं जा य आजीववत्तिया।
तत्तानिव्वुडभोइत्तं आउरस्सरणाणि य॥

२९. गृहि-वैयावृत्य–गृहस्थ की सेवा, ३०. आजीववृत्तिता–पूर्व जीवन के आजीविका के साधनो के सहारे भिक्षा प्राप्त करना, ३१. तप्ताऽनिर्वृत्त भोजित्व–अधपकी सचित्त आहार सामग्री ग्रहण करना, ३२. आतुर स्मरण–पीड़ित हो जाने पर पूर्व में भोगे हुए भोगों का स्मरण करना॥६॥

6. 29. ***Grihi vaiyavritya***—to provide help or assistance to a householder, 30 ***Ajivavrittita***—to facilitate begging alms by giving reference to one's lineage or past professions, 31. ***Tapta anirvritta bhojitva***—to accept half-cooked sachit food, 32 ***Atur smaran***—to remember past enjoyments while suffering

विशेषार्थ

श्लोक ६ आजीववत्तिया–जीविका के साधनों का सहारा लेना। स्थानांगसूत्र में आजीविका के पॉच साधन बताये हैं–१ जाति (मातृपक्ष), २ कुल (पितृपक्ष), ३. कर्म (कृषि आदि), ४ शिल्प (कला-कौशल), ५ लिग (साधु-वेष)। आचार्य जिनभद्रगणि ने ६ तप, और ७ श्रुत (ज्ञान) बढाकर सात साधन बताये है। (व्यव , गा २५३) इन साधनों का सहारा लेकर आजीविका प्राप्त करना निषिद्ध है।

ELABORATION :

(6) *Ajivavattiya*—In the *Sthanang Sutra* five such references which can be used to facilitate collecting alms are mentioned—1. *Jati* (mother's family), 2 *Kula* (father's family), 3. *Karma* (profession, such as farming, etc), 4 *Shilp* (arts and crafts), 5 *Linga* (way of life, such as being an ascetic). Acharya Jinabhadragani has added two more to the list—6. *Tap* (austerity), and 7. *Shrut* (knowledge of the scriptures) (*Vyavahar*, verse 253)

One should not use any of these seven as a reference while collecting alms

७ : मूलए सिंगबेरे य उच्छुखंडे अनिव्वुडे।
कंदे मूले य सच्चित्ते फले बीए य आमए॥

३३. अनिर्वृत मूलक–सचित्त मूली, ३४. अनिर्वृत श्रृंगबेर–सचित अदरक, ३५. अनिर्वृति इक्षुखण्ड–सचित्त गंडेरी/गन्ने का टुकड़ा, ३६. सचित्त कंद, ३७. सचित्त मूल, ३८. कच्चा फल, ३९. कच्चा बीज, ये सब पदार्थ लेना व खाना॥७॥

7. 33. ***Anirvrit moolak***—*sachit* radish, 34. ***Anirvrit Shringaber***—*sachit* ginger, 35. ***Anirvrit Ikshukhand***—*sachit ganderi or* sugar-cane slices, 36 *Sachit* tuber roots, 37 *Sachit* roots, 38 *Sachit* fruits, 39. *Sachit* seeds.

८ : सोवच्चले सिंधवे लोणे रोमालोणे य आमए।
सामुद्दे पंसुखारे य कालालोणे य आमए॥

४०. आमक सौवर्चल–अनपका या सचित्त खदान का नमक, ४१. आमक सैन्धव–सचित्त सेंधा नमक, ४२. आमक रूमा लवण–सचित्त रूमा नमक, ४३. सामुद्र क्षार–समुद्र से वना सचित्त नमक, ४४. उपांशु क्षार–खारी मिट्टी से निकाला नमक, ४५. काला लवण–सचित्त काला नमक, ये सब प्रकार के सचित्त नमक लेना व खाना॥८॥

8. Six different types of edible salts in *sachit* condition or having chances of being infested with living organisms—40. ***Amak Sauvarchal,*** 41. ***Amak Saindhav,*** 42. ***Amak ruma lavan,*** 43 ***Samudra kshaar,*** 44 ***Upanshu kshaar,*** 45. ***Kaala lavan.***

९ : धूव णे त्ति वमणे य वत्थीकम्म विरेयणे।
अंजणे दंतवणे य गायब्भंगविभूसणे॥

४६. धूम-नेत्र-धूम्रपान अथवा वस्त्र आदि को धूप देना, ४७. वमन-वमन करना, ४८. वस्ति कर्म-अपान मार्ग से तेल, औषधि आदि चढ़ाना, ४९. विरेचन-मल त्याग हेतु औषधि लेना, ५०. अंजन-काजल आंजना, ५१. दंतवण-मंजन करना, ५२. गात्राभ्यंगा-मालिश करना, ५३. विभूषण-शरीर को अलंकृत करना॥९॥

9. 46 ***Dhoom-netra***—smoking; fumigating clothes, 47 ***Vaman***—emesis, 48. ***Vasti karma***—enema. 49. ***Virechana***—purgation, 50. ***Anjan***—medication of the eye, 51 ***Dantavan***—cleaning teeth, 52. ***Gatrabhyanga***—massage, 53 ***Vibhushan***—beautifying the body.

विशेषार्थ

श्लोक ९ धूवणेत्ति-धूमनेत्र (धूम्रपान) आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने प्राचीन आगमिक सन्दर्भ एव टीका आदि के आधार पर इसके दो अर्थ मान्य किये है-(क) शरीर शोभा के लिए धूप सेकना व वस्त्रो को धूप देना, तथा (ख) धूम्रपान हुक्का, बीडी आदि पीना।

ELABORATION :

(9) ***Dhoovanette***—Acharyashri Atmaram ji M has given two interpretations of this term on the basis of scriptures and later commenatries—(a) the use of perfumes on the body and fumigating clothes in order to enhance physical charm, and (b) smoking cigarette, pipe, etc

१० : सव्वमेयमणाइण्णं निग्गंथाण महेसिणं।
संजमंमि य जुत्ताणं लहुभूयविहारिणं॥

जो निर्ग्रन्थ महर्षि संयम में यतनाशील है तथा पवन के समान (लघुभूत) मुक्त विहारी हैं उनके लिए यह सभी (उपरोक्त) आचरण योग्य नहीं है। अतः इन्हें अनाचार कहा गया है॥१०॥

10. Those accomplished ascetics who are steadfast in their discipline and who move freely like wind are not supposed to

indulge in any of the above said activities. That is why these are classified as improper conduct.

शुद्ध आचार पालन का फल

११ : पंचासवपरिण्णाया तिगुत्ता छसु संजया।
पंचनिग्गहणा धीरा निग्गंथा उज्जुदंसिणो॥

पाँच आस्रवों के ज्ञाता व उनका निरोध करने वाले, तीनों गुप्तियों से गुप्त, छः प्रकार के जीवो के प्रति संयत, पाचों इन्द्रियों का निग्रह करने वाले धीर निर्ग्रन्थ ऋजुदर्शी संयम मे स्थिर होते हैं॥११॥

BENEFITS OF PROPER CONDUCT

11. Those serene Nirgranths who know and stop the five passages of inflow of *karmas,* who have accomplished the three-way restraints, who are careful of six types of beings, and who have full control over five senses are the ones who become firm and forthright in discipline.

विशेषार्थ :

श्लोक ११ पाँच आस्रव-(१) मिथ्यादृष्टि, (२) अत्याग, (३) प्रमाद, (४) कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), और (५) अशुभ योग (हिसा, असत्य, अदत्त ग्रहण, मैथुन और परिग्रह)।

ELABORATION :

(11) ***Five Ashravs***—1 falsehood, 2 attachment, 3 illusion, 4 passions (anger, conceit, deceit, greed), and 5 evil activities (violence, telling lies, grabbing, sex and hoarding).

१२ : आयावयंति गिम्हेसु हेमंतेसु अवाउडा।
वासासु पडिसंलीणा संजया सुसमाहिया॥

सुसमाहित (समाधियुक्त) अथवा ज्ञान साधनारत संयत पुरुष गर्मी में आतापना लेते है, हेमन्त ऋतु में निरावृत (वस्त्ररहित) रहते हैं, तथा वर्षा ऋतु में अंगोपाग समेट व आवागमन सीमित कर रहते हैं॥१२॥

12. The self disciplined ascetics engaging in spiritual practices scorch themselves during the summer, remain unclad in winters, and remain in one place, restricting their movement, during the monsoon.

१३ : परीसहरिऊदंता धुयमोहा जिइंदिया।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा पक्कमंति महेसिणो॥

परीषहरूपी शत्रुओं को जीतने वाले, मोह तथा अज्ञान से मुक्त जितेन्द्रिय महर्षि सभी दुःखों को नष्ट करने के लिए पराक्रम–पुरुषार्थ करते हैं॥१३॥

13. The great sages who win over afflictions, who are free of attachment and ignorance, and who have subjugated their senses, endeavor with valor to destroy all sorrows.

१४ : दुक्कराइं करित्ताणं दुस्सहाइं सहित्तु य।
केइत्थ देवलोएसु केई सिज्झंति नीरया॥

दुष्कर (कठोर क्रिया) को करते हुए तथा दुःसह कष्टों को सहते हुए उनमें से अनेक श्रमण निर्ग्रन्थ शरीर त्यागकर देवलोक में जन्म लेते हैं तो कुछ पूर्णतया कर्मरजरहित हो सिद्धगति को प्राप्त होते हैं॥१४॥

14. Engaging in harsh practices and tolerating acute pain, many of them abandon their earthly bodies and are reincarnated in the abode of gods. Some of them who have completely got rid of the *karma* particles attain the *Siddha* status or liberation

१५ : खवित्ता पुव्वकम्माइं संजमेण तवेण य।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता ताइणो परिनिव्वुडा॥
त्ति बेमि।

संयम और तप द्वारा पूर्वकर्मों का क्षय करके स्व (निज आत्मा) और पर

(षट्काय) का त्राण करने वाले वे मुनि सिद्धि मार्ग को प्राप्त करते हैं और मुक्त हो जाते हैं।

ऐसा मैं कहता हूँ॥१५॥

15. By shedding, through discipline and austerities, all the *karmas* acquired in the past, those great sages who are saviors of the self and other beings, progress on the spiritual path and obtain liberation . . . So I say.

उपसहार

इस अध्ययन में सयम के निर्दोष-पालन हेतु उन कर्मों का निषेध किया है जिनके आचरण एव आसेवन से मुनि के व्रतो मे दोष तथा उसके प्रति लोक आस्था में किसी प्रकार की शका उत्पन्न हो सकती हो। निर्दोष मयम का आचरण करता हुआ श्रमण क्रमश सर्वकर्ममुक्त होकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

Conclusion

In this chapter are listed the proscribed things and activities that in various ways damage the discipline of an ascetic or even create a doubt about asceticism in the mind of people The *shraman* who follows the codes of conduct faultlessly becomes free of all *karmas* and obtains liberation

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

END OF THIRD CHAPTER

चतुर्थ अध्ययन : षड्जीवनिका

प्राथमिक

चौथे अध्ययन में साधु के आचार नियमो का प्रतिपादन है। आचार का आधार है, अहिसा। अहिसा का पालन वही कर सकता है जिसे जीव-अजीव का ज्ञान हो, अत इस अध्ययन में जीवो का ज्ञान कराने के लिए षड्जीवनिकाय का–अर्थात् पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति और त्रस–यो छह प्रकार के जीवो का वर्णन किया गया है। जीवों के वर्णन के साथ ही उन जीवो की हिसा से बचने का मार्ग बताया है–संयम/चारित्र। अत चारित्र रूप पंचमहाव्रत धर्म का प्रतिपादन किया है। चारित्र की शुद्ध परिपालना के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण विधि है–यतना।

यतनापूर्वक जीवन-व्यवहार चलाने वाला कर्म-बंधन से किस प्रकार अलिप्त रहता हुआ मुक्त हो सकता है इसकी प्रक्रिया बताते हुए अन्त में मुक्ति का वर्णन है–जो इस अध्ययन का अन्तिम सार है। यही धर्माचरण का चरम परम लक्ष्य है। इसी का सार बताते हुए आचार्य भद्रबाहु ने कहा है–

जीवाऽजीवाहिगमो, चरित्तधम्मो, तहेव जयणा।
उवएसो, धम्मफलं छज्जीवणियाइ अहिगारा॥ –दशवै नि ४/१२१६

इस अध्ययन मे मुख्य रूप मे पॉच अधिकार/प्रकरण है।

१ जीव-अजीव का ज्ञान (सूत्र १ से ९)

२ चारित्रधर्म की पद्धति (सूत्र १0 से १७)

३ यतना विधि (सूत्र १८ से २३)

४ उपदेश–बंध-अबध की प्रक्रिया का उपदेश दिया गया है। (श्लोक १ से ११)

५ धर्म-फल–मुक्ति मार्ग का निदर्शन (श्लोक १२ से २५)

इस अध्ययन का प्रसिद्ध नाम **षड्जीवनिका** है। दूसरा नाम है **धर्म-प्रज्ञप्ति**–अर्थात् धर्म का विशद रूप में कथन।

●●

FOURTH CHAPTER : SIX LIFE FORMS

INTRODUCTION

The fourth chapter gives the prohibitions included in the ascetic code. The basis of this code of conduct is *ahimsa* Only a person who has the knowledge of living and non-living things can observe *ahimsa* Therefore, in this sixth chapter life forms have been described in detail in order to impart knowledge about living things These six forms are—earth, water, fire, air, plant and mobile forms With these details are included methods of avoiding harm to these All this combined is known as *samyam* (discipline) or *charitra* (the conduct of the disciplined) This code of conduct is propagated as *panch-mahavrat-dharma* or the religion of five great vows For the proper following of this code of conduct, the most important thing is *yatana* or caution

The process of how to save oneself from the bondage of *karma* by being cautious in one's behavior has been explained As liberation is the ultimate goal of all endeavor, it has been described at the end of this chapter. Acharya Bhadrabahu has said—The essence of the code of ascetic conduct is avoiding harm to the six life forms through caution in behavior, and that comes through the knowledge of living and non-living things (*Dashavaikalik Niryukti* 4/1216)

This chapter can be divided into five parts—

1 The knowledge of living and non-living things (Sutra 1 to 9)
2 The method of following the codes (Sutra 10 to 17)
3 The cautions (Sutra 18 to 23)
4 Preaching about the process of bondage and freedom (verses 1 to 11)
5 The path of liberation (verses 12 to 25)

The popular name of this chapter is *Shadjeevanika* It is also known as *Dharma-prajnapti*, or elaboration of *dharma* According to Bhadrabahu Swami, this chapter has been reproduced from *Atmapravad*, the seventh *Purva* ■■

चउत्थं अज्झयणं : छज्जीवणिया
चतुर्थ अध्ययन : षड्जीवनिका

FOURTH CHAPTER : SHADJEEVANIKA
SIX LIFE FORMS

धर्म-प्रज्ञप्ति का कथन

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–इह खलु छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती।

आयुष्मान् ! मैंने सुना है कि गुरु-भगवन्त ने यह कहा–काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर ने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा जानकर निश्चय ही षड्जीवनिका नामक अध्ययन का भलीभाँति सम्यक् रूप में प्रवचन किया है। इस धर्म-प्रज्ञप्ति (धर्म का सम्यक् प्रतिपादन करने वाले) नामक अध्ययन का ज्ञान प्राप्त करना मेरे आत्मा के लिए श्रेयस्कर है॥१॥

PROPAGATION OF RELIGION

1. Long lived one! I have heard that Guru-bhagavant (great teacher) has said this—It is certain that Shraman Bhagavan Mahavir of the Kashyap clan has, after knowing through direct perception, properly presented and explained the chapter titled Six Life Forms. It is beneficial for my soul to understand this chapter entitled *Dharma-prajnapti*, or Propagation of Religion).

विशेषार्थ ·

सूत्र १ आउसं–आयुष्मान्–इसका सामान्य अर्थ है–दीर्घजीवी, किन्तु लाक्षणिक अर्थ है–विनय, शील, चारित्र आदि सद्‌गुणो से युक्त योग्य श्रोता या शिष्य ! (हरिभद्रसूरि टीका)

कासवेणं–काश्यपेन–भगवान महावीर का काश्यप गोत्र होने से उन्हें 'काश्यप' कहा जाता है। काश्यप का शब्दार्थ है इक्षु-रस पीने वाला। भगवान ऋषभदेव के लिए सर्वप्रथम काश्यप शब्द का प्रयोग हुआ जो उनके इक्ष्वाकु वश का वाचक भी है, यथा–काश्यपगोत्री।

ELABORATION :

(1) ***Aausam***—The general meaning of this term is 'Long lived one', but it is also used as a term of address for a humble, upright, disciplined, virtuous and able listener or disciple (Commentary by Haribhadra Suri)

Kasavenam—As Bhagavan Mahavir belonged to the Kashyap clan he was called a Kashyap This word means one who drinks cane-juice The epithet was first used for Bhagavan Rishabh Dev, and it also indicates that he belonged to the Ikshvaku family

२. कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती।

वह षड्‌जीवनिका नामक अध्ययन कौन-सा है जो श्रमण भगवान् महावीर द्वारा उपरोक्त प्रकार से प्ररूपित है तथा उसका पठन अध्ययन मेरे लिए श्रेयस्कर–लाभकारी है॥२॥

2. Which is this chapter entitled Six Life Forms that was presented by Shraman Bhagavan Mahavir and the study of which is beneficial for my soul

षड्‌जीवनिकाय स्वरूप

३. इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती।

तं जहा पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सइकाइया तसकाइया।

उपरोक्त षड्जीवनिका नामक अध्ययन जो भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित है, जिसका अध्ययन करना मेरे लिए कल्याणकारी है, वह इस प्रकार है–

(षड्जीवनिकाय के प्रकार) पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक तथा त्रसकायिक॥३॥

SIX LIFE FORMS EXPLAINED

3. The said chapter entitled Six Life Forms that was presented by Shraman Bhagavan Mahavir and the study of which is beneficial for my soul goes like this—

(The types of six life forms are. .) earth bodied, water bodied, fire bodied, air bodied, plant bodied and mobile bodied

विशेषार्थ .

सूत्र ३ **पृथ्वीकायिक**–जिन सूक्ष्म जीवो की काया काठिन्य गुण वाली पृथ्वी है। **अप्कायिक**–जिन सूक्ष्म जीवो की काया तरलता गुण वाला जल है। **तेजस्कायिक**–जिन सूक्ष्म जीवो की काया ऊष्णता गुण वाला तेज अथवा अग्नि है। **वायुकायिक**–जिन सूक्ष्म जीवो की काया चलन गुण वाली वायु है। **वनस्पतिकायिक**–जिन जीवों की काया वनस्पति है। **त्रसकायिक**–जिन जीवों की काया त्रसनशील (भयभीत होना) है अथवा चलने की क्षमता लिए है।

ELABORATION :

(3) Earth bodied—The micro-organisms consisting of particles having the property of solidity like earth **Water bodied**—The micro-organisms consisting of particles having the property of liquidity like water. **Fire bodied**—The micro-organisms consisting of particles having the property of heat like fire. **Air bodied**—The micro-organisms consisting of particles having the property of blowing like air **Plant bodied**—The full range of plant life **Mobile**

bodied—The gross life forms that are capable of flinching with fear or the moving beings In other words, the animal kingdom

४. पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं।

जब तक शस्त्र द्वारा परिणत न हो जाय तब तक (अथवा शस्त्र परिणत पृथ्वी को छोड़कर) पृथ्वी को चित्तवती या सजीव (चेतनायुक्त) कहा गया है और अनेक जीव उसमे पृथक् रूप में आश्रित भी हैं जिन सबका स्वतंत्र अस्तित्त्व है॥४॥

4. As long as it is not violated by a weapon, earth is said to be conscious or living, and it is also teeming with numerous living organisms having independent existence.

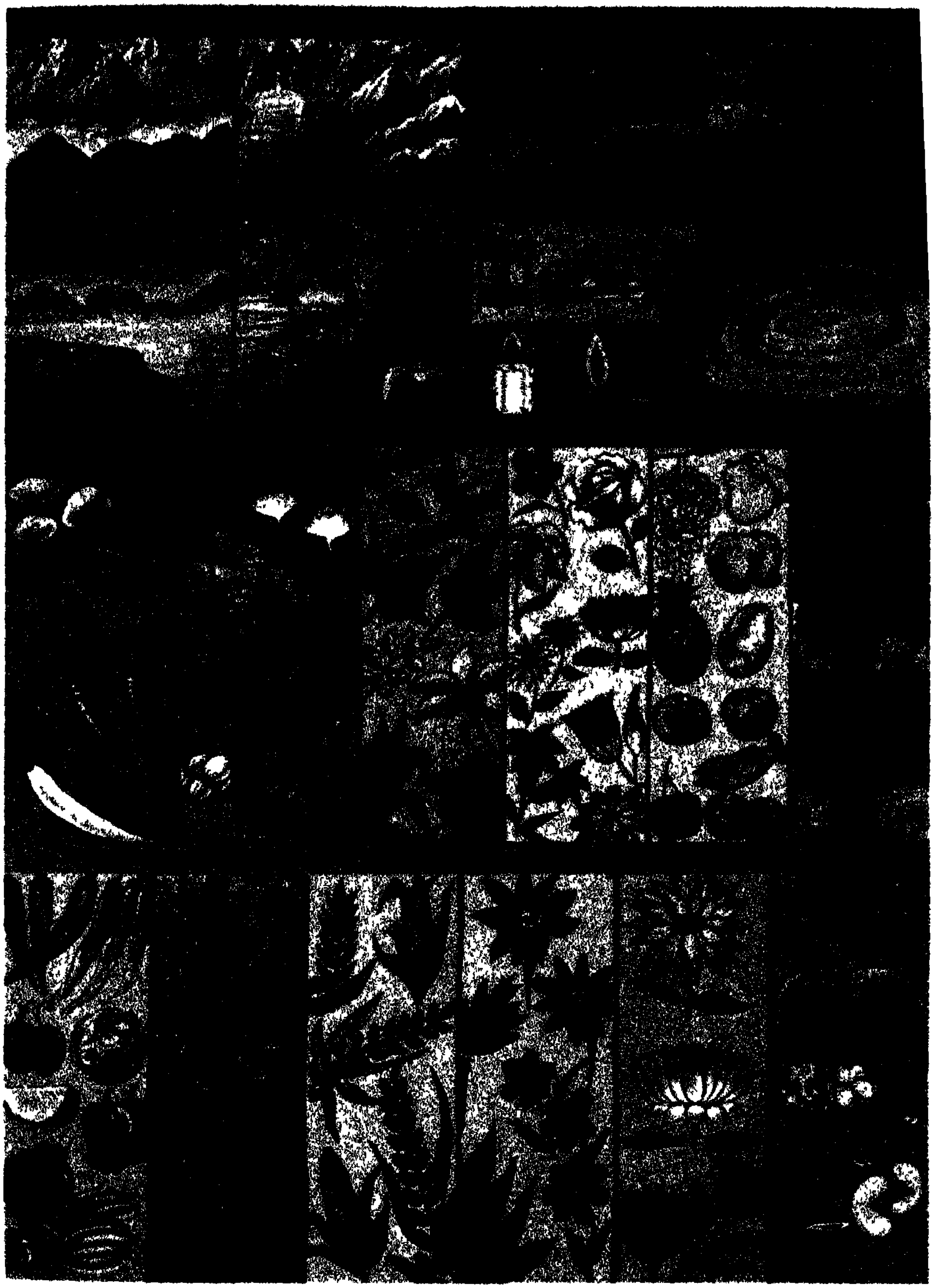
विशेषार्थ

सूत्र ४ सत्थ–शस्त्र जो घात करे या नष्ट करे वह शस्त्र कहलाता है। सूक्ष्म जीवो के स्तर पर एक प्रकार के जीवो का दूसरे प्रकार के जीवो से मिश्रण होने पर वह उनके लिए घातक हो जाता है।

अन्नत्थ सत्थ परिणएण का तात्पर्य–उनका विरोधी शस्त्र या मारक वस्तु का सयोग जब तक नहीं होता है, तब तक वह सजीव तथा संयोग होने पर जीवरहित–निर्जीव हो जाता है।

शस्त्र तीन प्रकार के कहे गये हैं–स्वकाय-शस्त्र, परकाय-शस्त्र तथा उभयकाय-शस्त्र। एक प्रकार की मिट्टी का दूसरे प्रकार की मिट्टी से मिश्रण दोनो के लिए घातक होता है–यह **स्वकाय-शस्त्र** है। मिट्टी मे पानी का मिश्रण दोनों के लिए घातक होता है–यह **परकाय-शस्त्र** है। एक प्रकार की मिट्टी को पानी में घोलकर दूसरे प्रकार की मिट्टी में मिलाया जाय तो यह घोल मिट्टी व पानी के जीवो के लिए घातक होता है–यह **उभयकाय-शस्त्र** है।

अणेग जीवा पुढोसत्ता–सूक्ष्म जीव सामान्य दृष्टि से दिखाई नहीं देते। जो रूप हमें दिखाई देता है वह स्थूल है, जैसे–मिट्टी का ढेला, चट्टान, पहाड़, जलाशय, नदी, अंगारे, लपट, हवा का झोका, वृक्ष, स्थूल वनस्पति आदि। ऐसे दिखाई देने वाले रूप अनेक सूक्ष्म जीवों के एकत्र होने से बनते हैं। इस कारण ये सभी दृष्टिगोचर जीव स्वतंत्र अस्तित्व वाले अलग-अलग शरीरधारी अनेक जीवो के समूह (पिण्ड) कहे गये हैं। (आचार्य श्री आत्माराम जी म. कृत विवेचन से)



षड्जीवकाय : (अ) एकेन्द्रिय जीव (स्थावर)

SIX LIFE-FORMS : (A) THE STATIONARY OR ONE-SENSED BEINGS

१ पृथ्वीकाय–पृथ्वी जिनका शरीर है, जैसे–मिट्टी, खदान, पर्वत आदि।

1. Prithvi-kaya—The earth-bodied beings like sand, stone, mountain, etc.

२. अप्‌काय–जल जिनका शरीर है, जैसे–समुद्र, सरोवर, नदी, कुऑं, वर्षा आदि का जल।

2. Ap-kaya—The water-bodied beings like water from the sea, pond, river, well, rain, etc

३ तेजस्काय–अग्नि जिनका शरीर है, जैसे- आकाशीय विद्युत्, कोयला, लकडी की अग्नि, अंगीठी, दीपक, गैस, विजली आदि की अग्नि।

3. Tejas-kaya—The fire-bodied beings like lightening, or fire from different sources including coal, wood, hearth, lamp, gas, electricity, etc

४ वायुकाय–वायु जिनका शरीर है, जैसे -आँधी, हवा, पखा आदि की हवा।

4. Vayu-kaya—The air-bodied beings found in storms, wind, air blown by instruments such as fans, etc

५. वनस्पतिकाय–वनस्पति जिनका शरीर है। इसके मुख्य दो भेद है -(अ) साधारण (अनन्तकाय)–जमींकन्द आलू, गाजर, प्याज, लहसुन, मूली, अदरक आदि कन्द जाति की वनस्पति। (ब) प्रत्येक वनस्पति–विविध प्रकार के फूल, फल, वृक्ष, पत्तियाँ आदि। यह सब एकेन्द्रिय तथा स्थावरकाय हैं।

5. Vanaspati-kaya—The plant-bodied beings These have two classes— **(a) Sadharan (anant-kaya),** which includes roots like potato, carrot, onion, garlic, radish, ginger, etc and **(b) Pratyek-vanaspati,** which includes various flowers, fruits, trees, leaves, etc

ये एकेन्द्रिय जीव जब तक अपने मूल से सलग्न होते है, सजीव होते है। मूल से अलग होने पर धीरे-धीरे निर्जीव हो जाते हैं। *(अध्ययन ४, सूत्र ४)*

All these are one-sensed and stationary life forms They have life as long as they are joined to their source or root Once they are separated they slowly become lifeless

(Chapter 4, verse 4)

ELABORATION :

(4) ***Satth***—weapon, that which hits or destroys is called a weapon. At the micro level, a mere mixing of two types of organisms is fatal for them.

Annatth Satth Parinaenam means that as long as it does not come in contact with a weapon or other fatal thing, such a cluster of living organisms is a living thing The moment such contact is made, it becomes non-living.

There are three types of weapons—(1) *Swakaya*—of the same type For example, if one type of sand is mixed with another type of sand, it is fatal for organisms in both. (2) *Parkaya*—of different types For example, if water is mixed with sand it is fatal for organisms in both (3) *Ubhayakaya*—of mixed types For example, if a mixture of water and one type of sand is mixed with another type of sand it is fatal for organisms in both

Aneg jiva pudhosatta—Micro-organisms cannot be normally seen or felt. What is visible is the clustered gross form like a lump of sand, a rock, a mountain, a pond, a river, embers, flame, wind, tree, large vegetables, etc These visible forms are made up of an aggregate of numerous micro-organisms That is why these visible things are called the clusters (*pind*) of numerous independently existing living beings. (*Dashavaikalik* commentary by Acharya Shri Atmaram ji M)

५. आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं।

जब तक शस्त्र द्वारा परिणत न हो जाय तब तक अप् अथवा जल को चित्तवान् या सजीव कहा गया है और वह ऐसे अनेक जीवों का आश्रय भी है, जिन सबका स्वतन्त्र अस्तित्त्व है ॥५॥

5. As long as it is not violated by a weapon, water is said to be conscious or living, and it is also teeming with numerous living organisms having independent existence

६. तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं।

जब तक शस्त्र द्वारा परिणत न हो जाये तब तक तेजस् अथवा अग्नि को चित्तवान् या सजीव कहा गया है और वह ऐसे अनेक जीवों वाला है जिन सबका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है॥६॥

6. As long as it is not violated by a weapon fire is said to be conscious or living, and it is also teeming with numerous living organisms having independent existence.

७. वाऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं।

जब तक शस्त्र द्वारा परिणत न हो जाये तब तक वायु को चित्तवान् या सजीव कहा गया है और वह ऐसे अनेक जीवों वाला है जिनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है॥७॥

7. As long as it is not violated by a weapon air is said to be conscious or living, and it is also teeming with numerous living organisms having independent existence.

८. वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं,

तं जहा–अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खंधबीया बीयरुहा संमुच्छिमा तणलया। वणस्सइकाइया सबीया चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं।

जब तक शस्त्र द्वारा परिणत न हो जाय तब तक वनस्पति को चित्तवान् या सजीव कहा गया है और वह ऐसे अनेक जीवों वाली है जिनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। ये निम्न प्रकार की होती है–अग्र-बीज, मूल-बीज, पर्व-बीज, स्कन्ध-बीज, बीज-रूह, सम्मूर्छिम, तृण और लता।

जब तक शस्त्र द्वारा परिणत न हो जायें तब तक मूल से बीज तक सभी वनस्पतिकायिकों को चित्तवान (सचित्त) कहा गया है और वह ऐसे अनेक जीवों वाले हैं जिनका स्वतन्त्र अस्तित्त्व है। (ये पाँचों स्थावर जीव हैं। इन पाँच प्रकार के स्थावर एकेन्द्रिय जीवों का दिग्‌दर्शन चित्र क्रमांक ५ में देखें।)॥८॥

8. As long as it is not violated by a weapon, a plant is said to be conscious or living and it is also teeming with numerous living organisms having independent existence. They are of these types—*agra-beej, mool-beej, parv-beej, skandh-beej, beej-rooh, sammoorchim, trin* and *lata*.

As long as they are not violated by a weapon, all sections of all these plant-bodied organisms are said to be conscious or living, and they are also teeming with numerous living organisms having independent existence. (These five types of organism come under the classification of immobile beings. (**illustration No. 5**)

विशेषार्थ

सूत्र ८ अग्गवीया–अग्र-बीज आदि उत्पत्ति की भिन्नता के आधार पर वनस्पति के भिन्न-भिन्न भेद बताये गये है, जैसे अग्र-बीज–सिरे पर बीज वाला। मूल-बीज–जिनका मूल बीज हो, जैसे–कन्द आदि। पर्व-बीज–जिनकी गाँठ (पोरा) बीज हो, जैसे–इक्षु। स्कध-बीज–जिनका स्कध ही बीज है, जैसे–थूहर, कपित्थ (कैथ)। बीज-रूह–जो बीज रूप में ही उत्पन्न होते है, जैसे–गेहूँ, धान्य आदि। सम्मूर्छिम–जो बिना बीज के ही केवल पृथ्वी-पानी आदि के कारण उत्पन्न हो जाते है। तृण–घास, दूब आदि।

सबीया–सबीज-शब्द से वनस्पति के १० प्रकार समझना चाहिए, जैसे–मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज।

ELABORATION :

(8) ***Agga-beeya***—A classification of plant life has been made according to variations in the source of growth—Those which grow when the tip is planted (*agra-beej*), the root-bulb is planted like potatoes (*mool-beej*), the knot is planted like sugar-cane (*parv-beej*), the branch is planted like roses (*skandh-beej*), the seed is planted

like wheat (*beej-rooh*), those which grow without a specific source or things like plankton (*sammoorchim*), grass (*trin*), and creepers (*lata*).

Sabeeya—all sections of a plant-bodied organism—root, bulb, trunk, skin, branch, sprout, leaf, flower, fruit and seed

त्रस जीवो का स्वरूप

९. से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा। तं जहा-अंडया पोयया जराउया रसया संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववाइया।

जेसिं केसिंचि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं आगइ-गइविन्नाया-

जे य कीडपयंगा, जा य कुंथुपिपीलिया, सव्वे बेइंदिया सव्वे तेइंदिया सव्वे चउरिंदिया सव्वे पंचिंदिया सव्वे तिरिक्खजोणिया सव्वे नेरइया सव्वे मणुया सव्वे देवा सव्वे पाणा परमाहम्मिया-

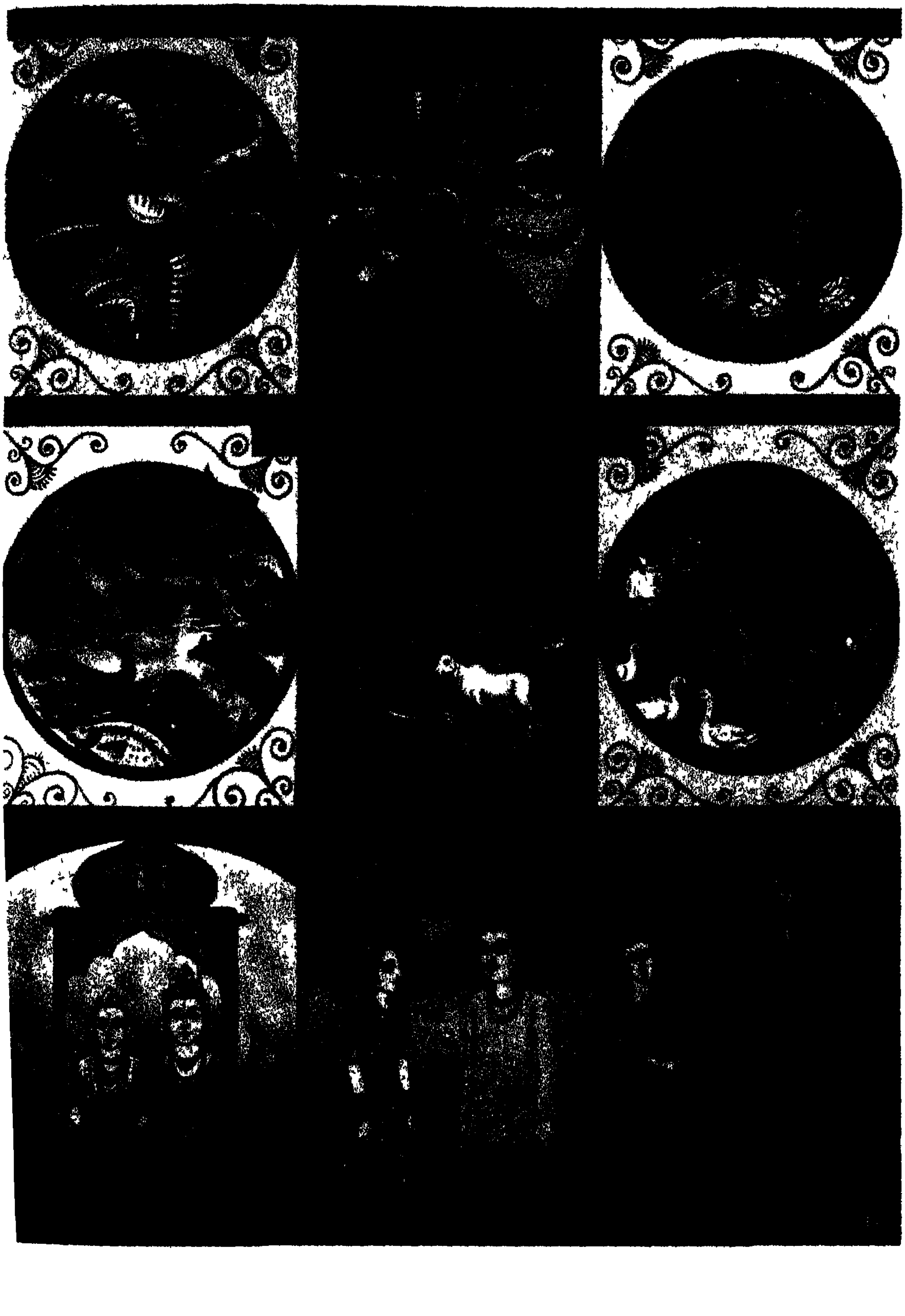
एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओ त्ति पवुच्चई।

इनके अतिरिक्त जो अनेक त्रस प्राणी हैं वे इस प्रकार हैं-अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्छनज, उद्भिज तथा औपपातिक। ये सब छठे जीवनिकाय में आते है।

जिन किन्हीं प्राणियो मे आगति (आना) तथा गति (जाना) की द्योतक क्रियाएँ हैं, जैसे -आगे जाना, पीछे आना, संकुचित होना, शब्द करना, फैलना, इधर-उधर होना, भयभीत होना तथा दौडना-भागना आदि-

वे सभी त्रस प्राणी, जो कीट, पतंग, कुंथु, पिपीलिका आदि सभी दो इन्द्रिय वाले, सभी तीन इन्द्रिय वाले, सभी चार इन्द्रिय वाले, सभी पाँच इन्द्रिय वाले, सभी तिर्यक् योनि, सभी नैरयिक, सभी मनुष्य, सभी देव, उपरोक्त सभी प्राणी परम धार्मिक अर्थात् परम सुख के इच्छुक हैं। (त्रस जीवों के अनेकानेक भेदों का परिचय चित्र क्रमांक ६ में पढ़िए)

इस छठे जीवनिकाय को त्रसकाय कहा जाता है।।९।।



षड्जीवकाय : (ब) द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीव (त्रस)

SIX LIFE-FORMS : (B) THE MOBILE OR TWO TO FIVE SENSED BEINGS

१. द्वीन्द्रिय–स्पर्श एवं रस इन्द्रिय वाले जीव, जैसे–सीप, शख, घोंघे, अलसिया आदि।

1. Dvindriya or two-sensed beings—having the senses of touch and taste, viz various shell-bearing life forms.

२. त्रीन्द्रिय–स्पर्श, रस, घ्राण इन्द्रिय वाले जीव, जैसे–चींटी, मकोडा, कानखजूरा, खटमल आदि।

2. Trindriya or three-sensed beings—having the senses of touch, taste and smell; viz ant, leech, bug, etc

३. चतुरिन्द्रिय–पिछली तीन व चक्षु इन्द्रिय पाने वाले जीव, जैसे–मकडी, मच्छर, पतंगा, बिच्छू, टिड्डा आदि।

इनको विकलेन्द्रिय भी कहते हैं।

3. Chaturindriya or four-sensed beings—having the senses of touch, taste, smell, and vision, viz. spider, mosquito, moth, scorpion, locust, etc.

These three classes are also called *Vikalendriya* or beings with inadequate senses

४ पचेन्द्रिय–पिछली चार व श्रोत्र इन्द्रिय पाने वाले जीव। इनके अनेक भेद है-(I) तिर्यंच–(अ) जलचर–मछली, मगरमच्छ, मेढक, कछुआ आदि। (ब) स्थलचर तिर्यंच–साँप, नेवला, छिपकली, बिल्ली, बदर, गाय, सिह आदि। (स) खेचर–मोर, हस, चिडिया, चमगादड आदि। (II) देव–भवनपति आदि चार प्रकार के देव। (III) मानव। (IV) नारकी जीव।

(अध्ययन ४, सूत्र ५)

4. Panchendriya or five-sensed beings—having the senses of touch, taste, smell, vision, and hearing There are many classes of these—**(I) Tiryanch or animals—(a) aquatic animals** like the fish, crocodile, frog, turtle, etc., **(b) land animals** like the snake, mongoose, lizard, cat, monkey, cow, lion, etc., and **(c) birds** like the pea-cock, swan, house-sparrow, bat, etc. **(II) Dev or divine beings**—beings that live in the heavens. These include the four classes of gods including *bhavan-pati* **(III) Manav or human beings. (IV) Naraki or the hell-beings.**

(Chapter 4, verse 5)

THE MOBILE BEINGS

9. Besides these, there are numerous mobile beings, such as—*andaj, potaj, jarayuj, rasaj, samsvedaj, sammoorchanaj, udbhij and aupapatik.*

Any living organism that has evident movement like forward movement, backward movement, squeezing, producing sound, expanding, turning, flinching, running, jumping, etc. is a mobile being.

Starting from insects, moths, worms and ants, all these beings having two, three, four or five senses, all animals, hell beings, human beings and gods, are religious (that is, desirous of bliss) **(illustration No. 6)**

All beings of this sixth type are called mobile beings.

विशेषार्थ :

सूत्र ९ बहवे तसापाणा–त्रस प्राणी अनेक प्रकार के बताये हैं। त्रस के दो भेद है–(१) लब्धि त्रस–जो अभिप्रायपूर्वक गति करते है, वे लब्धि त्रस है, जैसे–द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के प्राणी। (२) गति त्रस–जो सिर्फ गति करने के कारण ही त्रस कहे जाते हैं, जैसे -अग्नि, वायु।

त्रस प्राणियो के विविध भेद–(१) अण्डज–अण्डो मे पैदा होने वाले, जैसे- मोर आदि। (२) पोतज–जो शिशु रूप मे ही उत्पन्न होने है, जैसे–हाथी आदि। (३) जरायुज–जन्म के समय जिन पर जरायु (झिल्ली) लिपटी रहती है, जैसे–गाय, भैस आदि। (४) रसज–छाछ, दही आदि रसो से उत्पन्न होने वाले जीव। (५) सस्वेदज–पसीने मे उत्पन्न होने वाले, जैसे–जूँ आदि। (६) समूर्च्छनज–माता-पिता के सयोग के बिना–बाहरी वातावरण के प्रभाव व सयोग मे उत्पन्न होने वाले, जैसे–चीटी, मक्खी, मच्छर आदि। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के सभी जीव सम्मूर्च्छिम ही होते हैं। पचेन्द्रिय जीवों के दो प्रकार हैं–सम्मूर्च्छिम और गर्भज (गर्भ से जन्म लेने वाले समनस्क जीव)। (७) उब्भिया–उद्‌भिज–पृथ्वी को भेदकर उत्पन्न होने वाले, जैसे–पतगा आदि। (८) उववाइया–औपपातिक–अकस्मात् उत्पन्न होने वाले, जैसे–देवता और नारकीय जीव। इनके माता-पिता नहीं होते इसलिए इन्हे गर्भज भी नही कह सकते और इनके मन होता है, इसलिए ये सम्मूर्च्छिम भी नहीं है। इसी कारण इन्हे औपपातिक–अकस्मात् उत्पन्न होने वाले कहा है।

षड्जीवनिकाय के कुल ५६३ भेद होते हैं। चित्र संख्या ५-६ में जीवों के भिन्न-भिन्न भेदों को चित्रों द्वारा दर्शाया गया है।

ELABORATION :

(9) *Bahave tasapana*—Numerous classes of mobile beings. There are many different systems of classification of mobile beings. Besides the above mentioned, two more are noted here—**Based on movement**—(1) *Labdhi tras*, or having voluntary movement (this includes all above mentioned beings of the animal world). (2) *Gati tras*, or having involuntary movement like fire and air

Based on birth—(1) *Andaj*, or born from an egg, as are birds, reptiles, etc. (2) *Potaj* or born as fully formed infants, as are elephants (3) *Jarayuj*, or placental, such as man (4) *Rasaj* or born out of liquids. (5) *Samsvedaj*, or born out of sweat (6) *Sammoorchanaj*, or produced from asexual origin (7) *Udbhij*, or those that burst out of the earth when born (8) *Aupapatik*, or born suddenly like the hell beings and gods.

It is mentioned that there are 563 different classifications of living beings **(illustrations 5 and 6)**

१०. इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा नेवन्नेहिं दंडं समारंभाविज्जा दंडं समारंभंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा।

जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

इन छहों जीवनिकायो के प्रति दण्ड-समारंभ अर्थात् पीडा कष्ट पहुँचाने की क्रिया न तो स्वय करनी चाहिए, न करानी चाहिए और न करने वाले का अनुमोदन करना चाहिए।

समस्त जीवन पर्यन्त मैं तीन करण-मन से, वचन से, काया से तथा तीन योग-करना, कराना व अनुमोदन करना-से दण्ड-समारम्भ नहीं करूँगा।

भंते ! मैं अतीत में किये दण्ड समारम्भ का प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्मसाक्षी से उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ। अर्थात् स्वयं को उस पाप प्रवृत्ति से पृथक् करता हूँ॥१०॥

10. One should not indulge in, induce others to do, or approve of any act of harming any of these six life forms.

For my entire life I shall not indulge in harming through three *karans* (meaning—mind, speech, and body) and three *yogas* (meaning—doing, inducing others to do, and approving of the deed).

Bhante! I critically review any such harm done in the past, denounce it, censure it, and earnestly desist from indulging in it.

विशेषार्थ

सूत्र १० दड समारभेज्ज–दड समारभ–सामान्य दृष्टि मे दण्ड के कई अर्थ होते हैं, जैसे–किसी का निग्रह या दमन करना। बंधन, क्लेश, प्राण-हरण, धन-हरण आदि सभी दण्ड शब्द मे परिभाषित होते है। किन्तु अहिसा के क्षेत्र में दण्ड का अर्थ बहुत व्यापक है। मन-वचन-काया की वह प्रवृत्ति जो किसी जीव को दु ख या परिताप उत्पन्न करती हो–दण्ड है। इसी कारण मन को, वचन को, काया को भी दण्ड कहा गया है। उक्त प्रकार की प्रवृत्ति करना दण्ड समारम्भ कहलाता है।

तिविह तिविहेण–तीन करण तीन योग–करना, कराना और उसका अनुमोदन करना ये तीन करण अर्थात् साधन है। मन-वचन-काय ये तीन योग (विधि) है। कोई मन, वचन, काया को तीन करण व करना, कराना, अनुमोदन करने को योग कहते हैं।

निन्दा-गर्हा–अज्ञानभाव से किये पापो के प्रति पश्चात्ताप ग्लानि अनुभव करना तथा आत्मालोचन करना निन्दा है। दूसरों के समक्ष आत्म-निन्दा करना गर्हा है। (आचार्य हरिभद्र के कथनानुसार आत्मसाक्षिकी निन्दा, परसाक्षिकी गर्हा) अगस्त्यसिंह चूर्णि के अनुसार–भविष्य मे पाप न करने का सकल्प करना गर्हा है।

ELABORATION :

(10) ***Dand samarambhejja***—*Dand* means to inflict punishment, to harm. The general meaning of this term includes:

putting someone into bondage, or depriving someone of his wealth, life etc But in the context of *ahimsa*, it acquires a very wide range of meanings Any activity of mind, body, or speech that causes any pain or misery to any being is called *dand* That is why the three means of action—namely, mind, body and speech—are also known as *dand* The full statement means indulgence in these activities

Tiviham tivihena—Three *karans* or mean of action (mind, speech and body) and three *yogas* or methods (doing, inducing, and approving) In some sources the meanings are changed.

Ninda-garha—self-criticism is *ninda* and self-denunciation before others is *garha* (commentary by Acharya Haribhadra Suri) To resolve not to commit sins in future is *garha* (*Agastya Simha Churni*)

पचमहाव्रत

११. पढमे भंते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं।

सव्वं भंते ! पाणाइवायं पच्चक्खामि-से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा, नेव सयं पाणे अइवाइज्जा नेवन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

पढमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं।

भन्ते ! प्रथम महाव्रत मे प्राणातिपात से विरमण (निवृत्ति) किया जाता है।

भन्ते ! मैं सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूं। सूक्ष्म या स्थूल अथवा त्रस या स्थावर आदि सभी जीवो के प्राणों का अतिपात (घात) न मैं स्वयं करूँगा, न किसी अन्य से कराऊँगा और न किसी के द्वारा किये जाने का अनुमोदन करूँगा। मै तीन करण व तीन योग से इस महाव्रत का पालन करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किये प्राणातिपात का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मसाक्षी से वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ।

भन्ते ! मैं पहले महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ। इसमें सर्व प्राणातिपात की विरति-निवृत्ति होती है॥११॥

FIVE GREAT VOWS

11. Bhante! The first *mahavrat* or great-vow is abstinence from causing any injury to any or all living beings

Bhante! I hereby abstain from causing any injury to any or all living beings. I will never cause injury to any minute or gross, mobile or immobile, living beings; neither will I induce others to do so, or approve of others doing so. I will observe this great vow through three means and three methods.

Bhante! I critically review any such injury done in the past, denounce it, censure it, and earnestly desist from indulging in it.

Bhante! I have now taken the first great-vow in which one abstains from causing any injury to any or all living beings.

विशेषार्थ

सूत्र ११ सूक्ष्म-बादर–जिस जीव की शरीर अवगाहना अतिअल्प होती है तथा सामान्य रूप मे दिखाई नही देते, वह सूक्ष्म जीव कहलाता है। जैसे–कुंथुवा आदि। जिनकी अवगाहना बड़ी होती है वे बादर कहलाते हैं, जैसे–गाय आदि।

सूक्ष्म के दो भेद है–(क) सूक्ष्म त्रस–कुथुआ आदि। (ख) सूक्ष्म स्थावर–साधारण वनस्पति आदि। बादर के भी दो भेद है–(क) बादर त्रस–गाय, बकरी आदि। (ख) बादर स्थावर–पृथ्वी आदि। (हारिभद्रीय टीका, पृ १४६)

ELABORATION :

(11) ***Sukshm-badar***—minute and gross Each of these categories includes two further divisions—minute mobile beings

and minute immobile beings, and gross mobile beings and gross immobile beings. (commentary by Acharya Haribhadra Suri, page 146)

१२. अहावरे दुच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं।

सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि–से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा, नेव सयं मुसं वइज्जा नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा मुसं वयंते वि अन्ने न समणुजाणामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

दुच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं।

भन्ते ! इसके पश्चात् दूसरे महाव्रत में मृषावाद (असत्य भाषण) की विरति–निवृत्ति की जाती है–

भन्ते ! मैं सर्व मृषावाद का प्रत्याख्यान करता हूँ। क्रोध के वश होकर, लोभ के वश होकर, भय के वश, तथा हास्य के वश से मैं स्वय असत्य नही बोलूँगा, अन्य मे असत्य नहीं बुलवाऊँगा और असत्य बोलने वालों का अनुमोदन नहीं करूँगा। मैं सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से इस सत्य महाव्रत का पालन करूँगा। अर्थात् मैं जीवन पर्यन्त असत्य भाषण मन, वचन, काया से न करूँगा, न कराऊँगा, न करने वाले का अनुमोदन करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किए मृषावाद का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ।

भन्ते ! मैं दूसरे महाव्रत मे उपस्थित हुआ हूँ। इसमे सर्व मृषावाद की विरति होती है॥१२॥

12. Bhante! After this, the second great-vow is abstinence from lying

Bhante! I hereby abstain completely from lying. Under the influence of anger, greed, fear or gaiety I will never tell a lie;

neither will I induce others to do so or approve of others doing so. All my life I will observe this great vow through three means and three methods. In other words, throughout my life I will, through mind, speech or body, neither do, induce others to do or approve of others doing such an act of lying.

Bhante! I critically review any such lying done in the past, denounce it, censure it and earnestly desist from indulging in it.

Bhante! I have now taken the second great-vow in which one abstains completely from lying

१३. अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं।

सव्वं भंते ! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि–से गामे वा नगरे वा रण्णे वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा, नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा नेवन्नेहिं अदिन्नं गिण्हावेज्जा अदिन्नं गिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

तच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं।

भन्ते ! इसके पश्चात् तीसरे महाव्रत में अदत्तादान (बिना दिया लेना) की विरति होती है।

भन्ते ! मैं सर्व अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूँ। गाँव में, नगर में या अरण्य में, कहीं भी अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त किसी भी अदत्त वस्तु को स्वयं ग्रहण नहीं करूँगा, अन्य द्वारा अदत्त वस्तु को ग्रहण नहीं करवाऊँगा और अदत्त वस्तु ग्रहण करने वालों का अनुमोदन नहीं करूँगा। मैं समस्त जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से इसका पालन करूँगा। अर्थात् मैं जीवन पर्यन्त अदत्तादान ग्रहण की क्रिया मन, वचन, काया से न करूँगा, न कराऊँगा, न करने वाले का अनुमोदन करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किये अदत्तादान ग्रहण का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ।

भन्ते ! मैं तीसरे महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ। इसमें सर्व अदत्तादान की विरति होती है॥१३॥

13. Bhante! After this, the third great-vow is abstinence from taking what is not given.

Bhante! I hereby abstain completely from taking what is not given. Wherever I am, in a village, city or forest; whether the object is less or more, minute or gross, living or non-living; I will not take what is not given; neither will I induce others to do so or approve of others doing so. All my life I will observe this great vow through three means and three methods. In other words, throughout my life I will, through mind, speech or body, neither do, induce others to do or approve of others doing such an act of taking what is not given

Bhante! I critically review any such act of taking what is not given that I have done in the past, denounce it, censure it and earnestly desist from indulging in it.

Bhante! I have now taken the third great-vow in which one abstains from taking what is not given.

१४. अहावरे चउत्थे भन्ते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं।

सव्वं भंते ! मेहुणं पच्चक्खामि–से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्खजोणियं वा, नेव सयं मेहुणं सेविज्जा नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

चउत्थे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं।

भन्ते ! इसके पश्चात् चौथे महाव्रत में मैथुन की विरति होती है।

भन्ते ! मैं सर्व मैथुन क्रिया का प्रत्याख्यान करता हूँ। दिव्य (देव सम्बन्धी), मानुषिक (मनुष्य सम्बन्धी) और तिर्यंच सम्बन्धी सभी प्रकार के मैथुन का मैं स्वयं सेवन नहीं करूँगा, अन्य से मैथुन का सेवन नहीं कराऊँगा और मैथुन का सेवन करने वाले का अनुमोदन नहीं करूँगा। मैं समस्त जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से इसका पालन करूँगा। अर्थात् मैं जीवन पर्यन्त मैथुन क्रिया मन, वचन, काया से न करूँगा, न कराऊँगा, न करने वाले का अनुमोदन करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किये मैथुन सेवन का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ।

भन्ते ! मैं चौथे महाव्रत मे उपस्थित हुआ हूँ। इसमें सर्व मैथुन की विरति होती है॥१४॥

14. Bhante! After this, the fourth great-vow is abstinence from sexual intercourse.

Bhante! I hereby abstain completely from sexual intercourse I will not indulge in the act of sexual intercourse with any being, divine, human or animal; neither will I induce others to do so or approve of others doing so. All my life I will observe this great vow through three means and three methods. In other words, throughout my life I will, through mind, speech or body, neither do, induce others to do or approve of others doing such an act of sexual intercourse.

Bhante! I critically review any such act of sexual intercourse done in the past, denounce it, censure it and earnestly desist from indulging in it.

Bhante! I have now taken the fourth great-vow in which one completely abstains from sexual intercourse.

१५. अहावरे पंचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं।

सव्वं भंते ! परिग्गहं पच्चक्खामि। से गामे वा नगरे वा रण्णे वा[1] अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा, नेव सयं परिग्गहं परिगेण्हिज्जा नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हावेज्जा परिग्गहं परिगिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणामि, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

पंचमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।

भन्ते ! इसके पश्चात् पॉचवें महाव्रत मे परिग्रह की विरति होती है।

भन्ते ! मैं सर्व परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ। गाँव में, नगर में या अरण्य मे, अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त किसी भी परिग्रह का ग्रहण स्वयं नहीं करूँगा, अन्य द्वारा परिग्रह का ग्रहण नही करवाऊँगा और परिग्रह ग्रहण करने वालों का अनुमोदन नहीं करूँगा। मैं समस्त जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से इसका पालन करूँगा। अर्थात् मै जीवन पर्यन्त परिग्रह ग्रहण मन, वचन, काया से न करूँगा, न कराऊँगा, न करने वाले का अनुमोदन करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किये परिग्रह का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ।

भन्ते ! मैं पॉचवें महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ। इसमें सर्व परिग्रह की विरति होती है॥१५॥

15. Bhante! After this, the fifth great-vow is abstinence from keeping any possession.

१ कुछ प्रतियों में यह पाठ अधिक है।

Bhante! I hereby abstain completely from keeping any possession. Wherever I am, in a village, city or forest; whether the object less or more, minute or gross, living or non-living; I will not keep any possession; neither will I induce others to do so, or approve of others doing so. All my life I will observe this great vow through three means and three methods In other words, throughout my life I will, through mind, speech and body, neither do, induce others to do or approve of others doing such an act of keeping any possession.

Bhante! I critically review any such act of keeping any possession done in the past, denounce it, censure it and earnestly desist from indulging in it.

Bhante! I have now taken the fifth great-vow in which one completely abstains from keeping any possession

१६. अहावरे छट्ठे भंते ! वए राइभोयणाओ वेरमणं।

सव्वं भंते ! राइभोयणं पच्चक्खामि–से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा, नेव सयं राइं भुंजिज्जा नेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

छट्ठे भंते ! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राईभोयणाओ वेरमणं।

भन्ते ! इसके पश्चात् छठे व्रत मे रात्रि-भोजन की विरति होती है।

भन्ते ! मैं सर्व प्रकार के रात्रि-भोजन का प्रत्याख्यान करता हूँ। रात्रि में कोई भी अशन, पान, खाद्य व स्वाद्य वस्तु मैं स्वयं नहीं खाऊँगा, अन्यों को नहीं खिलाऊँगा और खाने वालों का अनुमोदन नहीं करूँगा। यह मैं समस्त जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से पालन करूँगा। अर्थात् मैं जीवन पर्यन्त रात्रि-भोजन मन, वचन, काया से न करूँगा, न कराऊँगा, न करने वाले का अनुमोदन करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किये रात्रि-भोजन का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ।

भन्ते ! मैं छठे व्रत में उपस्थित हुआ हूँ। इसमें सर्व रात्रि-भोजन की विरति होती है ॥१६॥

16. Bhante! After this, the sixth vow is abstinence from eating during the night

Bhante! I hereby abstain completely from eating at night. I will not indulge in the act of eating during the night, whether it be *ashan, paan, khadya* or *svadya*; neither will I induce others to do so or approve of others doing so. All my life I will observe this great vow through three means and three methods. In other words, throughout my life I will, through mind, speech or body, neither do, induce others to do or approve of others doing such act of eating during the night.

Bhante! I critically review any such act of eating during the night done in the past, denounce it, censure it and earnestly desist from indulging in it.

Bhante! I have now taken the sixth vow in which one completely abstains from eating during the night.

विशेषार्थ :

सूत्र १६. रात्रि-भोजन विरमण व्रत–पाँच महाव्रत का कथन करने के बाद छठे रात्रि-भोजन विरमण व्रत को महाव्रतो से भिन्न बताने का कारण यह है कि पाँच महाव्रत मूल गुण हैं। रात्रि-भोजन विरमण उनकी रक्षा मे सहायक होने से उत्तरगुण मानकर उसे छठा व्रत कह दिया है। वैसे रात्रि-भोजन का प्रायश्चित्त भी उतना ही कठोर है जितना मैथुन सेवन का। रात्रि-भोजन करने वाला श्रमण अहिसा महाव्रत का भंग करता है तथा रात मे आहार संग्रह करके अपरिग्रह महाव्रत का भी भंग करता है अतः इसका महाव्रतों के समान ही महत्त्व है। (विस्तार के लिए देखो दसवेआलिय युवाचार्य महाप्रज्ञ, अध्ययन ४ के टिप्पण, पृ. १४३-१४४)

अशन–भूख मिटाने के लिए जिस वस्तु का भोजन किया जाय वह अशन है, जैसे–गेहूँ, चावल, आदि।

पान–जो पीया जाय, जैसे–द्राक्षा का जल आदि।

खाद्य–जो खाया जाय, जैसे–खजूर, मोदक आदि।

स्वाद्य–जिसका स्वाद लिया जाय, जैसे–ताम्बूल, सौंठ, इलायची आदि।

ELABORATION :

(16) The vow of abstaining from eating during the night—After mentioning the five great vows, the reason for mentioning this separately is this—The five great vows are the basic virtues, but as abstaining from eating during the night is helpful in observing the great vows, it has been taken as a secondary virtue and has been called the sixth vow However, the atonement for breaking it is as harsh as that for the fourth great vow. One who eats during the night breaks the first vow, *ahimsa*, as well as the fifth one, because he stores food These are the reasons that it is considered as important as the great vows (*Dashavaikalik* by Acharya Mahaprajna, page 143-144)

Ashan—That which is eaten specifically to satisfy hunger. Staple food like wheat, rice, pulses, etc

Paan—That which is drunk Water, juice, etc

Khadya—That which is eaten generally Fruits and other eatables

Svadya—That which is eaten to enjoy its taste Cardamom, clove, beetle-leaf, etc

For the benefit of the self I accept these five great vows along with the sixth vow of abstaining from eating during night, and commence my itinerant way

१७. इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राईभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।

मैं आत्महित के हेतु ये पाँच महाव्रत और रात्रि-भोजन विरति नामक छठा व्रत अंगीकार कर विहार करता हूँ॥१७॥

17. For the benefit of the self I accept these five great vows along with the sixth vow of abstaining from eating during night, and commence my itinerant way.

पृथ्वीकाय समारभ-विरमण

१८. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा–से पुढविं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्खं वा कायं, ससरक्खं वा वत्थं, हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अंगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा, न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा अन्नं न आलिहाविज्जा न विलिहाविज्जा न घट्टाविज्जा न भिंदाविज्जा अन्नं आलिहंतं वा विलिहंतं वा घट्टंतं वा भिंदंतं वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

ऐसे संयत, विरत, पापकर्म-प्रतिहत तथा पापकर्म-प्रत्याख्यात भिक्षु अथवा भिक्षुणी दिन या रात में, एकान्त या परिषद में, सोते हुए या जागते हुए पृथ्वी, भित्ति (नदी-तट की मिट्टी), शिला, ढेले, सचित्त धूल भरी काया, धूल भरे वस्त्रादि पर, हाथ, पाँव, काठ, खपच्ची, अंगुली, सलाई, सलाई के गुच्छे आदि से कुछ भी लिखे नहीं, छुए नही, छेदे नहीं; अन्यों से अल्पाधिक लिखावे नही, छुआवे नहीं, छिदवावे नहीं; अन्यों द्वारा अल्पाधिक लिखे गये, छुए गये, छेदे गये का अनुमोदन नहीं करे। यह मैं, समस्त जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से पालन करूँगा। अर्थात् मैं जीवन पर्यन्त यह सब मन, वचन, काया से न करूँगा, न कराऊँगा, न करने वाले का अनुमोदन करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किये ऐसे पृथ्वी-समारम्भ का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ॥१८॥

ABSTINENCE FROM HARMING :
THE EARTH-BODIED BEINGS

18. Such a disciplined, detached (austere), self-absolved (of sins of the past), and abstinent (of sinful activities in future) *bhikkhu* or *bhikkhuni* (male or female ascetic) during the day or the night, alone or in a crowd, while awake or asleep should not write on, touch, or pierce earth, beach-sand, rock, a lump of sand, a body covered with sachit dust, clothes covered with dust, etc. with hand, foot, wood, wood-splinter, finger, needle, a bunch of needles, etc ; neither should he or she induce others to do so or approve of others doing so to a lesser or greater degree All my life I will observe this great vow through three means and three methods. In other words, throughout my life I will, through mind, speech or body, neither do so, induce others to do so or approve of others doing so.

Bhante! I critically review any such act of harming the earth bodied beings done in the past, denounce it, censure it, and earnestly desist from indulging in it.

विशेषार्थ

सूत्र १८ सजय-विरय-पडिहय-पच्चाखाय पापकर्मो—यहाँ चार शब्दो का प्रयोग महाव्रत ग्रहण की संपूर्ण प्रक्रिया का भाव स्पष्ट करते है। जैसे महाव्रत ग्रहण की विधि में तीन क्रम है—(१) अतीत मे किये पापों का प्रतिक्रम, (२) भविष्य के पापों का प्रत्याख्यान, (३) वर्तमान मे पाप न करने की प्रतिज्ञा।

अतीत मे किये पापों से जो निन्दा-गर्हा द्वारा निवृत्त हो चुका है—उनको रोक चुका है, वह प्रतिहत पापकर्मा। जो भविष्य मे पाप करने का सर्वथा परित्याग कर चुका है वह प्रत्याख्यात पापकर्म। जो वर्तमान में १७ प्रकार के संयम में स्थिर है वह संयत तथा १२ प्रकार की तप:साधना में निरत है वह रत अथवा पाप से दूर विरत। *(जिनदास चूर्णि, पृ ८७)*

ELABORATION :

(18) ***Sanjaya-viraya-padihaya-pachchakhaya pava-kamme***—This combination of four words conveys the complete process of accepting the great vows This process has three marked stages—to atone for the sins committed in the past (one), to resolve not to commit sin in the present (two), and in future (three). *Sanjaya*—to be firm in the prescribed 17 types of disciplines, *viraya*—to be detached from sin and engage in twelve types of austerities, *padihaya*—to become absolved from the sins of the past through *ninda* and *garha*, *pachchakhaya pavakamme*—to resolve not to indulge in any sinful activity in the future. (*Jinadas Churni*, page 87)

अप्काय समारभ-विरमण

१९. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खा-यपावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा–से उदगं वा ओसं वा हिमं वा महियं वा करगं वा हरतणुगं वा सुद्धोदगं वा उदओल्लं वा कायं उदओल्लं वा वत्थं ससिणिद्धं वा कायं ससिणिद्धं वा वत्थं, न आमुसिज्जा न संफुसिज्जा न आवीलिज्जा न पवीलिज्जा न अक्खोडिज्जा न पक्खोडिज्जा न आयाविज्जा न पयाविज्जा अन्नं न आमुसाविज्जा न संफुसाविज्जा न आवीलाविज्जा न पवीलाविज्जा न अक्खोडाविज्जा न पक्खोडाविज्जा न आयाविज्जा न पयाणिज्जा अन्नं आमुसंतं वा संफुसंतं वा आवीलंतं वा पवीलंतं वा अक्खोडंत वा पक्खोडंतं वा आयावंतं वा पयावंतं वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

ऐसे सयत, विरत, पापकर्म-प्रतिहत तथा पापकर्म-प्रत्याख्यात भिक्षु अथवा भिक्षुणी दिन में या रात मे, एकान्त या परिषद में, सोते हुए या जागते हुए पानी,

ओस, हिम (बर्फ या पाला), धुन्ध, ओले, भूमि को भेदकर निकले जल-कण या वर्षा के जल से भीगे शरीर या वस्त्र का अथवा स्निग्ध हुए (गीला) शरीर या वस्त्र का एक बार या बार-बार स्पर्श न करे, एक बार या बार-बार दबावे नहीं, एक बार या बार-बार झाड़े नहीं, एक बार या बार-बार सुखावे नहीं; अन्य से एक बार या बार-बार स्पर्श न करावे, एक बार या बार-बार दबवावे नहीं, एक बार या बार-बार झड़वावे नहीं, एक बार या बार-बार सुखवावे नहीं; अथवा अन्य द्वारा एक बार या बार-बार स्पर्श किये जाने की, एक बार या बार-बार दबाये जाने की, एक बार या बार-बार झाडे जाने की, एक बार या बार-बार सुखाये जाने की अनुमोदना नहीं करे। यह मैं समस्त जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से पालन करूँगा। अर्थात् मैं जीवन पर्यन्त यह सब मन, वचन, काया से न करूँगा, न कराऊँगा, न करने वाले का अनुमोदन करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किये ऐसे जल-समारम्भ का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ ॥१९॥

ABSTINENCE FROM HARMING :
THE WATER-BODIED BEINGS

19. Such a disciplined, detached (austere), self-absolved (of sins of the past), and abstinent (of sinful activities in future) *bhikkhu* or *bhikkhuni* (male or female ascetic), during the day or the night, alone or in a crowd, and while awake or asleep should not touch, squeeze, flick, or spread-dry, once or repeatedly, the body or clothes drenched or wet with water, dew, snow or frost, mist, hailstone, ground water or rain water; neither should he or she induce others to do so, or approve of others doing so to a lesser or greater degree. All my life I will observe this great vow through three means and three methods. In other words, throughout my life I will, through mind, speech or body, neither do so, induce others to do so or approve of others doing so.

Bhante! I critically review any such act of harming the water bodied beings done in the past, denounce it, censure it, and earnestly desist from indulging in it.

अग्निकाय समारंभ-विरमण

२०. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा–से अगणिं वा इंगालं वा मुम्मुरं वा अच्चिं वा जालं वा अलायं वा सुद्धागणिं वा उक्कं वा, न उंजिज्जा न घट्टिजा न उज्जालिज्जा न निव्वाविज्जा अन्नं न उंजाविज्जा न घट्टाविज्जा न उज्जालाविज्जा न निव्वाविज्जा अन्नं उंजंतं वा घट्टंतं वा उज्जालंतं वा निव्वावंतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

ऐसे संयत, विरत, पापकर्म-प्रतिहत तथा पापकर्म-प्रत्याख्यात भिक्षु अथवा भिक्षुणी दिन में या रात में, एकान्त में या परिषद में, सोते हुए या जागते हुए अग्नि, अंगारे (जलता हुआ कोयला), मुर्मुर (कण्डों की अग्नि), अर्चि (शिखा), ज्वाला, अलात, शुद्ध अग्नि तथा उल्का (आकाशीय अग्नि) को ईंधन डालकर वढावे नहीं, संघटन (स्पर्श) न करे, भेदन न करे, प्रज्वलित न करे तथा बुझावे नहीं; अन्य से बढ़वावे नहीं, संघटन न करवावे, भेदन न करावे, प्रज्वलित न करावे तथा बुझवावे नहीं; अथवा अन्य द्वारा वढ़ाने का, संघटन करने का, भेदन करने का, प्रज्वलित करने का तथा बुझाने का अनुमोदन नहीं करे। यह मैं समस्त जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से पालन करूँगा। अर्थात् मैं जीवन पर्यन्त यह सब मन, वचन, काया मे न करूँगा, न कराऊँगा, न करने वाले का अनुमोदन करूँगा।

भन्ते ! मै अतीत में किये ऐसे अग्नि-समारम्भ का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा ऐसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ॥२०॥

ABSTINENCE FROM HARMING :
THE FIRE-BODIED BEINGS

20. Such a disciplined, detached (austere), self-absolved (of sins of the past), and abstinent (of sinful activities in future) *bhikkhu* or *bhikkhuni* (male or female ascetic), during the day or the night, alone or in a crowd, awake or asleep should not feed by adding fuel, touch, stir, blast, or extinguish a fire, embers of coal or other fuel, a large or small flame, a hearth-fire, a sacred-fire, or a terrestrial fire; neither should he or she induce others to do so or approve of others doing so to a lesser or greater degree. All my life I will observe this great vow through three means and three methods. In other words, throughout my life I will, through mind, speech or body, neither do so, induce others to do so or approve of others doing so

Bhante! I critically review any such act of harming the fire-bodied beings done in the past, denounce it, censure it, and earnestly desist from indulging in it.

वायुकाय समारंभ-विरमण

२१. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा–से सिएण वा विहुयणेण वा तालिअंटेण वा पत्तेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेण वा चेलेण वा चेलकण्णेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा कायं बाहिरं वा वि पुग्गलं, न फुमिज्जा न वीएज्जा अन्नं न फुमाविज्जा न वीयाविज्जा अन्नं फुमंतं वा वीयंतं वा न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

ऐसे संयत, विरत, पापकर्म-प्रतिहत तथा पापकर्म-प्रत्याख्यात भिक्षु अथवा भिक्षुणी दिन में या रात मे, एकान्त या परिषद में, सोते हुए या जागते हुए चामर, पंखे, वीजन, पत्ते, डाल, डाल के टुकडे, मोर-पंख, मोर-पिच्छी, वस्त्र, वस्त्र के पल्ले, हाथ या मुँह से अपने शरीर अथवा वाहरी पुद्गलों को फूँक न मारे और हवा न करे; अन्य से फूँक न दिलवावे, हवा न करवावे; अथवा अन्य द्वारा फूँक मारने या हवा करने का अनुमोदन न करे। मैं समस्त जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से इसका पालन करूँगा। अर्थात् मैं जीवन पर्यन्त यह सब मन, वचन, काया से न करूँगा, न कराऊँगा न करने वाले का अनुमोदन करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किये ऐसे वायु-समारम्भ का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ॥२१॥

ABSTINENCE FROM HARMING :
THE AIR-BODIED BEINGS

21. Such a disciplined, detached (austere), self-absolved (of sins of the past), and abstinent (of sinful activities in future) *bhikkhu* or *bhikkhuni* (male or female ascetic), during the day or the night, alone or in a crowd, awake or asleep should not blow or throw air on particles, or on the body or other things, with the help of a whisk, fan, leaf, branch of a tree, piece of wood, pea-cock feathers, a fan made of pea-cock feathers, a piece of cloth or its end, the hand or mouth; neither should he or she induce others to do so or approve of others doing so to a lesser or greater degree All my life I will observe this great vow through three means and three methods In other words, throughout my life I will, through mind, speech or body, neither do so, induce others to do so, or approve of others doing so.

Bhante! I critically review any such act of harming the air-bodied beings done in the past, denounce it, censure it, and earnestly desist from indulging in it.

वनस्पतिकाय समारंभ-विरमण

२२. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा–से बीएसु वा बीयपइट्ठेसु वा रूढेसु वा रूढपट्ठेएसु वा जाएसु वा जायपइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्नपइट्ठेसु वा सच्चित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा, न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीइज्जा न तुअहिज्जा अन्नं न गच्छाविज्जा न चिट्ठाविज्जा न निसियाविज्जा न तुयट्टाविज्जा अन्नं गच्छंतं वा चिट्ठंतं वा निसीयंतं वा तुअट्टंतं वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

ऐसे संयत, विरत, पापकर्म-प्रतिहत तथा पापकर्म-प्रत्याख्यात भिक्षु अथवा भिक्षुणी दिन में या रात में, एकान्त या परिषद में, सोते हुए या जागते हुए, बीजों पर, बीजों पर रखे अन्य पदार्थों पर, अंकुरित बीजों पर, अंकुरित बीजों पर रखी वस्तुओं पर, पल्लवित वनस्पति पर, पल्लवित वनस्पति पर रखी वस्तुओं पर, हरित वनस्पति पर, हरित वनस्पति पर रखी वस्तुओं पर, छिन्न हुई वनस्पति पर, छिन्न हुई वनस्पति पर रखी वस्तुओ पर, सचित्त अथवा कीडे लगे काठ पर न चले, न खडा रहे, न बैठे और न सोये; अन्य को न चलावे, न खडा करे, न बैठावे, न सुलावे; अन्य द्वारा चलने का, खडा होने का, बैठने का, सोने का अनुमोदन नहीं करे। मैं समस्त जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से इसका पालन करूँगा। अर्थात् मैं जीवन पर्यन्त यह सब मन, वचन, काया से न करूँगा, न कराऊँगा, न करने वाले का अनुमोदन करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किये ऐसे वनस्पति-समारम्भ का प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, उसकी गर्हा करता हूँ और आत्मा द्वारा वैसी प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ॥२२॥

ABSTINENCE FROM HARMING :
THE PLANT-BODIED BEINGS

22. Such a disciplined, detached (austere), self-absolved (of sins of the past), and abstinent (of sinful activities in future) *bhikkhu* or *bhikkhuni* (male or female ascetic), during the day or the night, alone or in a crowd, while awake or asleep should not walk, stand, sit or sleep on seeds or things placed on seeds, sprouts or things placed on sprouts, growing plants or things placed on growing plants, grown plants or things placed on grown plants, severed plants or things placed on severed plants, or wood infested with insects; neither should he or she induce others to do so or approve of others doing so to a lesser or greater degree. All my life I will observe this great vow through three means and three methods. In other words, throughout my life I will, through mind, speech or body, neither do so, induce others to do so or approve of others doing so.

Bhante! I critically review any such act of harming the plant-bodied beings done in the past, denounce it, censure it, and earnestly desist from indulging in it.

त्रसकाय समारभ-विरमण

२३. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिआ वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा–से कीडं वा पयंगं वा कुंथुं वा पिवीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिअ पडिलेहिअ पमज्जि पमज्जिअ एगंतमवणिज्जा नो णं संघायमावज्जिज्जा।

ऐसे संयत, विरत, पापकर्म-प्रतिहत तथा पापकर्म-प्रत्याख्यात भिक्षु अथवा भिक्षुणी दिन में या रात में, एकान्त या परिषद में, सोते हुए या जागते हुए यदि कीट, पतंग, कुंथु, पिपीलिका (चींटी) उनके हाथ, पैर, बाहु, उरु (जाँघ), उदर, सिर, वस्त्र, पात्र, कंबल, पाँवपोंछ या आसन, रजोहरण, गोच्छग (पात्र पोंछने का वस्त्र), उन्दक (स्थंदिल-पात्र, मूत्र-पात्र), दंडा, पीठ (चौकी), फलक (पाट), शय्या, सस्तारक (बिछौना) तथा ऐसे अन्य किसी उपकरण पर चढ़ जाये तो यत्नपूर्वक देख-देखकर, पोंछ-पोंछकर एकान्त स्थान में रख देवे किन्तु उन्हें एकत्र करके पीडा न पहुँचावे ॥२३॥

ABSTINENCE FROM HARMING :
THE MOBILE-BODIED BEINGS

23. Such a disciplined, detached (austere), self-absolved (of sins of the past), and abstinent (of sinful activities in future) *bhikkhu* or *bhikkhuni* (male or female ascetic), during the day or the night, alone or in a crowd, and while awake or asleep, if he or she finds that some insect, moth, worm or ant has crept on his or her hand, feet, arm, thigh, belly, head, apparel, utensil, blanket, mattress, broom, duster, chamber pot, stick, seat, bench, cot, bed or any other such equipment, then he should carefully look f[illegible] collect and place the insects separately at some safe place and avoid causing pain by bunching them together.

अयतना का कटु फल

१ : अजयं चरमाणो उ पाणभूयाइं हिंसई।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक चलने वाला जीवों की हिंसा करता है जिससे पापकर्म का बंध होता है जो उसके लिए कड़वे फल देने वाला होता है॥१॥

THE GRAVE CONSEQUENCES OF CARELESSNESS

1. One who is careless while moving injures living beings.

This results in bondage of sinful *karma* with bitter consequences.

२ : अजयं चिट्ठमाणो उ पाणभूयाइं हिंसई।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक खडा होने वाला जीवों की हिंसा करता है जिससे पापकर्म का वंध होता है जो उसके लिए कटु फलदायक होता है॥२॥

2. One who is careless while standing injures living beings. This results in bondage of sinful *karma* with bitter consequences

३ : अजयं आसमाणो उ पाणभूयाइं हिंसई।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक बैठने वाला जीवो की हिंसा करता है जिससे पापकर्म का बंध होता है जो उसके लिए कटु फलदायक होता है॥३॥

3. One who is careless while sitting injures living beings. This results in bondage of sinful *karma* with bitter consequences

४ : अजयं सयमाणो उ .णभूयाइं हिंसई।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक सोने वाला जीवों की हिंसा करता है जिससे पापकर्म का वंध होता है जो उसके लिए कटु फलदायक होता है॥४॥

4. One who is careless while lying down injures living beings. This results in bondage of sinful *karma* with bitter consequences

५ : अजयं भुंजमाणो उ पाणभूयाइं हिंसई।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक भोजन करने वाला जीवों की हिंसा करता है जिससे पापकर्म का बंध होता है जो उसके लिए कटु फलदायक होता है॥५॥

5. One who is careless while eating injures living beings. This results in bondage of sinful *karma* with bitter consequences.

६ : अजयं भासमाणो उ पाणभूयाइं हिंसई।
बंधइ पावयं कम्मं तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक बोलने वाला जीवों की हिंसा करता है जिससे पापकर्म का बंध होता है जो उसके लिए कटु फलदायक होता है॥६॥

One who is careless while speaking injures living beings. This results in bondage of sinful *karma* with bitter consequences.

यतनापूर्वक आचार

७ : कहं चरे कहं चिट्ठे कहमासे कहं सए।
कहं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ॥

कैसे चले? कैसे खडा हो? कैसे बैठे? कैसे सोये? कैसे खाये? और कैसे बोले? जिससे पापकर्म का बंध न हो॥७॥

CAREFUL CONDUCT

7. How does one move, stand, sit, lie down, eat and speak so as avoid the bondage of sinful *karma*?

८ : जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ॥

यतनापूर्वक (हिंसा से बचते हुए, सावधानीपूर्वक) चले, यतनापूर्वक खडा हो, यतनापूर्वक बैठे, यतनापूर्वक भोजन करे और यतनापूर्वक बोले तो जीव पापकर्म का बन्धन नहीं करता॥८॥

8. If one moves with care, stands with care, sits with care, lies down with care, eats with care and speaks with care, he avoids bondage of sinful *karmas*

विशेषार्थ :

श्लोक १-८ जय चरे–यतनापूर्वक चले–अहिसा आदि पाँच महाव्रतो का निर्दोष पालन करने के लिए जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे यतना (सावधानी) की बहुत आवश्यकता है। यतना मे दानो दृष्टियाँ है–अहिसा, सत्य आदि का पालन हो तथा व्यावहारिक दृष्टि से असभ्यता व अप्रियता भी न झलके। शास्त्र मे इन सब के लिए नियम व विधि बताई है। जैसे–

चलने मे यतना–धीरे-धीरे अपने शरीर प्रमाण भूमि को सामने देखते हुए चले। ऊपर-नीचे-तिरछा न देखे, चलते हुए बाते न करे, हँसता हुआ न चले। कीचड, हिलते पत्थर, ईंट आदि पर पैर न रखे तथा सचित्त पृथ्वी, जल आदि पर न चले। जोर से हवा, ऑधी चल रही हो, कीट-पतगे उडते हुए हो तो न चले, वर्षा आदि मे न चले, आदि चलने सम्बन्धी सभी नियमो का पालन करना–गति यतना है। वैसे ही खडे होने, बैठने, सोने, भोजन करने व बोलने के भी शास्त्र मे विधि विधान है।

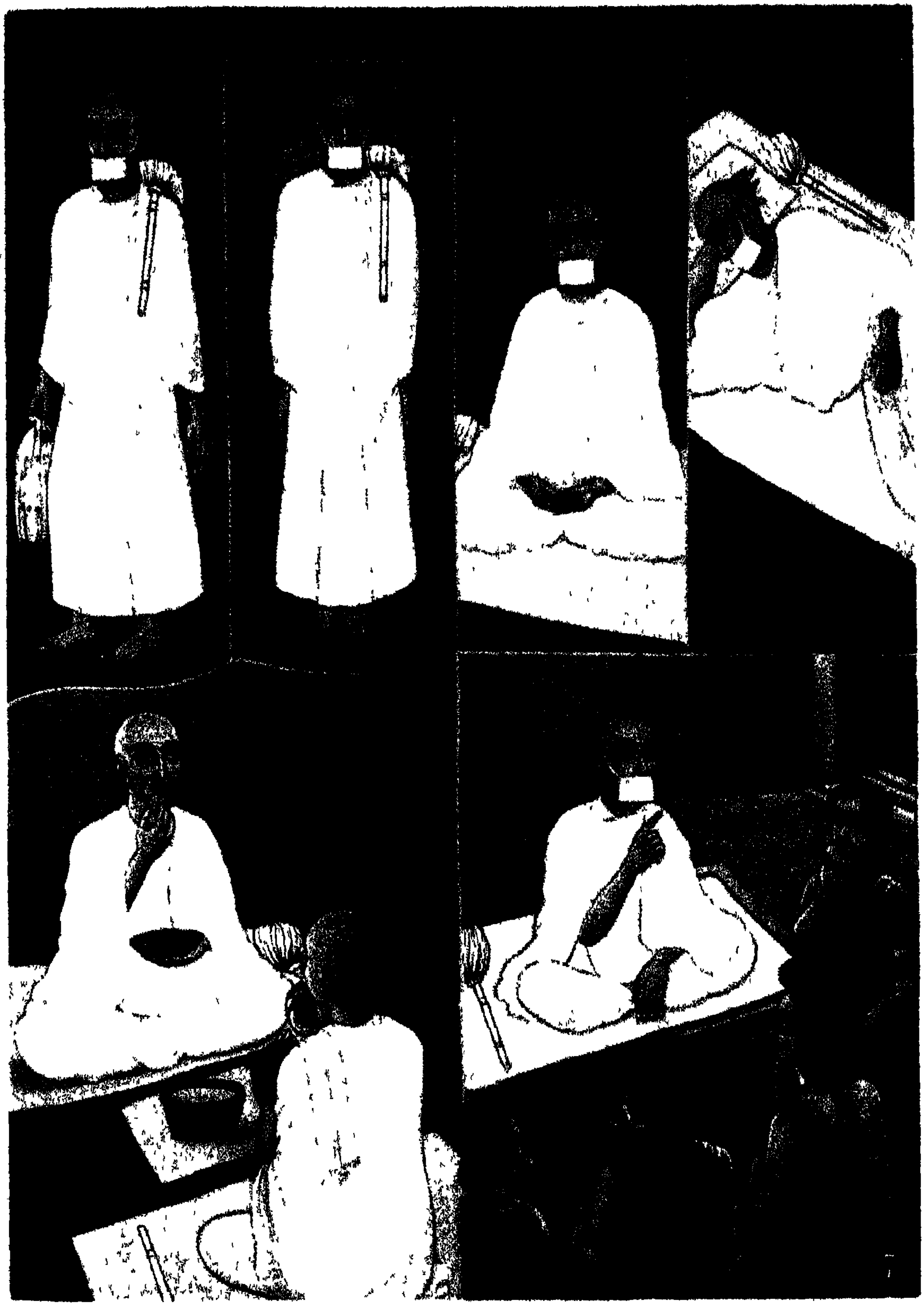
जैसे भोजन के विषय मे कहा है–अशुद्ध अप्रासुक भोजन न लेवे, थोडा खाये, अस्वाद वृत्ति से खाये, सबको बॉटकर खाये, गृहस्थ के बर्तन मे न खाये, गरिष्ट भोजन न लेवे यह सब भोजन की यतना है।

बोलने की यतना–असत्य व मिश्र भाषा न बोले, चुगली न खाये, कर्कश कठोर, सावद्य भाषा न बोले। जिसे सुनकर दूसरा कुपित हो, किसी को अप्रिय लगे तथा जिससे किसी जीव का घात होता हो या जिस भाषा से धर्मसघ की अवहेलना होती हो वह भाषा न बोले–यह भाषा की यतना है। इन सब व्यवहारो मे सावधानी बरतना यतना है। यतनापूर्वक जीवनचर्या चलाने वाला पापकर्म का बधन नही करता चित्र क्रमाक ७ मे इसकी विधि दर्शायी गई है।

(विस्तार के लिए दसवेआलिय देखे–पृ १४९)

ELABORATION :

(1-8) ***Jayam chare***—It is necessary to be careful in every activity in order to observe perfectly the five great vows. This care has to be from both angles, that of the observance of great vows as well as of the following of social norms, so that the action does not appear to be repulsive or ill mannered Scriptures have mentioned ways to ensure this result In brief they are—



यतनासहित चर्या
CAUTIOUS ACTIVITY

जय चरे जय चिट्ठे-साधक यतना (सावधानी) पूर्वक सामने की भूमि को देखकर पाँव रखे। चलने मे यतना रखे। इसी प्रकार खडे रहने मे, बैठने मे, सोने मे, भोजन करने मे और बोलने में भी यतना रखे। जैसे भोजन करते समय शान्त और तटस्थ भाव रखे। बोलते समय जयणा रखे और किसी प्रकार की पापकारी सावद्य भाषा न बोले-इस प्रकार यतनासहित जीवनचर्या करने वाला पापो के बंध से बचता रहता है।

चित्र मे प्रत्येक क्रिया मे यतना रखने का भाव दर्शाया है।

(अध्ययन ४, श्लोक ८)

An ascetic should step forward only after carefully examining the ground ahead In other words, he should be cautious in walking. In the same way, he should be cautious in the activities of standing, sitting, sleeping, eating and speaking While eating he should be calm and composed While speaking he should not utter harsh words or foul language Such a disciplined life-style saves him from the bondage of *Karma*

The illustrations convey the sense of caution in various activities

(Chapter 4, verse 8)

Careful movement—Walk slowly, observing about six feet of ground ahead. While walking, avoid looking above or below or sideways, talking to someone, or laughing about something Do not step on slime, unstable brick or stone, wet ground or ground infested with insects. Do not move out in a storm, rain or when the air is full of moth like creatures. Similar rules apply to standing, sitting and lying down

Careful eating—Do not eat food that is impure or infested with living organisms. Eat a limited quantity. Do not eat to enjoy the taste or flavor. Share your food with others. Do not eat in the same plate with a householder Do not eat rich food.

Careful speech—Do not tell a lie or a half truth Do not speak ill of someone Do not speak in a harsh tone or with harsh language. Do not use language that hurts or causes harm to someone Do not utter words that are detrimental to the religious order (for more details see *Dashavaikalik* by Acharya Mahaprajna, page 149)

One who as cautious in all these activities avoids bondage of sinful *karmas* **(illustration No. 7)**

९ : सव्वभूयप्पभूयस्स सम्मं भूयाइं पासओ।
पिहियासवस्स दंतस्स पावं कम्मं न बंधइ॥

जो समस्त जीवों को अपने समान मानता है और इसी सम्यक् दृष्टिकोण से सबको देखता है, जिसने आस्रव को रोक दिया है और पूर्णतया आत्म-नियंत्रित है वह पापकर्म का बन्धन नहीं करता॥९॥

9. One who considers every living being as equal to his own self and looks at them with this right attitude, one who has stopped the inflow of *karma*, and who is absolutely self-disciplined, avoids bondage of sinful *karmas*.

विशेषार्थ :

श्लोक ९. सव्वभूयप्पभूयस्स–सर्वभूतात्मभूत–शब्द से ध्वनित होता है कि जो सब भूत–प्राणियों के सुख-दु.ख को आत्मभूत–अर्थात् अपने समान समझता है, उसे सम्यग्दृष्टि की

उपलब्धि हो जाती है। वह हिसा आदि पाँच आस्रवो का निरोध करके पिहितास्रव हो जाता है। ऐसा संयमी यतनाशील श्रमण कभी हिसा से लिप्त नही होता। इसके लिए एक उदाहरण दिया गया है।

जलमज्झे जहा नावा सव्वओ निप्परिस्सवा।
गच्छति चिट्ठमाणा वा न जलं परिगिण्हइ॥
एव जीवाउले लोगे साहू सवरियासवो।
गच्छतो चिट्ठमाणो वा पाव नो परिगेण्हइ॥

जैसे छिद्ररहित नाव अथाह जलराशि पर चलती या ठहरी हुई हो, परन्तु उसमें जल प्रवेश नहीं कर पाता तो वह निर्विघ्न अपनी मंजिल पर पहुँच जाती है। उसी प्रकार आस्रव का निरोध करने वाला पिहितास्रव श्रमण जीवाकुल लोक में चलता, टहरता सभी क्रियाएँ करता हुआ पाप का भागी नही बनता। (आधार–जिनदास चूर्णि) इसी भाव को चित्र संख्या ७ मे दिखाया गया है।

सर्वभूतात्मभूत–विशेषण को स्पष्ट करते हुए जिनदास चूर्णि मे कहा है–जिसके मन मे इस प्रकार की संवेदना हो कि जैसे मेरे पाँव मे तीक्ष्ण काँटा चुभने मे मुझे वेदना होती है, वैसे सभी को होती है, वह सब जीवों को अपने समान समझने लगता है, वह सर्वभूतात्मभूत है–

कट्ठेण कंटएण व पादे विद्धस्स वेदणा तस्स।
जा होइ अणेव्वाणी णायव्वा सव्व जीवाण॥ –पृ १६०

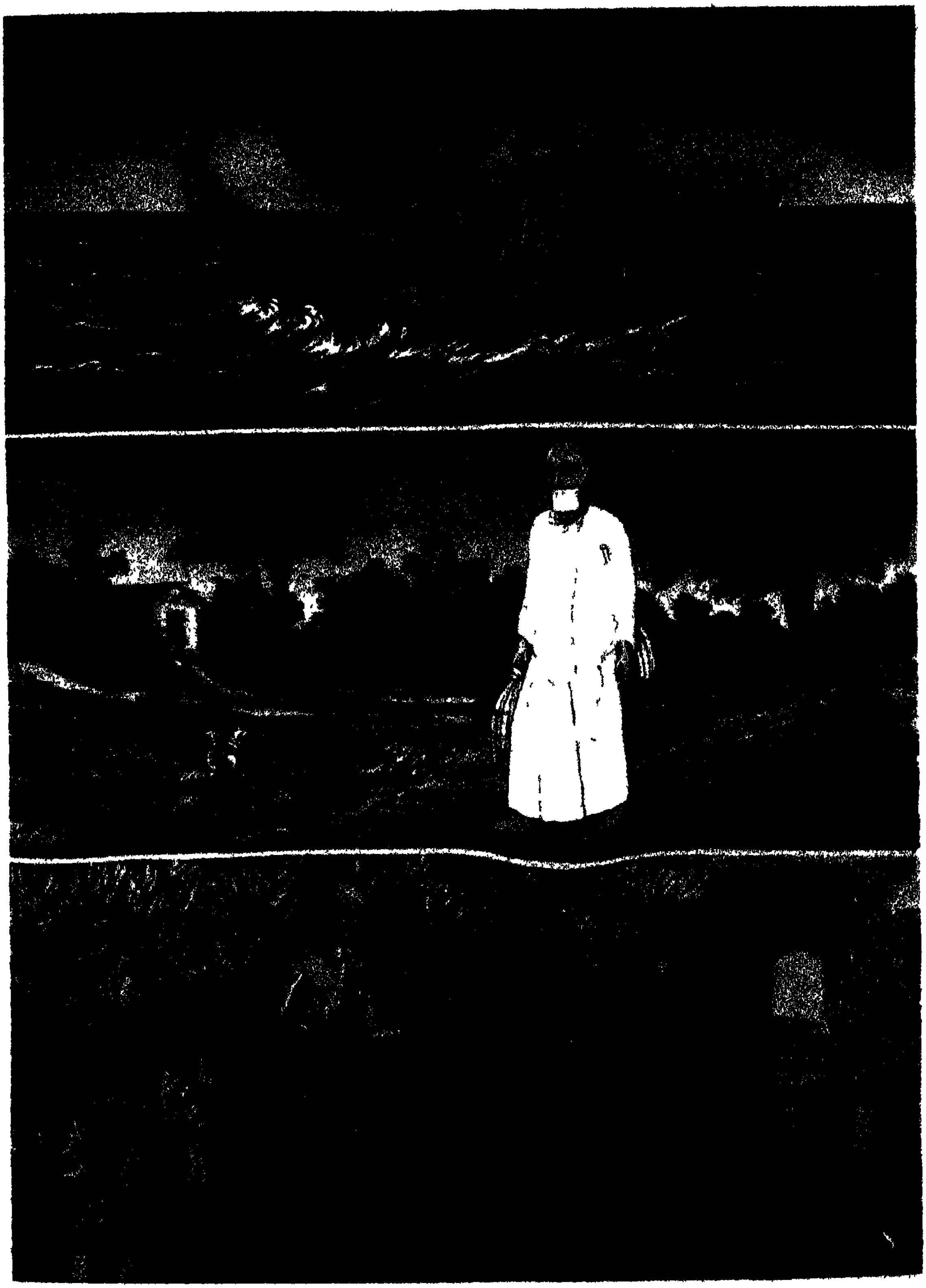
पिहितास्रव को पापकर्म का बध नही होता। इसी भाव का समर्थन करते हुए गीता मे कहा है–

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥ गीता ५/७

जो योगयुक्त विशुद्ध आत्मा है, जिसने इन्द्रियो को जीत लिया है तथा सर्वभूत-प्राणियो के प्रति आत्म-तुल्य भावना रखता है, वह ससार मे कर्म करता हुआ भी पाप से लिप्त नही होता।

ELABORATION :

(9) *Savvabhuyappabhuyassa*—One who feels the pleasures and miseries of others as his own attains the state of right



ज्ञानी : अज्ञानी

SAGE : IGNORANT

१. पिहियासवस्स दतस्स–जगत् के सब जीवो को आत्म-समान समझने वाला मुनि आस्रव द्वारो का निरोध करके उस नाव की तरह हो जाता है जिसमे कहीं भी कोई छिद्र नही हो। छिद्ररहित नाव समुद्र में तैरती हुई निर्विघ्न अपनी मजिल तक पहुँचती है। इसी प्रकार आस्रव निरोध करने वाला श्रमण निर्विघ्न ससार-सागर को पार कर जाता है।

1 An ascetic who identifies all beings with himself blocks the pathways through which karmas enter, and makes his way of life like a boat without any hole anywhere. Just as a boat without a hole moves on the sea and reaches its destination without any trouble, in the same way an ascetic who has blocked the inflow of karmas crosses the ocean of life without any trouble

२. पावकम्मं न बंधई–समार मे विविध जीवो से सकुल भूमि पर मुनि यतनापूर्वक निर्दोष गमनागमन करता हुआ किसी भी जीव की हिंसा नही करता और न ही पापकर्म का वध करता है।

(अध्ययन ४, श्लोक ९)

2 When an ascetic walks cautiously and properly on the ground that is infested with a multitude of beings, he does not harm any being and thereby avoids the bondage of karma

(Chapter 4, verse 9)

३. अन्नाणी कि काही–साधना मार्ग मे पहले ज्ञान और फिर दया (आचरण) का महत्त्व है। जिसे जीव-अजीव का ज्ञान नही है वह उस अधे पुरुष के समान है जिसके चारो ओर नगर मे आग लग रही है, किन्तु आग से बचने के लिए नगर से निकलने का द्वार भी उसे नहीं सूझ रहा है। वह क्या करे? किधर जाये? *(अध्ययन ४, श्लोक १०)*

3. On the spiritual path the importance of knowledge is greater than that of compassion or proper conduct. One who is ignorant about living and non-living organisms is like a blind man on the streets of a town afire He is unable to find the way to the city gate and save himself from the conflagration. What does he do? Where does he go? In the same way an ignorant man is helpless and finds himself unable to rush out of the conflagration that is mundane life and reach the safety of the disciplined ascetic way

(Chapter 4, verse 10)

perception. This insulates him from the five types of inflow of *karmas*. Such a disciplined and cautious ascetic never engages in any type of violence.

In *Jinadas Churni* (page 160) this has been clarified by an example. Just as a boat without a hole, stationary or moving on the sea, is not filled with water and finally reaches its destination without any trouble, in the same way an ascetic who has blocked the inflow of *karmas* does not incur sin, even while moving or staying or engaging in other activities, and finally crosses the ocean of life without any trouble. **(illustration No. 7)**

Explaining further, it is stated that one who has the attitude that, just as he feels acute pain when a thorn pierces his skin, so all others likewise feel pain; such a person possesses the true feeling of equality with all beings. Such a person is called *Sarvabhutatmabhuta*

The Gita also affirms this—When a pure soul involved in *yoga* vanquishes all the senses and acquires the feeling of equality with all beings, such a soul does not indulge in sin even while engaged in various mundane activities (*Gita* 5/7)

ज्ञानपूर्वक क्रिया विधान

१० : पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही किं वा नाहीइ सेय-पावगं॥

पहले ज्ञान है और तब दया—इसी प्रकार सभी संयमी स्थित होते हैं अथवा आचरण करते हैं। अज्ञानी क्या करेगा? वह कैसे जानेगा कि श्रेय क्या है और पाप क्या है?॥१०॥

CODE OF ACTION WITH KNOWLEDGE

10. Knowledge comes first, and then mercy; this is how all ascetics establish themselves in discipline or follow the code. What can an ignorant person do? How could such a person discriminate between merit and sin?

विशेषार्थ :

श्लोक १०. **किं वा नाहिइ सेय-पावग**–अज्ञानी श्रेय (हित) और पाप (अहित) को कैसे जानेगा? इस विषय में अगस्त्यसिंह चूर्णि मे अंधे का दृष्टान्त दिया गया है।–**जहा अंधो महानगर दाहे पलित्तमेव विसमं वा पविसति**–महानगर में आग लगने पर अंधा नहीं जानता कि किस दिशा में भागना चाहिए। वह दिशा ज्ञान शून्य होकर इधर-उधर ठोकरें खाता है और किसी विषम स्थान पर भी चला जाता है। इसी प्रकार अज्ञानी यह नहीं जान पाता कि असयमरूपी दावानल से बचने के लिए क्या करना चाहिए। यही भाव चित्र संख्या ८ मे दर्शाया गया है।

ELABORATION :

(10) *Kim va nahia cheya-pavagam*—How could an ignorant person know about merit and sin? About this Agastya Simha has given the example of a blind man When a city is on fire a blind man does not know in which direction he should run. In the absence of knowledge of his surroundings, he is lost; he stumbles around and proceeds in the direction of suffering. In the same way, an ignorant person is not aware of ways in which to save himself from the conflagration of indiscipline. **(illustration No. 8)**

११ : सोच्चा जाणइ कल्लाणं सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणई सोच्चा जं सेयं तं समायरे॥

सुनकर कल्याण को जानता है और सुनकर ही पाप को जानता है। ये दोनों सुनकर ही समझे जाते हैं। इनमें जो श्रेय है उसी का आचरण करना चाहिए॥११॥

11. Only by hearing does one know about beneficence and the same is true of sin. These two can be understood only by hearing about them Out of these two, what is good should be followed.

१२ : जो जीवे वि न याणेइ अजीवे वि न याणइ।
जीवाजीवे अयाणंतो कहं सो नाहीइ संजमं॥

जो जीवों को भी नहीं जानता, अजीवों को भी नहीं जानता वह जीव और अजीव को न जानने वाला संयम को कैसे समझेगा? कैसे पालेगा?॥१२॥

12. He who neither knows about the living nor the non-living, how can that ignorant about both living and non-living beings understand discipline or follow it?

विशेषार्थ :

श्लोक १२. चूर्णि एवं टीकाकार का कथन है कि आचार्य (गुरु) को चाहिए कि वह पहले शिष्य को जीव-अजीव का ज्ञान कराये। फिर उस पर विश्वास-श्रद्धा स्थिर कराये। ज्ञानपूर्वक श्रद्धा कराने के पश्चात् ही उसका त्याग किया जा सकता है।

ज्ञान एवं श्रद्धाहीन शिष्य को व्रतारोहण नहीं करना चाहिए। ज्ञान श्रद्धायुक्त शिष्य को व्रतारोहण कराने पर यदि वह उसका पालन नहीं करता है तो गुरु उसका दोष भागी नहीं होता। —*जिनदास चूर्णि १४४, टी १४५*

ELABORATION :

(12) The commentators say that the *acharya* should first teach the disciple about living and the non-living. After this he should strengthen the disciple's faith and belief Abstinence is possible only with faith based on knowledge

Vows should never be administered to a disciple devoid of faith. If such a disciple is negligent in following the vow, it is the *guru* who bears the consequence. (*Jinadas Churni*, page 144)

१३ : जो जीवे वि वियाणेइ अजीवे वि वियाणइ।
जीवाजीवे वियाणंतो सो हु नाहीइ संजमं॥

जो जीवों को भी जानता है, अजीवों को भी जानता है और जो जीव और अजीव दोनों को भली प्रकार समझता है वह संयम को अवश्य ही समझ सकेगा॥१३॥

13. He who knows the living and the non-living and understands them properly will certainly become capable of understanding discipline.

१४ : जया जीवमजीवे य दोऽवि एए वियाणइ।
तया गइं बहुविहं सव्वजीवाण जाणइ॥

जब मनुष्य जीव और अजीव-इन दोनों को समझ लेता है तभी वह सब जीवों की विविध प्रकार की गतियों को भी जान लेता है॥१४॥

14. When a man understands the living and the non-living, he comes to know about the numerous types of existence of beings (real and hypothetical species and their habitats).

१५ : जया गइं बहुविहं सव्वजीवाण जाणइ।
तया पुण्णं च पावं च बंधं मोक्खं च जाणइ॥

जब मनुष्य सब जीवों की विविध गतियों को समझ लेता है तब वह पुण्य और पाप तथा बन्ध और मोक्ष को भी जान लेता है॥१५॥

15. When a man understands the numerous types of existence of beings, he gains the knowledge of good and bad *karmas* as well as knowledge of the bondage of *karma* and liberation.

१६ : जया पुण्णं च पावं च बंधं मोक्खं च जाणइ।
तया निव्विंदए भोए जे दिव्वे जे य माणुसे॥

जब मनुष्य पुण्य और पाप तथा बन्ध और मोक्ष को समझ लेता है तब जो देवों और मनुष्यो सम्बन्धी भोग हैं उनसे परिचित होकर विरक्त हो जाता है॥१६॥

16. When man understands good and bad *karmas* as well as the bondage of *karma* and liberation, he also understands the indulgences related to gods and human beings and gets detached from them

१७ : जया निव्विंदए भोए जे दिव्वे जे य माणुसे।
तया चयइ संजोगं सब्भिंतरबाहिरं॥

जब मनुष्य दैविक और मनुष्य सम्बन्धी भोगों से विरक्त हो जाता है तब वह आन्तरिक और बाह्य संयोगों का (सम्बन्धों व ममत्व का) त्याग कर देता है॥१७॥

17. When man gets detached from the indulgences related to gods and human beings, he abandons all individual and social relationships and becomes free of physical, mental and social attachments.

१८ : जया चयइ संजोगं सब्भिंतरबाहिरं।
तया मुंडे भवित्ताणं पव्वइए अणगारियं॥

जब मनुष्य आन्तरिक और बाह्य संयोगों को त्याग देता है तब वह मुण्डित (दीक्षित) होकर अनगार-वृत्ति को स्वीकार करता है॥१८॥

18. When man abandons individual and social relationships and becomes free of physical, mental and social attachments, he gets his head shaved (gets initiated) and accepts the itinerant ascetic way.

विशेषार्थ

श्लोक १८. सब्भिन्तरं–साभ्यन्तरं–आन्तरिक सयोग–कषाय आदि का संयोग। बाहिरं–बाह्य–बाह्य संयोग–कुटुम्बादि का सयोग।

ELABORATION :

(18) ***Sabbhintaram***—inner relationships or indulgence in passions like anger. ***Bahiram***—outer relationships or social attachments as with family and friends.

१९ : जया मुंडे भवित्ताणं पव्वइए अणगारियं।
तया संवरमुक्किट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं॥

जब मनुष्य मुण्डित होकर अनगार-वृत्ति को स्वीकार करता है तब वह उत्कृष्ट संवरयुक्त अनुत्तर (सर्वश्रेष्ठ) धर्म का स्पर्श करता है॥१९॥

19. When man gets his head shaved (gets initiated) and accepts the itinerant ascetic way, he embraces the unique

dharma that includes superlative *samvar* (the process of blocking the inflow of *karmas*).

सज्ञान क्रिया का अन्तिम फल मोक्ष

२० : जया संवरमुक्किट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं।
तया धुणइ कम्मरयं अबोहिकलुसं कडं॥

जब मनुष्य उत्कृष्ट संवरयुक्त अनुत्तर (श्रेष्ठ) धर्म का स्पर्श करता है तब वह अज्ञानपूर्वक संचित कर्मरज को झाड़कर दूर कर देता है॥२०॥

THE FINAL OUTCOME OF ACTION WITH KNOWLEDGE

20. When man embraces the unique *dharma* that include superlative *samvar* (the process of blocking the inflow of *karmas*), he wipes off the particles of *karma* that he had accumulated in ignorance.

२१ : जया धुणइ कम्मरयं अबोहिकलुसं कडं।
तया सव्वत्तगं नाणं दंसणं चाभिगच्छइ॥

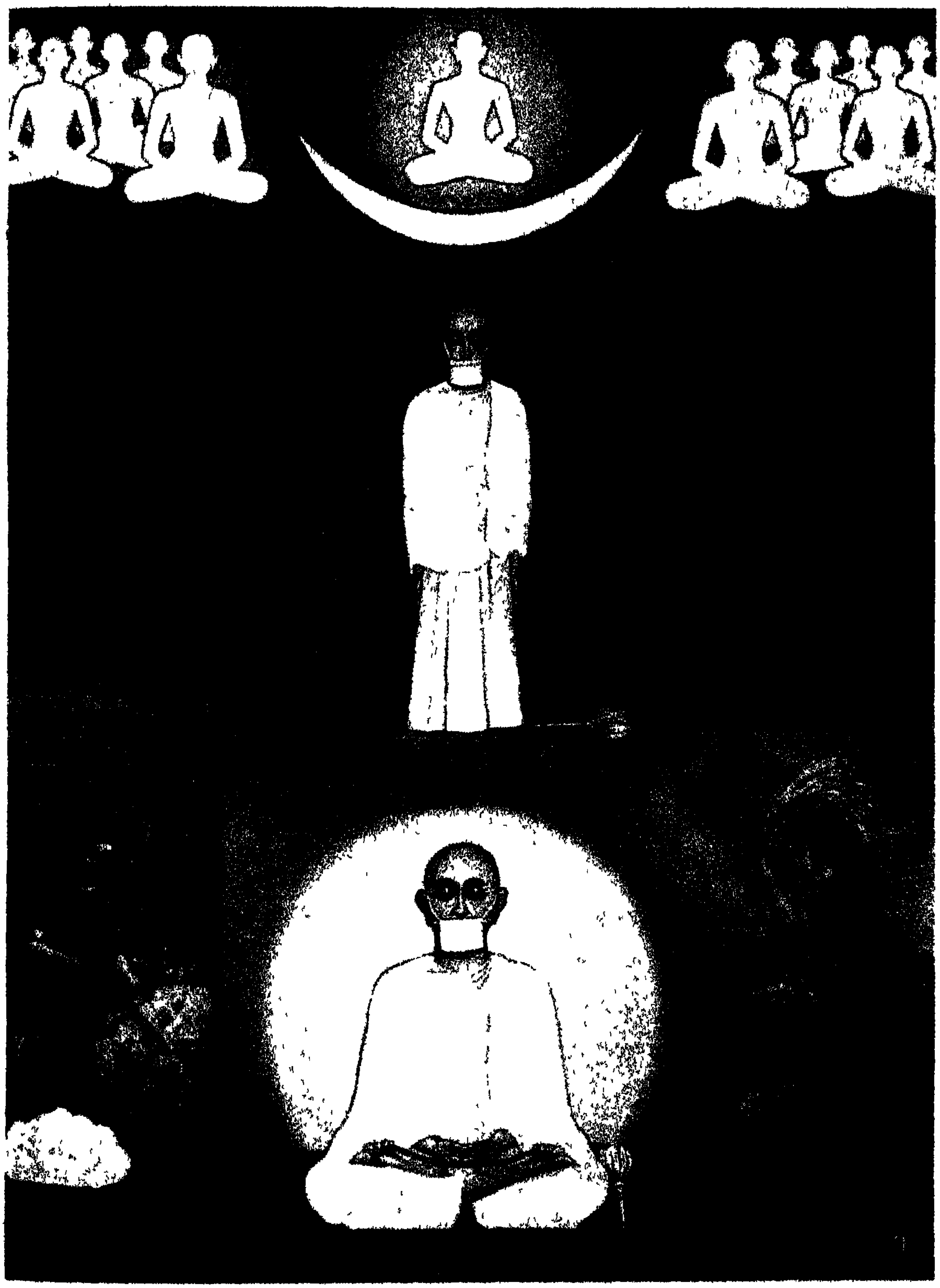
जब मनुष्य अबोधि-अज्ञानरूप पाप द्वारा संचित कर्मरज को झाडकर दूर कर देता है तब वह सर्वव्यापी ज्ञान और दर्शन (केवलज्ञान, केवलदर्शन) को प्राप्त कर लेता है॥२१॥

21. When a man wipes off the particles of *karma* that he had accumulated in ignorance, he acquires all-enveloping knowledge and perception (*Kewal Jnana* and *Kewal Darshan*)

२२ : जया सव्वत्तगं नाणं दंसणं चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली॥

जब मनुष्य सर्वव्यापी ज्ञान और दर्शन (केवलज्ञान और केवलदर्शन) को प्राप्त कर लेता है तब वह जिन एवं केवली लोक-अलोक को जान लेता है॥२२॥

22. When a man acquires all-enveloping knowledge and perception (*Kewal Jnana* and *Kewal Darshan*), he becomes a



चित्र परिचय : ९ | Illustration No. 9

मुक्ति का क्रम

THE PROCESS OF LIBERATION

१ जया सवरमुक्किट्ठ–जैसे रुई धुनने वाला पुरानी रुई को धुनकर निर्मल बना देता है, जैसे धोबी मैले वस्त्रो को धोकर उज्ज्वल कर देता है, उसी प्रकार सयम-साधनारत ज्ञानी श्रमण उत्कृष्ट सवर-धर्म का स्पर्श करता हुआ अज्ञान दशा मे किये हुए पापकर्मों का नाश करके आत्मा को निर्मल बना लेता है। *(अध्ययन ४, श्लोक २०)*

1 The dirt within old cotton is removed by carding and the dirt on cloth is removed by washing, in the same way a sagacious *shraman* washes the dirt of *karma* collected while indulging in sinful activities in the state of ignorance, and purifies his soul This is done by further advancing into spiritual practices after perfecting the discipline of *Samvar* (to stop the inflow of *karmas* by controlling desires) ***(Chapter 4, verse 20)***

२. सेलेसि पडिवज्जइ–इसके बाद वह श्रमण क्रमश चार घाति कर्मो का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त कर लोकालोक को देखने लगता है। फिर अन्तिम समय मे योगो का निरोध करके शैलेषी (पर्वतराज की भाँति स्थिर निष्कम्प) अवस्था को प्राप्त कर चार अघातिया कर्मों का भी क्षय कर डालता है। *(अध्ययन ४, श्लोक २३)*

2 After this, that *shraman* gradually destroys the four *ghati karmas* (the *karmas* that have a vitiating effect upon the qualities of the soul), acquires omniscience, and opens up his vision to all inhabited and uninhabited space When his life-span approaches its end he goes into the *shaileshi* state, becoming completely immobile like a mountain, and is elevated into the state of absolute inactivity He now destroys the four *Aghati karmas* (the *karmas* that generate embodiment and particular conditions thereof) as well

(Chapter 4, verse 23)

३ सिद्धि गच्छइ–शैलेषी अवस्था के पश्चात् श्रमण कर्मरज से रहित होकर लोक के अग्र भाग पर स्थित शाश्वत सिद्धगति को प्राप्त कर लेते हैं। जहाँ अनन्त सिद्ध आत्माएँ ज्योतिस्वरूप में स्थित हैं। *(अध्ययन ४, श्लोक २५)*

3 As a result of absolute inactivity, even the infinitesimal acquisition of karmas is stopped and the four *Aghati-karmas* get destroyed Getting absolutely free of the *karmic* particles, the *shraman* attains the immortal *siddha* state located at the edge of the inhabited universe This is a hypothetical area in deep space inhabited by innumerable liberated souls in there formless but eternally pulsating existence shown here as flames.

(Chapter 4, verse 25)

Jina (conqueror of senses) and a *Kewali* (omniscient) and knows all there is to know in the inhabited and uninhabited universe.

२३ : जया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जइ॥

जब वह जिन एवं केवली लोक-अलोक को जान लेता है तब वह योगों (मन, वचन, काया की प्रवृत्तियों) का निरोध कर शैलेशी अवस्था (पर्वततुल्य निश्चल साम्यावस्था) को प्राप्त कर लेता है॥२३॥

23. When a man, that *Jina* and *Kewali*, knows all there is to know in the inhabited and uninhabited universe, he blocks all union (indulgence of mind, speech and body) and attains the *shaileshi* state (completely immobile like a mountain or the state of absolute inactivity)

२४ : जया जोगे निरुंभित्त सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरओ॥

जब मनुष्य तीनों योग का निरोध कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त कर लेता है तब वह कर्मों का क्षय करके रजरहित हो सिद्धि को प्राप्त करता है॥२४॥

24. When a man blocks all union and attains the *shaileshi* state, he sheds all *karmas* and, becoming absolutely pure, attains *Siddha* status

२५ : जया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिं गच्छइ नीरओ।
तया लोगमत्थयत्थो सिद्धो हवइ सासओ॥

जब मनुष्य कर्मों का क्षय करके रजरहित हो सिद्धि को प्राप्त करता है तब वह लोक के मस्तक (अंतिम भाग) पर स्थित हो शाश्वत सिद्ध बन जाता है॥२५॥

संवर साधना से सिद्धि प्राप्ति तक के इस क्रम को चित्र संख्या ९ द्वारा समझाया गया है॥२५॥

25. When man sheds all *karmas* and, becoming absolutely pure, attains *Siddha* status, he rises into the eternal *siddha* state located at the edge of the inhabited universe (This is a conceptual area in deep space inhabited by innumerable liberated souls in their formless but eternally pulsating existence). **(illustration No. 9)**

२६ : सुहसायगस्स समणस्स सायाउलगस्स निगामसाइस्स।
उच्छोलणापहोइस्स दुल्लहा सुगइ तारिसगस्स॥

सुख का रसिक जो श्रमण साता (सुख) के लिए आकुल, अकाल में सोने वाला (मर्यादा विरुद्ध सोने वाला) और हाथ, पैर आदि को असावधानी से धोने वाला (विभूषाप्रिय) होता है उसके लिए सुगति दुर्लभ है॥२६॥

26. A righteous end evades that *shraman* who is fond of pleasures, craves for joy, sleeps at the wrong times, washes his limbs carelessly (or is fond of making himself attractive).

२७ : तवोगुणपहाणस्स उज्जुमइ खंतिसंजमरयस्स।
परीसहे जिणंतस्स सुलहा सुगइ तारिसगस्स॥

जो श्रमण तपोगुण से प्रधान और ऋजुमति (मोक्ष के अनुकूल बुद्धि वाला) है तथा सयमरत है और परीषहों को जीतने वाला है उसके लिए सुगति सुलभ है॥२७॥

27. A righteous end is easy for the *shraman* who abounds in virtues of austerity, strives for liberation, follows the code of conduct, and does not waver in the face of afflictions.

२८ : पच्छा वि ते पयाया खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं।
जेसिं पिओ तवो संजमो य खंती य बंभचेरं च॥

जिन्हे तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय हैं वे पिछली अवस्था (प्रौढ़ वय) में दीक्षित होने पर भी शीघ्र ही देवगति में चले जाते हैं॥२८॥

28. Those who like austerity, discipline, clemency and celibacy reincarnate as gods even if they get initiated in old age.

२९ : इच्चेयं छज्जीवणियं सम्मद्दिट्ठी सया जए।
दुल्लहं लभित्तु सामण्णं कम्मुणा न विराहिज्जासि॥
त्ति बेमि।

सम्यग्दृष्टि और सतत सावधान श्रमण दुर्लभ श्रमणभाव को प्राप्त कर इस षड्जीवनिकाय की कर्मणा (मन, वचन और काया से) विराधना न करे।

ऐसा मैं कहता हूँ॥२९॥

29. A *shraman* with a righteous attitude who is ever alert should accept the peerless ascetic way and never ever harm the six types of living beings by any of his actions (of mind, speech and body) . . . So I say.

उपसंहार

निर्दोष शुद्ध आचार का आधार है–अहिंसा। अहिंसा का पूर्ण रूप में पालन तभी हो सकता है जब साधक को जीव-अजीव का सम्यक् परिज्ञान होगा। इस आशय से इस अध्ययन में श्रमण के लिए जीव-अजीव का परिज्ञान देते हुए हिंसा तथा अयतना से बचकर विवेकपूर्वक जीवनचर्या का बोध दिया गया है।

Conclusion

Ahimsa is the basis of faultless and pure conduct. *Ahimsa* can be turned into conduct only after complete knowledge of living and non-living things. With this in mind, the present chapter details the living and non-living worlds and inspires one to lead a disciplined life, avoiding careless behavior and harm to others.

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

END OF FOURTH CHAPTER

卐

पंचम अध्ययन : पिण्डैषणा

प्राथमिक

चौथे अध्ययन में श्रमण के पंचमहाव्रत रूप मूलगुणों का वर्णन करने के पश्चात् प्रस्तुत पचम अध्ययन में निर्दोष भिक्षाचरी रूप उत्तरगुणों का वर्णन किया गया है।

इस अध्ययन का नाम है **पिण्डैषणा**। पिण्ड का शब्दार्थ है किसी ठोस वस्तु का समूह/सघात अथवा ठोस खाद्य पदार्थ। जैन आगमों में पिण्ड शब्द मुख्य रूप से भोजन व पानी, अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार के लिए प्रयुक्त हुआ है। अत· पिण्डैषणा का अर्थ होता है पिण्ड (आहार-पानी) की एषणा–शुद्धाऽशुद्धि का निरीक्षण करना, विवेक रखना।

एषणा तीन प्रकार की है–

(१) **गवेषणा**–आहार की उत्पत्ति सम्बन्धी शुद्धाऽशुद्धि का विवेक।

(२) **ग्रहणैषणा**–आहार लेने सम्बन्धी दोषों का विवेक।

(३) **परिभोगैषणा**–आहार (खाने) सम्बन्धी दोषों का विवेक।

भगवान महावीर ने कहा है–श्रमण निर्ग्रन्थ की भिक्षा नवकोटि परिशुद्ध होनी चाहिए। इस नवकोटि परिशुद्ध भिक्षा को प्रथम अध्ययन में माधुकरी वृत्ति कहा गया है।

नवकोटि शुद्धता इस प्रकार है–

भोजन के लिए जीवहिसा न करे, न करवाये, करने वाले का अनुमोदन न करें।

भोजन आदि न मोल लें, न लिवायें लेने वाले का अनुमोदन न करे।

भोजन आदि न पकाये, न पकवायें, पकाने वाले का अनुमोदन न करें। *–स्थानांगसूत्र ९*

इस अध्ययन में भिक्षा मे लगने वाले विभिन्न दोषों का भिन्न-भिन्न प्रसंगों के अनुसार वर्णन करके सदोष भिक्षा का निषेध और निर्दोष भिक्षा का विधान करते हुए निर्दोष भिक्षा देने वाले (मुधादायी) और लेने वाले (मुधाजीवी) दोनो को ही सुगति का अधिकारी बताया है।

इस अध्ययन में भिक्षा के जिन दोषों का वर्णन है, उन्हें हम तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं–

(१) गवेषणा दोष–आहार आदि की उत्पत्ति-सम्बन्धी दोष उद्‌गम दोष हैं। यह गृहस्थ द्वारा लगते हैं। उद्‌गम दोष १६ हैं–

१.	आहाकम्म–	आधाकर्म	२.	उद्देसिय–	औद्देशिक
३.	पूइकम्म–	पूतिकर्म	४	मीसजाय–	मिश्रजात
५.	ठवणा–	स्थापना	६	पाहुडिया–	प्राभृतिका
७	पाओयर–	प्रादुष्करण	८	कीय (कीअ)–	क्रीत
९.	पामिच्च–	प्रामित्य	१०.	परियट्टि–	परिवर्त्य
११	अभिहड–	अभिहृत	१२	उब्भिन्न–	उद्‌भिन्न
१३	मालोहड–	मालापहृत	१४	अच्छिज्ज–	आच्छेद्य
१५	अणिसिट्ट–	अनिसृष्ट	१६.	अज्झोयरय–	अध्यवतरक

(२) ग्रहणैषणा दोष–आहार आदि ग्रहण करने में लगने वाले दोष उत्पादन दोष कहलाते हैं। ये साधु द्वारा लगते है। इनकी संख्या भी १६ है–

१	धाई–	धात्री	२.	दूई–	दूती
३	निमित्त–	निमित्त	४	आजीव–	आजीव
५	वणीमग–	वनीपक	६	तिगिच्छा–	चिकित्सा
७	कोह–	क्रोध	८	माण–	मान
९	माया–	माया	१०	लोह–	लोभ
११.	पुव्विं-पच्छा-संथव–	पूर्व-पश्चात्-संस्तव	१२	विज्जा–	विद्या
१३	मत–	मत्र	१४	चुण्ण–	चूर्ण
१५	जोग–	योग	१६	मूलकम्म–	मूलकर्म

(३) एषणा दोष–आहारादि विधिपूर्वक न लेने-देने में अर्थात् शुद्धाऽशुद्धि की भलीभाँति छान-बीन न करने से लगने वाले दोष एषणा दोष हैं। ये गृहस्थ एवं साधु दोनों द्वारा लग सकते हैं। एषणा दोष १० हैं–

१	संकिय–	शङ्कित	२.	मक्खिय–	म्रक्षित
३	निक्खित्त–	निक्षिप्त	४	पिहिय–	पिहित

५ साहरिय–	संहत	६ दायग–	दायक
७. उम्मिस्स–	उन्मिश्र	८ अपरिणय–	अपरिणत
९. लित्त (लित्त)–	लिप्त	१० छडिउय–	छर्दित

१६ उद्गम, १६ उत्पादन और १० एषणा दोष तीनो मिलकर बयालीस (४२) दोष होते हैं। इसके अलावा भोजन सम्बन्धी पाँच दोष हैं जिन्हे परिभोगैषणा दोष कहा जाता है। ये आहार की सराहना व निन्दा करने के कारण लगते हैं। ये पाँच दोष निम्न प्रकार हैं–

१ अगार,

२ धूम,

३ सयोजना,

४ प्रमाणातिक्रान्त, और

५ कारणातिक्रात

कुल मिलाकर पिण्डैषणा के ये ४७ दोष माने गये है।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने आगम अनुसधान करके लिखा है कि ये ४७ दोष आगम मे एकत्र कही वर्णित नही है। किन्तु प्रकीर्णरूप मे भिन्न-भिन्न आगमो में उपलब्ध है। (देखे दसवेआलिय. पृ १७९)

उत्तराध्ययन २४/११-१२ मे सकेत रूप मे उक्त दोषो का नाम सूचन हुआ है।

आचार्य श्री भद्रबाहु ने यह अध्ययन कर्म प्रवाद नामक आठवे पूर्व से उद्धृत बताया है।

FIFTH CHAPTER : FOOD SELECTION

INTRODUCTION

After describing in the fourth chapter the fundamental virtues of a *shraman*, namely the five great-vows, this fifth chapter discusses the codes of collecting alms as secondary virtues.

The title of this chapter is *Pindaishana*.

The general meaning of the word *pind* is 'a lump' or 'solid food'. In the Jain canonical literature this word has been mainly used for solid or liquid food, or the four types of food, *ashan*, *paan*, *khadya* and *svadya* (details in chapter 4, para 16) *Eshana* means to select and accept after inspecting for purity and impurity.

Eshana is of three types—

1 ***Gaveshana***—checking the origin and purity of food, or the discipline about purity of food

2 ***Grahanaishana***—checking the procedure of accepting food, or the discipline of obtaining alms

3 ***Paribhogaishana***—checking the procedure of consuming food, or the discipline of eating food

Bhagavan Mahavir has said that the solicitation of alms by a *shraman* should have nine fold purity This has been called the bumble-bee attitude in the first chapter The nine fold purity is—

For food do not harm beings, or inspire others to do so, or approve of others doing so

Do not buy food, or inspire others to do so, or approve of others doing so.

Do not cook food, or inspire others to do so, or approve of others doing so (*Sthanang Sutra* 9)

In this chapter various faults in various situations connected with begging alms have been described. Faulty methods have been proscribed and rules for faultless collecting have been formulated. The faultless donor and acceptor have both been commended by stating that they both are worthy of a righteous end.

The faults in begging alms described in this chapter can be divided into three broad categories—

(1) Faults in the origin and purity of food The householder is responsible for these and they are 16 in number—

1	Ahakamm	*aadhakarma*	2.	Uddesiya	*auddeshik*
3	Pooikamm	*pootikarma*	4	Meesjaya	*mishrajaat*
5.	Thavana	*sthapana*	6	Pahudia	*prabhritika*
7	Paoyar	*pradushkaran*	8.	Keeya	*kreet*
9	Pamiccha	*pramitya*	10.	Pariyatti	*parivartya*
11	Abhihad	*abhihrat*	12.	Ubbhinna	*udbhinn*
13.	Malohad	*malapahrat*	14.	Acchijja	*acchedya*
15	Anisitta	*anisrisht*	16.	Ajjhoyaraya	*adhyavatarak*

(2) Faults in the procedure of accepting food The *shraman* is responsible for these and they are 16 in number—

1	Dhaee	*dhatree*	2.	Dooee	*dootee*
3	Nimitta	*nimitta*	4.	Aajiva	*aajiva*
5	Vanimag	*vanipak*	6.	Tigiccha	*chikitsa*
7	Koha	*krodh*	8.	Maan	*maan*
9	Maya	*maya*	10.	Loha	*lobh*
11.	Puvvim-paccha-santhav		*purva-pashchat-samstava*		
12	Vijja	*vidya*	13	Mant	*mantra*
14.	Chunna	*choorna*	15.	Joga	*yoga*
16	Moolakamma		*moolakarma*		

(3) **Faults in selecting and accepting food after inspecting for purity and impurity. Householders and *shramans* both can be responsible for these. They are 10 in number—**

1.	Sankiya	*shankit*	2.	Makkhiya	*mrakshit*
3.	Nikkhitta	*nikshipt*	4.	Pihiya	*pihit*
5.	Sahariya	*samhrat*	6.	Dayag	*dayak*
7.	Ummissa	*unmishra*	8.	Aparinaya	*aparinat*
9.	Litta	*lipt*	10.	Chadiuya	*chardit*

In total these make 42 faults. Besides these, there are five faults related to praising or criticizing food—

1 *Angar,*
2. *Dhoom,*
3. *Samyojana,*
4 *Pramanatikrant,*
5 *Karanatikrant.*

The grand total of all these faults is 47. Acharya Mahaprajna, after a thorough study of canonical literature, writes that all these 47 faults cannot be found at one place As elaborations they can be found in different Agams. (*Dashavaikalik* by Acharya Mahaprajna, page 179). These faults find a brief mention in *Uttaradhyayan Sutra*, 24/11-12.

According to Acharya Bhadrabahu this chapter has been reproduced from *Karma Pravad*, the eighth *Purva*.

पंचमं अज्झयणं : पिंडेसणा : पढमो उद्देसो
पंचम अध्ययन : पिण्डैषणा : प्रथम उद्देशक

FIFTH CHAPTER : PINDAISHANA : FOOD SELECTION
PADHAMO UDDESO : FIRST SECTION

भिक्षा का समय व विधि

१ : संपत्ते भिक्खकालम्मि असंभंतो अमुच्छिओ।
इमेण कमजोगेणं भत्तपाणं गवेसए॥

भिक्षा का समय हो जाने पर साधु असंभ्रान्त-चित्त की व्याकुलता को छोडकर तथा अमूर्च्छित भाव के साथ इस प्रकार (आगे कहे जाने वाले तरीके से) अन्न-पानी की गवेषणा करे॥१॥

THE TIME AND METHOD OF SEEKING ALMS

1. When it is time to seek alms, the ascetic should, by means of a detached attitude, free himself from the eagerness of a wavering mind, and then should look for food and water as follows

विशेषार्थ :

श्लोक १ भिक्खकालम्मि-भिक्षाकाले-धर्माचरण मे प्रत्येक कार्य का स्थान, परिस्थिति तथा समय के अनुसार विधि का निर्देश होता है। जैन श्रमण की आचार-संहिता में दिनचर्या का प्राथमिक विभाजन है-"सूर्योदय के पश्चात् विधिपूर्वक प्रतिलेखनादि कर लेने के बाद साधु दिन के प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय करे। पश्चात् ध्यान करे। तृतीय प्रहर में उपयोगपूर्वक भिक्षा के लिए जाये।"

अत: 'भिक्षा का समय' का अर्थ दिन का तीसरा पहर मानना चाहिए। यही वह समय है जब सामान्यतया गृहस्थ की आहार-ग्रहण की चर्या समाप्ति पर होती है।

आचार्यों का कथन है कि सामान्यतः भिक्षा का समय देशकाल की परिस्थिति के अनुसार होता है। जिस प्रदेश में जो समय लोगों के भोजन का होता है, मुनि उस समय भिक्षाचर्या करता है। उससे पहले या बाद में भिक्षा के लिए जाने में तो वह 'अकालचर्या' हो सकती है और अकालचर्या का भी निषेध है। अतः 'भिक्षाकाल' प्रदेश की परिस्थिति सापेक्ष है। *(आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज दशवै., पृ. १४३)*

असंभंतो–असम्भ्रान्त–भिक्षा के लिए जाते हुए किसी भी प्रकार की आतुरता का न होना। 'देर हो गई, अब भोजन मिले न मिले,' 'अन्य भिक्षुओं के ले जाने पर कुछ बचे या न बचे।' ऐसे अनेक भाव, विकल्प मन में उठ सकते हैं और इससे जो आकुलता होती है वह असावधानी को जन्म देती है। अतः शान्त चित्त से प्रस्थान करें।

अमुच्छिओ–अमूर्च्छित–मोह, लालसा या आसक्ति का अभाव। भिक्षा के लिए जाते समय मन में किसी विशिष्ट अथवा सुस्वादु भोजन ग्रहण करने की अभिलाषा का होना मूर्च्छा है। साथ ही भिक्षा ग्रहण करते समय अन्य किसी आकर्षण के प्रति आसक्त होना निषिद्ध है। अमूर्च्छा भाव को समझाने के लिए एक दृष्टान्त दिया गया है–

एक सजी-धजी नवेली सुन्दर दुल्हन गाय के बछड़े को घास, चारा, पानी देती है। बछड़ा उसके हाथ से यह सब खाता है पर खाते समय उस दुल्हन के मोहक रूप, सुन्दर वस्त्र, चमचमाते गहने, लुभावनी गंध और स्नेहिल स्पर्श आदि किसी पर भी वह ध्यान नहीं देता। बस एकाग्रचित्त हो अपना चारा चबाता रहता है। ठीक इसी प्रकार साधु का चित्त दाता के रूप, वैभव, ऐश्वर्य व भोज्य-सामग्री के प्रति आकर्षित या मूर्च्छित न हो, केवल आहार की गवेषणा के प्रति सावधान रहे यही अमूर्च्छा भाव है।

(जिनदास चूर्णि, पृ. १६७/चित्र १०/१ देखें)

Note : The term generally used in this and following chapters for eatables is *ahar-pani* or *bhojan-pani*, or simply *ahar* or *bhojan*. In fact it means the four types of food—*ashan*, *paan*, *khadya* and *svadya* (details in chapter 4, para 16). As this term is oft repeated, to avoid clumsy reading, we have just used 'food' for this in the English rendering. Therefore, wherever the word 'food' occurs in this and the following chapters it includes all the four types of food.

ELABORATION :

Bhikkhakalammi—In the code of conduct are included directions for procedures to be followed in every situation, at every place, at every time. In the code book for the Jain *shraman* the

primary schedule of time is—"after getting up in the morning and completing the daily essential chores, the first quarter of the day should be devoted to self-study The next one should be devoted to meditation. During the third quarter one should go out to seek alms."

Therefore, the term 'time to seek alms' should be taken as the third quarter of the day This coincides with the end of the normal time of lunch of householders.

The learned *acharyas* say that generally the time to seek alms depends on the conditions prevailing during a particular period at a particular place. Ascetics go for alms at about the conventional time for meals in a particular area. Going before or after becomes an untimely activity, which also is prohibited. Thus the time of begging alms is related to the prevailing situation in a given area. (*Dashavaikalik Sutra* by Acharya Shri Atmaram ji M , page 143)

Asambhanto—Absence of any eagerness while going to seek alms 'I am late, I might not get food or others might have collected all that was available' Such apprehensions might give rise to eagerness and anxiety, and in turn to carelessness Therefore, one should go after composing oneself

Amucchio—Absence of fondness, desire and craving for a thing. To have a desire for some particular or tasty food is fondness Getting involved in some other attraction during the seeking of alms is also proscribed An example is mentioned to clarify this feeling—

A well dressed and adorned, beautiful bride is giving fodder and water to a calf It munches all this, ignoring the enchanting beauty, attractive dress, glittering ornaments, intoxicating fragrance and caressing touch. In the same way when an ascetic is conscious of his search for the proper food without being attracted towards the beauty, grandeur, wealth and the richness of the food, the state of his mind is called *ammorcha-bhav* (*Jinadas Churni*, page 167) **(illustration No. 10/a)**



गोचरी की विधि

THE PROCEDURE OF BEGGING ALMS

१ असंभतो अमुच्छिओ–भिक्षा लेने का समय होने पर श्रमण मूर्च्छारहित भाव से गृहस्थ के घर से भिक्षा ग्रहण करे। अमूर्च्छा भाव को समझाने के लिए दृष्टान्त दिया है। जैसे–तरुणी बछडे को भोजन देती है तो वह वत्स आहार लेते समय स्त्री के रंग-रूप आदि की तरफ आकर्षित/मूर्च्छित नहीं होता, केवल आहार लेने से ही उसका सम्बन्ध होता है, इसी प्रकार मुनि आहार देने वाली सुन्दरियो की तरफ से विरक्त रहकर भिक्षा ग्रहण करता है।

(अध्ययन ५, श्लोक १)

1. At proper time a *shraman* should visit householders and collect alms with a serene attitude and without any distractions. The serene attitude is explained by giving an example When a young woman feeds a calf it is least bothered about the complexion or beauty of the woman; it is only concerned about the food it gets Similarly, an ascetic accepts alms in a state of complete indifference towards the person who gives

(Chapter 5, verse 1)

२. गोयरग्ग गओ मुणी–गोचरी के लिए गया हुआ मुनि ऊँचे-नीचे मध्यम परिवारो मे सामुदानिक भाव से थोडा-थोडा आहार ग्रहण करे। गाय के घास चरने के दृष्टान्त द्वारा साधु की गोचरी मे सामुदानिक और पर-पीड़ारहित वृत्ति समझायी गई है। (विशेषार्थ मे देखे)

(अध्ययन ५, श्लोक २)

2 A *shraman* out to collect alms should accept a little from every house he visits irrespective of the status of the householder. The *shraman's* desire not to cause inconvenience to others and his lack of any partiality towards anyone is explained by giving the example of the activity of grazing of cows (see elaboration)

(Chapter 5, verse 2)

卐

२ : से गामे वा नगरे वा गोयरग्गगओ मुणी।
चरे मंदमणुव्विग्गो अव्वक्खित्तेण चेयसा॥

गोचराग्र में गया हुआ वह असंभ्रान्त मुनि ग्राम में, नगर में (या अन्य खेटकादि में) उद्वेगरहित और अव्याक्षिप्त चित्त से मन्द-मन्द धीरे-धीरे चले॥२॥

2. That composed ascetic going for *gocharagra* (seeking alms) in a village, town (or other inhabited area) should walk slowly with tranquil mind.

विशेषार्थ :

श्लोक २. **गोयरग्ग-गोचराग्र**-गो + चर का अर्थ है गाय की तरह चरना। गाय घास, तिनके आदि की प्राप्ति के लिए घूमती है। जहाँ जो जितना मिला उतना खाती चलती है; न स्वाद का ध्यान रखती है, न स्थान की श्रेष्ठता का तथा घास को ऊपर से थोडा-थोडा चरती है, उसे जड से नहीं उखाडती, तभी वह गो-चरित घास पुन. हरी-भरी होती रहती है। उसी प्रकार साधु भी उत्तम, मध्यम और निम्न कुलो का विचार न करता हुआ तथा सरस व नीरस आहार का भेद न करता हुआ समभाव से दाता की शक्ति व भक्ति का ध्यान रखकर थोडा-थोडा आहार प्राप्त करे। यह क्रिया गोचर या गोचरी कहलाती है। गाय सावद्य आदि दोषो का भेद नही कर पाती, किन्तु साधु इन दोषों से रहित आहार लेते हैं-यह स्पष्ट करने के लिए-'अग्र' शब्द जोडा गया है जो शुद्ध एषणा का सूचक है। (चित्र संख्या १०/३-४)

अणुव्विग्गो-अनुद्विग्न-शान्त/निश्चिन्त। जो भिक्षा न मिलने पर तथा तिरस्कार, अपमान, प्रताडना आदि परीषहों मे शान्त रहे, समता रखे।

अव्वक्खित्तेण-अव्याक्षिप्त-व्याकुलतारहित, विषयों में अनासक्त मन से।

ELABORATION :

Goyaragga—This means grazing like a cow. A cow moves about in search of grass or hay. Whatever it gets and wherever it gets it, it consumes what it finds and continues to move It does not care for the taste of the thing or attributes of a place. It grazes only the top of the grass and does not uproot it as sheep do. That is the reason that the meadow regains its vegetation In the same way, an ascetic should not care about the high, medium or low caste or status of the donor, or the rich and poor quality of the food. With

equanimity, he should collect a little food from numerous places depending on the capacity and devotion of the donor. This activity of an ascetic is known as *gochar* or *gochari* A cow cannot discriminate between the purity and impurity of food as the ascetic does. The adverb *'agra'* is added to indicate the ascetic act of inspecting the food before accepting it. **(illustration No. 10/3-4)**

Anuvviggo—calm; free of anxiety He who remains calm and does not feel like abusing chiding, or insulting the donor.

Avvakkhittena—undisturbed; free of eagerness or craving

३ : पुरओ जुगमायाए पेहमाणो महिं चरे।
वज्जंतो बीयहरियाइं पाणे अ दग-मट्टियं॥

साधु चलते समय शरीर प्रमाण अर्थात् अपने हाथ से साढे तीन हाथ की दूरी तक आगे देखता हुआ और बीज, वनस्पति, प्राणी, जल तथा सचित्त मिट्टी आदि को टालता हुआ चले॥३॥

3. While walking an ascetic should look ahead, observing the ground to a distance equal to his height, *i e*, about six feet, and avoid seeds, plants, creatures, water and sachit sand, etc.

विशेषार्थ

श्लोक ३ जुगमायाए–युगप्रमाण–शरीरप्रमाण–अपने शरीर की ऊँचाई जितनी दूरी, लगभग साढे तीन हाथ या छह फुट की दूरी। चलते समय दृष्टि को इससे दूर या अधिक पास डाला जाये तो छोटे जीव या सूक्ष्म पदार्थ देख पाने मे कठिनाई होती है। 'युग' का अर्थ है–गाड़ी का जुआ। गाडी का आगे का भाग संकडा तथा पीछे का भाग चौडा होता है। गति के समय भी इसी प्रकार सामने देखते चलने के लिए 'युगप्रमाण' शब्द का प्रयोग हुआ है। (अगस्त्यसिह चूर्णि)

दग-मट्टिय–दक-मृत्तिकाम्–दक का अर्थ है पानी और मृत्तिकाम् का अर्थ है मिट्टी। इसके अतिरिक्त यह शब्द सयुक्त रूप से भी प्रयुक्त होता है–गीली मिट्टी या सचित्त मिट्टी। आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज तथा अन्य टीकाकारों के अनुसार यहाँ य (च) शब्द मे अग्निकाय का अर्थ भी सम्मिलित है।

ELABORATION :

(3) ***Jugamayae***—of the dimension of the human body; a distance equal to the average height of human body or about six feet; *yuga* also means yoke of a bullock-cart, so this term also means the length of the yoke; the structure of a cart is triangular with apex in front, so with reference to perspective this term means covering an area of the shape of a cart If while walking the eye is covering lesser or greater distances, it becomes difficult to be aware of small things or creatures lying on the way. (*Agastya Simha Churni*)

Dag-mattiyam—It means water and sand, and also moist sand According to Acharya Shri Atmaram ji M and other commentators the use of the letter *ya* or *cha* etc indicates the inclusion of fire-bodied beings also

४ : ओवायं विसमं खाणुं विज्जलं परिवज्जए।
संकमेण न गच्छेज्जा विज्जमाणे परक्कमे॥

साधु खड्डे आदि स्थान, विषम (ऊबड-खाबड़) स्थान या ठूँठ आदि तथा कीचड आदि को टालकर चले तथा अन्य मार्ग के विद्यमान होने पर जल नदी आदि को संक्रमण (पार) करके न जावे॥४॥

4. An ascetic should avoid pot-holes, ditches and other such uneven places, as well as tree stumps, slime, etc. As long as alternatives are available, he should avoid crossing bodies of water such as rivers.

विशेषार्थ ·

श्लोक ४. ओवायं–अनपातं–जो नीचा हो या जिसमें गिर पड़ने की संभावना हो–खड्डा, खाई, गर्त्त आदि।

खाणु–स्थाणु–सतह से ऊपर निकले हुए या उठे हुए या पडे हुए काठ अथवा सूखे वनस्पति भाग को स्थाणु कहते है–ठूँठ, डंठल, लकडी या डाल के टुकडे आदि।

संकमेण–संक्रमेण–संक्रमण करके या किसी काठ, पत्थर आदि की सहायता से पार करके या ऊपर से होकर जाना। जल, खड्डे, नदी, नाले आदि को पार करने के लिए किसी

प्रकार के पुल आदि का उपयोग करना। इस सम्बन्ध में आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज का मत है–"यदि अन्य मार्ग विद्यमान न होवे तो साधु यत्न द्वारा उपरोक्त सूचित मार्गों से भी जा सकता है। यद्यपि उत्सर्ग मार्ग से तो उक्त मार्गों का उल्लंघन न करना चाहिए, किन्तु अपवाद मार्ग के आश्रित होकर सावधानीपूर्वक उक्त मार्गों से भी जा सकते हैं।" उक्त गाथाओं मे भिक्षु को आत्म-विराधना से बचते हुए, संयम-विराधना से भी बचने का निर्देश है।

ELABORATION :

(4) ***Ovayam***—that which is lower and there are chances of falling into; ditch, ravine, gorge, etc.

Khanu—a protrusion, bulge or projection from the surface, specifically of wood; dry stump or branch of a tree or another piece of wood lying on or protruding out of the ground

Samkamena—to cross with the help of a plank or piece of rock, to cross a water body or ditch using some sort of bridge. According to Acharya Shri Atmaram ji M.—"If there is no alternative available, an ascetic can cross. At the higher level of practices where discipline should be observed strictly, such crossing is not allowed. But as an exception, at lower level of ascetic practices, discipline can be slightly relaxed The above verses instruct the ascetic to avoid drifting away from the mental as well as physical discipline

५ : पवडंते व से तत्थ पक्खलंते व संजए।
हिंसेज्ज पाणभूयाइं तसे अदुव थावरे॥

वह साधु उन गड्ढे आदि स्थानो मे गिरने से तथा स्खलित होने से प्राणियों की तथा भूतों की, त्रस जीवों की अथवा स्थावर जीवों की विराधना हिंसा करता है॥५॥

5. An ascetic causes harm to or injures mobile or immobile beings and organisms if he stumbles at or falls into such ditches and the like.

६ : तम्हा तेण न गच्छेज्जा संजए सुसमाहिए।
सइ अन्नेण मग्गेण जयमेव परक्कमे॥

इसलिए संयम में भलीभाँति समाधि रखने वाला साधु अन्य मार्गों के होने पर उक्त मार्गों से न जावे। यदि अन्य मार्ग न हो तो यतनापूर्वक उस मार्ग में गमन करे॥६॥

6. Therefore an ascetic, properly following the code of conduct, should avoid such paths as long as alternatives are available. If no alternative is available he should tread that path carefully.

७ : इंगालं छारियं रासिं तुसरासिं च गोमयं।
ससरक्खेहिं पाएहिं संजओ तं नइक्कमे॥

साधु अंगारे या कोयलों के ढेर, राख, के ढेर, तुष के ढेर और गोबर के ढेर को सचित्त रज से भरे हुए पगों से अतिक्रम कर न जाये॥७॥

7. An ascetic with *sachit* dust sticking to his feet should not walk or cross over heaps of embers, coal, ash, fodder or dung.

८ : न चरेज्ज वासे वासंते महियाए वा पडंतिए।
महावाए व वायंते तिरिच्छ संपाइमेसु वा॥

जब वर्षा बरस रही हो, धुन्ध पड़ रही हो, महावायु (आँधी) चलती हो तथा पतंगे आदि उड रहे हों ऐसे समय साधु गोचरी आदि के लिए न जावे॥८॥

8. An ascetic should not go out to collect alms while it is raining, mist is falling, a storm is blowing, or the atmosphere is filled with moth-like insects

विशेषार्थ ·

श्लोक ८. तिरिच्छ संपाइमेसु-तिर्यक् संपातिम-जो जीव वक्र अथवा तिरछे उडते हैं उन्हें तिर्यक् संपातिम कहते है, जैसे-मच्छर, भँवरे, कीट, पतंगे आदि।

ELABORATION :

(8) ***Tiricch sampaimesu***—the insects that fly obliquely, like the mosquito, bumble-bee, locust, moth, etc.

९ : न चरेज्ज वेससामंते बंभचेरवसाणुए।
बंभयारिस्स दंतस्स हुज्जा तत्थ विसुत्तिआ॥

ब्रह्मचारी वेश्याओ के समीप के स्थानों (वेश्यावाडा) में गोचरी के लिए न जावे। क्योंकि इन्द्रियों का दमन करने वाले ब्रह्मचारी को भी वहाँ पर संयमरूपी धान्य के सुखाने वाला मनोविकार उत्पन्न हो सकता है॥९॥

9. A celibate person (an ascetic) should not go into areas of ill repute (a red-light district). This is because even a celibate person who has achieved victory over his senses can be overwhelmed by lust that clogs the stream of virtues and causes the (plant of) discipline to wither

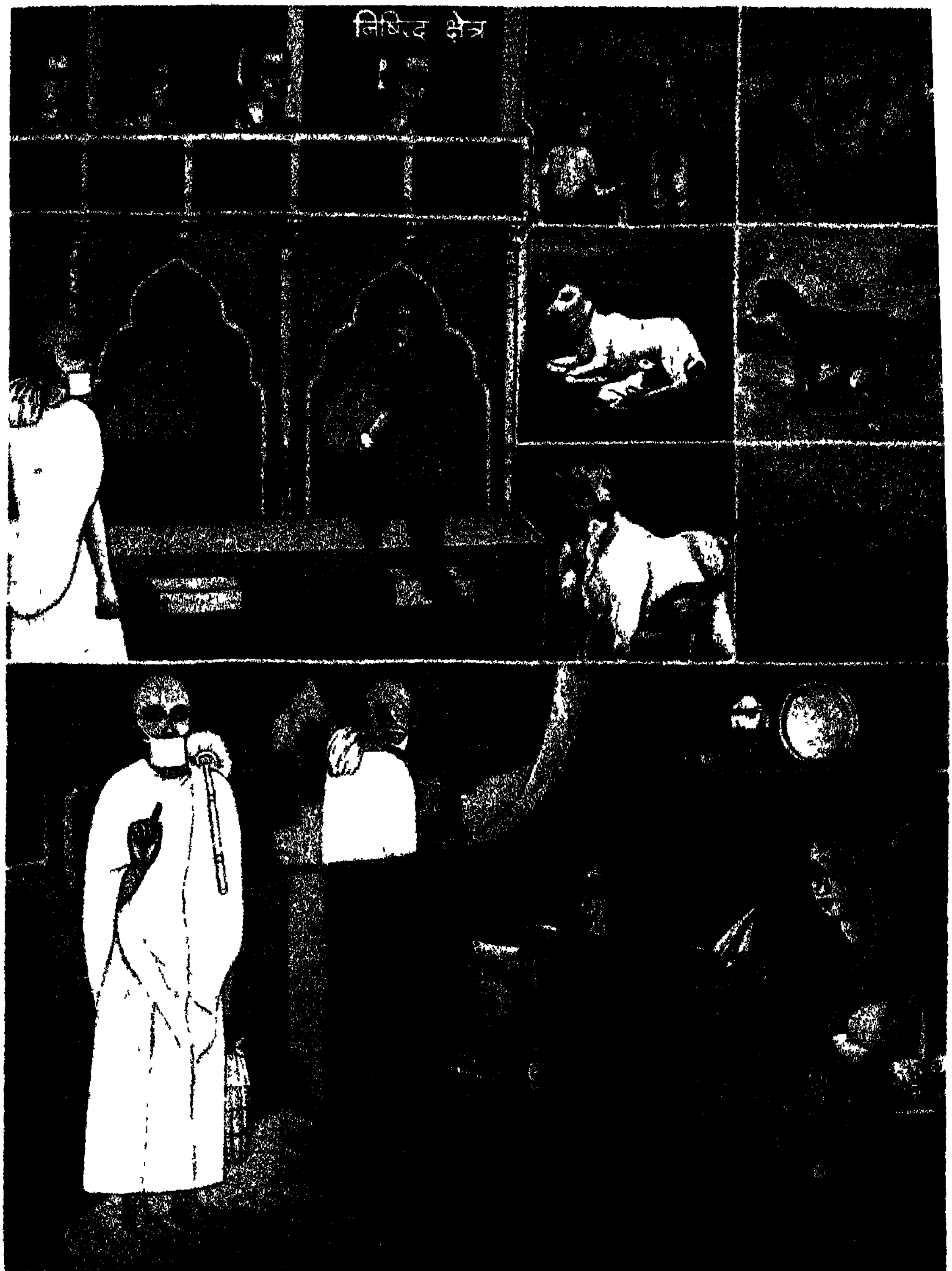
१० : अणायणे चरंतस्स संसग्गीए अभिक्खणं।
हुज्ज वयाणं पीला सामण्णंमि अ संसओ॥

वेश्यादि के मुहल्लों में जाने वाले साधु को बार-बार के संसर्ग से व्रतों को पीडा (हानि) उत्पन्न हो सकती है अर्थात् व्रतों का ह्रास हो सकता है और श्रामण्यभाव में संशय (लोगों को संदेह या मन में) विचिकित्सा भी उत्पन्न हो जायेगा॥१०॥

10. If he goes into such areas the consequent frequent interaction may damage his vows of discipline. It may also give rise to feelings of doubt and revulsion for him in the minds of people.

११ : तम्हा एयं विआणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं।
वज्जए वेससामंतं मुणी एगंतमस्सिए॥

इसलिए एकान्त में रहने वाला अर्थात् मोक्षमार्ग पर चलने वाला मुनि, दुर्गति के बढ़ाने वाले इन दोषों को जानकर वेश्याओं के समीप के मार्ग को भी छोड़ दे॥११॥


निषिद्ध क्षेत्र

चित्र परिचय : ११

Illustration No. 11

भिक्षाचरी के निषिद्ध क्षेत्र

PROHIBITED PLACES

१ न चरेज्ज वेससामंते–साधु भिक्षाचरी के लिए निकले तो ऐसे स्थानो की तरफ नही जाए जहाँ वेश्याओं का मुहल्ला हो एव जहाँ कामी पुरुषो का आवागमन भी रहता हो।

(अध्ययन ५, श्लोक ९)

1. While wandering to collect alms an ascetic should not visit the areas inhabited by prostitutes and frequented by lascivious people **(Chapter 5, verse 9)**

२. साण सूइय गावि–भिक्षा के लिए जाते हुए मार्ग में जहाँ कुत्तो की लडाई होती हो, जहाँ प्रसूता गाय या कुतिया अपने बच्चो को स्तनपान कराती हो, मदोन्मत्त बैल आदि आ रहे हो, बालक क्रीडा कर रहे हो या आपस में युद्ध (लडाई) हो रहा हो तो ऐसे स्थान की तरफ नही जाए।

(अध्ययन ५, श्लोक १२)

2 While moving about to collect alms an ascetic should avoid the places and paths where dogs are fighting, a cow or a bitch is feeding a calf or a pup, a mad bull is approaching, children are playing, or a fight or a quarrel is going on **(Chapter 5, verse 12)**

३. साहट्टु निक्खिवित्ताण–साधु भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करे तब यदि भोजन चूल्हे पर चढ़ा हो, अग्नि आदि का स्पर्श होता हो या सचित्त वस्तु, हरी वनस्पति आदि उस पर रखी हो अथवा दाता कच्चे जल से हाथ धोकर देती हो, इसी प्रकार सचित्त-अचित्त का मिश्रण करके देती हो तो मुनि उसे कहे–इस प्रकार की भिक्षा लेना मुझे नही कल्पता और वह भिक्षा बिना लिये वापस लौट जाय। *(अध्ययन ५, श्लोक ३०-३६)*

3 While entering a house, if a *shraman* observes that the food to be offered to him is being cooked on a stove and flames are touching it, green vegetables are placed on its cover, or the donor prepares to give after washing his or her hands with fresh water, or after mixing *sachit* food (food having living organisms, or raw and half cooked food) and *achit* food (food without living organisms or properly cooked food), the *shraman* should frankly say that it is not allowed for him to accept such food. He should retreat without accepting alms.

(Chapter 5, verses 30-36)

11. Therefore the solitude-loving ascetic, striving for liberation, should become aware of these faults and avoid even the paths leading to houses of ill repute.

विशेषार्थ :

श्लोक ९, १०, ११. वेससामंते-वेश्यासामन्ते-उस स्थान के निकट जहाँ वेश्याएँ अथवा अन्य नीच स्त्रियों के निवास हों। जहाँ कामी पुरुषो का आना-जाना रहता है। (देखें चित्र सख्या स११/१)

विसोत्तिया-विस्रोतसिका-किसी प्रवाहमान वस्तु (वायु, जल, विकार, भावना आदि) का स्रोत रुक जाने पर उसका दूसरी दिशा मे मुड जाना और फलतः उसके स्वाभाविक प्रभाव क्षेत्र में उसके अभावजनित प्रभाव उत्पन्न होना विस्रोतसिका है। जैसे कूडे-करकट के द्वारा जल आने का मार्ग रुक जाने से उसका बहाव मुड जाता है और फलस्वरूप खेती सूख जाती है। उमी प्रकार कूडा-करकटरूपी वेश्याओं के हाव-भाव की ओर आकर्षित होने से ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूपी प्रवाह मुड जाता है और फलस्वरूप आत्म-संयमरूपी खेती सूख जाती है।

समग्गीए अभिक्खण-संसर्गेणाऽभीक्ष्णम्-बार-बार जाने से सम्बन्ध बन जाता है। ससर्ग का आरम्भ देखने से होता है और अन्त प्रणय में। इसका क्रम है-देखने से प्रीति, प्रीति से रति, रति से विश्वास और विश्वास से प्रणय।

वयाण पीला-व्रतानां पीडा-व्रतो का विनाश। वेश्या संसर्ग से ब्रह्मचर्य नष्ट होता है और परिणामत सभी व्रत नष्ट हो जाते हैं। चूर्णिकार इसे समझाते हुए कहते हैं-वह चित्त की चंचलता के कारण एषणा या ईर्यापथ की शुद्धि नहीं कर पाता। अत अहिसा व्रत नष्ट हो जाता है। वह स्त्रियो की ओर देखता है और पूछने पर अपनी दुर्वलता छुपाने के लिए झूठ वोलता है। अत सत्य व्रत नष्ट हो जाता है। तीर्थंकरो ने श्रमण के लिए स्त्री-संग का निषेध किया है, इस कारण वैसा करने वाला जिन-आज्ञा तोडता है। अतः अचौर्य व्रत नष्ट हो जाता है। अन्त में स्त्रियो के प्रति ममत्व की भावना होने से अपरिग्रह व्रत भी नष्ट हो जाता है।

एगंत-एकान्त-जीव का उपयोग एकान्त अर्थात् निर्जन स्थान में जितना स्थिर होता है उतना भीड या कोलाहल वाले स्थान पर नहीं होता है। बिना उपयोग के स्थिर हुए जीव का कोई भी काम भलीभाँति सफल नहीं होता। सामायिक, स्वाध्याय, जप, तप, मनन, ध्यान आदि कामों में तो उपयोग की स्थिरता की नितान्त आवश्यकता है। मुनिवर्ग के लिए ये कार्य प्रधानतम हैं। इसलिए उन्हें एकान्त अर्थात् निर्जन स्थान की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिए एकान्त स्थान भी मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रधान कारण है। अत 'एगंतमस्सिए' का

अर्थ 'मोक्षमार्ग के आश्रय में रहने वाला मुनि' किया गया है। इस दृष्टि से एकान्त का आश्रय लेने वाला अर्थात् मोक्षमार्ग का अनुगमन करने वाला होता है। (आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज)

ELABORATION :

(9, 10, 11) ***Vesasamante***—near the place where prostitutes or other women of ill repute live and which are frequented by lascivious people **(illustration No. 11/1)**

Visottiya—change of direction of the natural flow of a thing (like air, water, attitude, feeling, etc.) due to some blockage and the effects on the area of influence consequent to the absence of the flow. The flow of a stream changes when it is blocked by trash or rocks and the area irrigated by it suffers a drought In the same way, when the stream of knowledge, perception and conduct is blocked by the trash of lascivious gestures of prostitutes, it changes its natural direction and the crop of self-discipline shrivels up

Sansaggae abhikkhanam—frequent visiting breeds familiarity and ends up in close relationships. Interaction commences with looking and ends up in love The chronology is look-attraction-desire-faith-love

Vayanam peela—damage to vows Interaction with a prostitute destroys celibacy, and as a consequence all other vows also suffer damage The commentators explain that the resulting mental instability does not allow an ascetic to be steadfast in the norms of movement, and this results in damage to the *ahimsa* vow He steals a glance at women, and then resorts to lying to hide his weakness, destroying the second vow. The *Tirthankars* have proscribed the proximity of women, by being near them the ascetic sneaks out of the bounds of the codes, and in the process breaks the third vow. Caught in a web of carnal desire for women, he accumulates things and breaks the fifth vow

Egantam—Concentration in spiritual efforts can best be attained in seclusion Crowds and noise are detrimental to

concentration. Without concentration man cannot achieve success in any field. It is all the more necessary in activities like *samayik*, self-study, chanting, austerity, contemplation and meditation. And for ascetics these are the activities of prime importance. That is the reason that they need solitude That is why solitude is seen as conducive to effort in the seeking of liberation. Hence an ascetic who desires solitude is one who strives to attain liberation. (Acharya Shri Atmaram ji M)

१२ : साणं सूइयं गाविं दित्तं गोणं हयं गयं।
संडिब्भं कलहं जुद्धं दूरओ परिवज्जए॥

साधु के मार्ग में यदि कुत्ता, ब्याही हुई गाय, मदोन्मत्त बैल, घोडा, हाथी, बालकों के क्रीड़ा-स्थान, कलह या युद्ध का स्थान मिल जाये तो उन्हें दूर से टालकर गमन करे॥१२॥

12. When going to seek alms an ascetic should change h is path, while still keeping a safe distance, if he comes across a dog, a cow feeding a calf, a mad bull, a place where children are playing or a place where people are fighting or quarreling.

विशेषार्थ

श्लोक १२ कलह–कलह–वाक्-युद्ध, बातो का झगडा।

जुद्ध–युद्ध–हाथा-पाई, मारपीट तथा शस्त्रों से की जाने वाली लडाई।

दूरओ परिवज्जए–दूरत· परिवर्जयेत्–दूर से टालकर जाये। दूर से ही टालने के निर्देश का कारण यह है कि ऐसे स्थानो पर आत्म-विराधना और सयम-विराधना आदि अनेक दोष उत्पन्न होने की संभावना रहती है। कुत्ते आदि पशु काट सकते हैं, ब्याही हुई गाय, उन्मत्त हाथी आदि पशु मार सकते हैं, क्रीड़ा करते बालक शरीर को या उपकरणों को हानि पहुँचा सकते हैं, कलह के स्थान पर भी ऐसी ही संभावनाएँ होती हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे किसी भी स्थान पर अनायास साधु के बीच मे बोलने आदि की सँभावनाएँ भी बन जाती हैं। (देखें चित्र सख्या ११/२)

ELABORATION :

(12) *Kalaham*—a verbal quarrel.

Juddham—a physical fight

Durao parivajjaye—avoid from a distance. The reason for avoiding from a distance is that at such places there is danger of damage to the self as well as to the discipline. Dogs and other such animals can bite, a cow feeding a calf and a mad bull can hit or gore, playing children and fighting people may harm the body and the equipment. Besides this, at all such places there are chances of the ascetic interfering in the ongoing quarrel on impulse. **(illustration No. 11/2)**

१३ : अणुन्नए नावणए अप्पहिट्ठे अणाउले।
इंदियाणि जहाभागं दमइत्ता मुणी चरे॥

साधु चलते हुए न तो अति उन्नत हो, न अति अवनत हो, न हर्षित हो, न व्याकुल हो किन्तु इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों में वश मे करता हुआ गमन करे॥१३॥

13. While walking, an ascetic should neither move high nor low. He should neither be excited nor agitated Instead, he should keep all his senses in control while walking

विशेषार्थ :

श्लोक १३ अणुन्नए-अनुन्नतो-उन्नत होकर न चले। "उन्नतपने से गमन दो तरह का है-एक द्रव्य से, दूसरा भाव से। ईर्यासमिति को छोडकर ऊँचा आकाशादि को निहारते हुए गमन करना द्रव्य रूप उन्नतपने से गमन करना है और अपनी श्रेष्ठ जाति आदि का अभिमान-भाव मन मे रखते हुए गमन करना भाव रूप उन्नतपने से गमन करना है।" (आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज दशवै , पृ. १५८)

नावणए-नावनत-अवनत होकर न चले। आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज के अनुसार जैसे उन्नतपन का प्रकार है वैसे ही अवनतपन भी दो प्रकार का है-एक द्रव्य से, दूसरा भाव से। इतना नीचे देखकर चलना कि तीन हाथ प्रमाण आगे भी न देख सके द्रव्यरूप अवनतपना है और आहार-पानी की प्राप्ति न होने पर मन में दीन वृत्ति अथवा हीन भावना के कारण चलना भावरूप अवनतपना है।

ELABORATION :

(13) ***Anunnaye***—not to move high. This term has two meanings. In a physical context it means to move keeping a high line of vision or looking at the sky. In a mental context it means to move with a feeling of pride for being a high-born or other such status. (*Dashavaikalik Sutra* by Acharya Shri Atmaram ji M., page 158)

Navanaye—not to move low According to Acharya Shri Atmaram ji M. to move low also has two meanings like those of moving high. In physical context it means to move keeping a low line of vision so that over six feet distant things are not visible. In a mental context it means to move with a depressed state of mind or inferiority complex caused by failure to get alms

१४ : दवदवस्स न गच्छेज्जा भासमाणो अ गोयरे।
हसंतो नाभिगच्छेज्जा कुलं उच्चावयं सया॥

साधु गोचरी के लिए ऊँचे-नीचे कुल में जाते समय कभी भी जल्दी-जल्दी या दौडते हुए गमन न करे, बातचीत करता हुआ एवं हँसता हुआ भी गमन न करे॥१४॥

14. While going to families of high and low status to seek alms, an ascetic should not walk fast or run. He should also neither talk or laugh while walking.

विशेषार्थ

श्लोक १४. कुलं उच्चावयं–कुलमुच्चावच–उच्च-नीच कुल में अर्थात् महल, हवेली आदि विशाल भवन, द्रव्य से उच्च-कुल कहलाते हैं। जाति, विद्या आदि से समृद्ध व्यक्तियो के घर भाव से उच्च कुल कहलाते हैं। तृण कुटी, झोंपडी, धन आदि द्रव्य से नीच कुल कहलाते हैं और जाति, विद्या आदि से हीन लोगों के घर भाव से नीच कुल कहलाते हैं। (हारिभद्रीय टीका, पृ. १६६)

ELABORATION :

(14) ***Kulam uchchavayam***—families of high and low status. Economic or physical status is measured in terms of movable or

immovable wealth, like mansions, houses, cottages, gold, silver, etc. Social status is measured in terms of high or low caste and high or low education, etc (commentary by *Acharya Haribhadra Suri*, page 166)

१५ : आलोअं थिग्गलं दारं संधिं दगभवणाणि अ।
चरंतो न विणिज्झाए संकट्ठाणं विवज्जए॥

गोचरी के लिए जाता हुआ साधु झरोखा, खिड़की आदि को, चुनी हुई दीवार, द्वारादि को, सेंध या गली को और जल-गृहों को न देखे तथा शंका के सब स्थानों को टाल कर चले॥१५॥

15. An ascetic, while going to seek alms, should not look at balconies, windows or other such openings in houses; nor should he look at partition walls, doors, alleys, or gaps, and water-huts or bathrooms He should avoid all such shady or suspicious places.

विशेषार्थ :

श्लोक १५ आलोअं-आलोकं-मकान के वे भाग जहाँ से बाहर देखा जाता है-गवाक्ष, झरोखा, खिडकी आदि।

थिग्गल-घर का वह भाग या द्वार जिसे दीवार चुनकर ढक दिया गया हो।

सधि-दो घरो के बीच की गली, सेध।

दग भवणाणि-उदक भवनानि-जल-गृह, जल-मंचिका, स्नान-मण्डप, सार्वजनिक उपभोग के जल भरने तथा स्नान करने के स्थान। उक्त सभी स्थानो को 'शंका-स्थान' बताया है। अर्थात् ऐसे स्थानो पर झाँकने से लोग उसे चोर, उचक्का, पारदारिक आदि सन्देह भरी दृष्टि से देख सकते हैं तथा ऐसा देखना स्वय व ब्रह्मचर्य के लिए भी खतरे के ठिकाने बन जाते हैं। (हारिभद्रीय टीका)

ELABORATION :

(15) ***Aaloyam***—Those parts of a house from where one looks outside—balcony, window, etc

Thiggalam—that part of a house where a partition wall has been raised or where a gate has been closed by raising a wall.

Sandhim—an alley or gap between two houses.

Dug bhavanani—room or place where water for general use is stored; water-hut, bathroom, etc. All these places are considered sensitive areas because looking at these places is considered to be a violation of privacy and people might take the onlooker to be a thief or someone of doubtful character Peeping into such private places also provokes desires and is thus detrimental to discipline. (commentary by Acharya Haribhadra Suri)

१६ : रण्णो गिहवईणं च रहस्सारक्खियाण य।
संकिलेसकरं ठाणं दूरओ परिवज्जए॥

राजा, नगरसेठ, कोतवाल आदि के गुप्त वार्त्तालापादि करने के स्थानों को और अन्य संक्लेश-असमाधि उत्पन्न करने वाला दुःखदायी स्थानों को साधु दूर से ही टाल दे॥१६॥

16. An ascetic should also keep his distance and avoid places where a king, merchants, police chiefs, and other such people have secret conversations. He should also avoid such places that might cause agitation and misery in his mind

१७ : पडिकुट्ठं कुलं न पविसे मामगं परिवज्जए।
अचिअत्तं कुलं न पविसे चिअत्तं पविसे कुलं॥

निन्दित कुल में, निषेध करने वाले कुल में, जिस कुल में जाने से अप्रीति उत्पन्न हो जाय उस कुल में साधु न जाये। जिस कुल में जाने से प्रसन्नता प्रगट हो उसी कुल में जाये॥१७॥

17. An ascetic should not visit families having a bad reputation or families where his visit is prohibited or unwelcome. He should visit only those families that heartily welcome ascetics.

विशेषार्थ :

श्लोक १७. पडिकुट्ठ कुल–प्रतिक्रुष्टं कुलं–निषिद्ध या निन्दित कुल। ये दो प्रकार के हैं–अल्पकालिक (जैसे–सूतक, मृतक आदि घर) और यावत्कालिक (सदा के लिए) समाज-मर्यादा के अनुसार गर्हित कुल (जैसे–हिंसक व माँसाहारी कुल)। आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज के अनुसार यह निषेध इसलिए है कि व्यवहार की स्थिति जो दुराचार को हटाने के लिए और सदाचार को प्रेरित करने के लिए की जाती है वह यथावत् बनी रहे। वैसे साधु को व्यक्तिगत रूप में किसी कुल से कोई द्वेष नहीं होता। किन्तु वह लोकाचार के विरुद्ध भी नहीं चल सकता।

मामगं–मामक–वह घर जिसके गृहपति द्वारा किसी भी कारणवश 'मेरे घर पर न आना' यह कहकर भिक्षु के आने पर रोक लगा दी गई हो।

अचिअत्तं कुल–अप्रीतं कुलं–जिस घर में साधु का आना घर वालों को अप्रिय लगे।

चिअत्त कुल–जहाँ पर जाने से प्रीति, आदर व धर्मभावना बढ़ती हो वह चिअत्त–प्रीतिकर कुल कहा गया है।

ELABORATION :

(17) ***Padikuttham kulam***—prohibited families or those with a bad reputation These are of two types—(1) Families that are prohibited for a short period due to some specific situation, such as the birth of a child or a recent death. (2) Families that are marked permanently or socially ostracized, *viz* non-vegetarians, violent people, etc According to Acharya Shri Atmaram ji M., this rule is to supplement the social norm that vices should be discouraged and virtues be encouraged. The point is, an ascetic does not indulge in social discrimination, but he also cannot go against the established social norms

Mamagam—where the head of the family has for some reason declared ascetics as unwelcome

Achiyattam kulam—families where ascetics are not liked.

Chiyattam kulam—families where ascetics are not only welcome but their visits enhance the faith and regard for religion.

१८ : साणीपावारपिहियं अप्पणा नावपंगुरे।
कवाडं नो पणुल्लिज्जा उग्गहंसि अजाइया॥

सन (अलसी का बना वस्त्र) की बनी हुई चिक से अथवा कपड़े या पर्दे से ढके हुए द्वार को गृह-स्वामी की आज्ञा के बिना साधु अपने आप न खोले॥१८॥

18. An ascetic should not, on his own, remove the curtain made of hessian or cloth from a door without the permission of the owner of the house.

१९ : गोयरग्गपविट्ठो अ वच्चमुत्तं न धारए।
ओगासं फासुअं नच्चा अणुन्नविअ वोसिरे॥

मल-मूत्र की बाधापूर्वक साधु गोचरी के लिए नहीं जावे। यदि वहाँ जाने पर बाधा हो जाय, तब प्रासुक (निर्दोष-निर्जीव) मल-मूत्र त्यागने का स्थान देखकर और गृहस्थ की अनुमति लेकर ही मल-मूत्र का परित्याग करे॥१९॥

19. An ascetic should not go out to seek alms without relieving himself of any natural physical urge (like urinating). If the urge comes after he has moved out, he should find a proper place free of living organisms and relieve himself after getting permission from the householder.

२० : नीअदुवारं तमसं कुट्ठगं परिवज्जए।
अचक्खुविसओ जत्थ पाणा दुप्पडिलेहगा॥

जिसका दरवाजा बहुत नीचा हो, जिस कोठे (कोष्ठक–कमरे) में अन्धकार हो, जहाँ पर आँखें कुछ काम न देती हों और जहाँ पर जीव दिखाई न पड़ते हों, साधु ऐसे स्थान को टाले। (वहाँ गोचरी के लिए न जाय)॥२०॥

20. An ascetic should avoid going to a room which has a low or small gate, which is dark and gloomy, and where eyes fail to see the presence of any creatures or insects.

२१ : जत्थ पुप्फाइं बीयाइं विप्पइन्नाइं कोट्ठए।
अहुणोवलित्तं उल्लं दट्ठूणं परिवज्जए॥

जहाँ पर फूल और बीज बिखरे हुए हों, तथा जो स्थान अभी-अभी लीपा-पोता होने से गीला हो, उस स्थान को साधु दूर से ही देखकर छोड़ दे॥२१॥

21. An ascetic should avoid going near a place where seeds or flowers are scattered on the floor, or it is still wet after being freshly mopped or plastered or washed.

२२ : एलगं दारगं साणं वच्छगं वा वि कुट्ठए।
उल्लंघिया न पविसे विऊहित्ताण व संजए॥

कोठे (भवन या कक्ष) के दरवाजे पर यदि कोई बकरा, बालक, कुत्ता या बछडा आदि मिल जाय तो साधु को चाहिए कि वह उन्हें लाँघकर अथवा हटाकर घर में प्रवेश न करे॥२२॥

22. If an ascetic finds a goat, a child, a dog or a calf, etc. sitting or lying across the door, he should not enter the gate by crossing over or shifting them.

विशेषार्थ :

श्लोक २२. चूर्णिकार ने बताया है–मेष आदि को हटाने से वह सींग मार सकता है। कुत्ता काट सकता है। पाड़ा, बछडा भयभीत होकर बधन तोडकर भाग सकता है। बालक को हटाने से उसे पीडा भी हो सकती है तथा गृह स्वामी को वह अप्रिय लग सकता है। इस प्रकार संयम विराधना एव शरीर को हानि पहुँचाने की संभावना के कारण उक्त कार्यों का निषेध किया गया है। (जिनदासचूर्णि, पृ. १७६)

ELABORATION :

(22) The commentators explain that in such situations there is a chance that the animals might bite or hit or run away out of fear If it is a child it might get hurt or the parents might get angry. All these are detrimental to the discipline of the ascetic besides being physically harmful. (*Jinadas Churni*, page 176)

२३ : असंसत्तं पलोइज्जा नाइदूरावलोअए।
उप्फुल्लं न विणिज्झाए नियट्टिज्ज अयंपिरो॥

साधु आसक्त होकर किसी ओर न देखे; अति दूर से किसी चीज को न देखे, नेत्रों को फाड़-फाड़कर भी न देखे। यदि किसी घर से आहार न मिले तो बिना आलोचना अवहेलना किये घर से निकल आवे॥२३॥

PROPER CONDUCT

23. An ascetic should not look at something with yearning, from a distance or with wide eyes. If he does not get alms from anyone, he should leave without comment or any belittling gesture.

विशेषार्थ :

श्लोक २३. असंसत्तं पलोएज्जा–असंसक्त प्रलोकेत–अनासक्त दृष्टि से देखे। गोचरी लेते समय साधु की दृष्टि जिस वस्तु पर भी पडे–चाहे वह स्त्री हो अथवा अन्य आकर्षित कर लेने वाली वस्तु हो–उसके प्रति आसक्त न बने। आसक्त दृष्टि मन में विकार उत्पन्न करती है, साथ ही लोक आक्षेप को भी जन्म देती है, जबकि तटस्थ वृत्ति लोक-विश्वास को दृढ़ बनाती है।

उप्फुल्ल न विणिज्झाए–उत्फुल्लं न विनिध्यायेत्–विस्फारित नेत्रो से अथवा आँख फाड़कर न देखे। इसमे उत्सुकता, कौतूहल, आश्चर्य आदि भाव प्रकट होते हैं और मन में दोष न होते हुए भी लोग दोषी समझ सकते हैं।

निअट्टिज्ज अयपिरो–निवर्त्तताऽजल्पाक–विना कुछ कहे वापस चला जाय। साधु की शास्त्रोक्त चर्या है भिक्षा हेतु जाना किन्तु गृहस्थ की इच्छा है कि वह आहारदान करे अथवा नहीं। अत· अपना कर्त्तव्य करते समय अन्य की इच्छा-अनिच्छा की प्रशंसा अथवा निन्दा नहीं करनी चाहिए। किन्तु चुपचाप वहाँ से लौट आना चाहिए।

ELABORATION :

(23) ***Asamsattam paloejja***—to look without yearning. An ascetic while seeking alms should not look at anything coveteously,

even if it is a woman or other attractive thing. A yearning look reveals inner desire and also bolsters it. Besides this, it draws criticism and disrespect A detached look draws respect and inspires faith.

Upfullam na vinijjhaye—should not give a wide-eyed look. This conveys eagerness, curiosity and surprise, and consequently draws criticism despite one's not being at fault

Niattijja ayampiro—to return without any comment. As required by the scriptures, it is the duty of an ascetic to go seeking alms, but at the same time it is up to the householders whether to give or not. Therefore, while performing one's duty one should not evaluate decisions of others, nor should one praise or condemn decisions favorable or unfavorable to him. One should simply return without comment

२४ : अइभूमिं न गच्छेज्जा गोयरग्गगओ मुणी।
कुलस्स भूमिं जाणित्ता मिअं भूमिं परक्कमे॥

गोचराग्र में गया मुनि, अतिभूमि अर्थात् गृहस्थ की मर्यादित की हुई भूमि को अतिक्रम करके आगे न जाये किन्तु कुल की भूमि को जानकर घर की मर्यादित की हुई भूमि तक ही जाय॥२४॥

24. An ascetic seeking alms should not transgress the limits set by a householder He should know about such limits and should go only up to the permissible areas.

विशेषार्थ

श्लोक २४. कुलस्सभूमि-कुलभूमि-गृहस्थ के घर की वह सीमा जहाँ तक किसी भी भिक्षाचर के आने से उसे अप्रिय न लगे कुलभूमि कही जाती है। इसका निर्णय ऐश्वर्य, देशाचार, कुलाचार आदि की अपेक्षा से करना होता है। आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज का इस सम्बन्ध में कथन है कि "भिक्षु को प्रत्येक कुल की मर्यादा का बोध होना चाहिए क्योंकि नाना प्रकार के कुलो मे नाना प्रकार की मर्यादा होती है।" अगस्त्यसिंह चूर्णि में इसका महत्त्व एक सटीक उदाहरण से समझाया है-"लाख का गोला आग पर चढ़ाने से

पिघल जाता है और आग से अतिदूर रहने पर उसे इच्छित रूप आकार नहीं दिया जा सकता। इसी प्रकार गृहस्थ के घर से दूर रहने पर साधु को भिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती और एषणा की शुद्धि भी नहीं हो पाती। अत्यन्त निकट चले जाने पर अप्रीति या सन्देह उत्पन्न हो सकता है। अत वह कुल की भूमि को पहले जान ले। (अ चू. २)

ELABORATION :

(24) ***Kulassabhumim***—The area of a house where alms seekers or other outsiders are allowed to come. This depends on many factors like status, local convention, family norms, etc. In this context Acharya Shri Atmaram ji M says—"An ascetic should have knowledge of the norms of all clans and families because these differ from area to area and family to family" An example illustrating the reason behind this rule is as follows—"A lump of shellac melts if it comes very close to fire. On the other hand, if it remains too far away it cannot be moulded into the desired shape. In the same way, if an ascetic is too far from the house, he cannot inspect and get proper food, and going too near it will result in suspicion and aversion. So it is better that he is aware of the permissible areas " (*Agastya Simha Churni* 2)

२५ : तत्थेव पडिलेहिज्जा भूमिभागं विअक्खणो।
सिणाणस्स य वच्चस्स संलोगं परिवज्जए॥

विचक्षण साधु, उस मर्यादित भूमि-भाग का प्रतिलेखन करे और वहाँ खड़ा हुआ स्नान-घर तथा शौच-गृह की ओर देखने से बचे॥२५॥

25. Such ascetic, unique among men, should inspect that permissible area, and should avoid looking into bathrooms or other facilities while standing there

विशेषार्थ :

श्लोक २५. संलोग–सलोकं–देखना या दिखाई पड़ना। इस गाथा में मर्यादित भूमि में खडे होने की भी मर्यादा निश्चित की गई है। मर्यादित भूमि का प्रतिलेखन कर उस स्थान को टाले जहाँ से स्नान-गृह तथा शौच-गृह दिखाई पडे। साथ ही ऐसे स्थानों की ओर देखने से बचे।

कारण कि इन दोनों स्थानों पर स्त्री व पुरुष नग्नावस्था में दिखाई पडने की संभावना होती है, जिससे आत्म-दोष तथा पर-दोष दोनों प्राप्त हो सकते हैं।

ELABORATION :

(25) ***Samlogam***—to look at or to chance to look at. Even the norms of standing in the permissible area have been set. An ascetic should avoid standing near or facing facilities like a bathroom or lavatory because there is a chance that at some careless moment he or she might happen to see some men or women in a disheveled, semi-nude, or nude condition This may result in provocation of the self as well as others.

अकल्प का वर्जन

२६ : दगमट्टिअ आयाणे बीआणि हरिआणि अ।
परिवज्जंतो चिट्ठिज्जा सव्विंदिअसमाहिए॥

जिस मार्ग से लोग पानी, मिट्टी, बीज तथा वनस्पति लाते हों वहाँ सर्वेन्द्रिय की समाधि वाला साधु उन पदार्थों से बचकर उचित प्रदेश में खडा होवे॥२६॥

PROHIBITIONS

26. If on the way there is a movement of people carrying water, sand, seeds and vegetables, then an ascetic who has vowed to discipline all his senses should stand keeping a safe distance from such things.

विशेषार्थ :

श्लोक २६. सव्विंदिय समाहिए-जिसकी सब इन्द्रियाँ समाहित हो, समाधिस्थ हों अथवा अन्तर्मुखी हो। अर्थात् जो बाह्य विषयो से विरत होकर आत्मलीन हो गया हो ऐसे साधु को सर्वेन्द्रिय समाहित कहते हैं।

ELABORATION :

(26) ***Savvindiya samahiye***—One who has disciplined or indrawn drawn all his senses. An ascetic who has detached himself from anything mundane and is involved with the self only.

२७ : तत्थ से चिट्ठमाणस्स आहरे पाणभोयणं।
अकप्पियं न गिण्हिज्जा पडिगाहिज्ज कप्पिअं॥

उस स्थान पर खड़ा हुआ साधु भोजन पानी स्वीकार करे। यदि वह कल्पता नहीं हो तो ग्रहण न करे, किन्तु यदि कल्पता हो तो ग्रहण कर लेवे॥२७॥

27. Standing at such place the ascetic should accept food and water. He should take only what is proper (*kalp*) for him and not what is not proper (*akalp*) for him.

विशेषार्थ :

श्लोक २७. अकप्पिय, कप्पिय–अकल्पिक, कल्पिक–कल्प का अर्थ है शास्त्र, नीति, आचार, मर्यादा, विधि, समाचारी आदि से सम्मत। अतः कल्प्य अथवा कल्पिक का अर्थ है उक्त नीति आदि से युक्त ग्राह्य, करणीय और योग्य। साधु को जिन नियमों तथा मर्यादाओं का पालन करना होता है उनके अनुसार जो लेने या करने योग्य हो वह कल्प्य या कल्पिक है। जैनागमो के अनुसार साधु को भिक्षा सम्बन्धी बयालीस दोषों से मुक्त भिक्षा लेना ही कल्पता है। आचार्य उमास्वाति के अनुसार–जो कार्य ज्ञान, शील और तप का उपग्रह (वृद्धि) और दोषो का निग्रह करता है, वह निश्चयदृष्टि से कल्प्य है तथा शेष अकल्प्य है साथ ही देश, काल, पुरुष अवस्था व भावना की समीक्षा करके ही कल्प्य-अकल्प्य का निर्णय किया जाता है। (प्रशमरति प्रकरण, गा. १४३)

ELABORATION :

(27) ***Akkapiyam, kappiyam***—*Kalp* means that which is proper according to the scriptures, ethics, codes of conduct, rules, methodology, essentials of routine, etc Accordingly, *kappppiya* means that which is acceptable according to these rules With regard to an ascetic this refers specifically to the ascetic norms and codes of conduct. According to Jain canons, the only things that are acceptable to an ascetic are those that are free of 42 listed faults connected with seeking alms According to Acharya Umaswati the act that enhances knowledge, virtues and austerity is *kalpya*, *i.e.*, acceptable from the spiritual viewpoint, while all else is unacceptable or *akalpya*. From the empirical and behavioral or

mundane viewpoint, parameters like place, time, situation, age, etc., and norms connected with them, are also taken into consideration before deciding what is acceptable. (*Prashamrati Prakaran* 143)

२८ : आहरंती सिया तत्थ परिसाडिज्ज भोयणं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

देने वाली स्त्री कदाचित् इधर-उधर गिराती हुई भोजन लावे तो साधु उसे यह कहे कि "बहन, यह भोजन लेना मुझे नहीं कल्पता है।" अर्थात् उसके हाथ से न लेवे॥२८॥

28. If, while bringing food, a woman spills it around, the ascetic should say—"Sister! I am not allowed to accept such food." In other words, he should not accept food from her.

२९ : संमद्दमाणी पाणाणि बीआणि हरिआणि य।
असंजमकरिं नच्चा तारिसिं परिवज्जए॥

प्राणियों को, बीजों को और वनस्पति को कुचलती हुई स्त्री को असंयमकरी जानकर साधु उसके हाथ से भी आहार-पानी न लेवे॥२९॥

29. An ascetic should also not accept food from a woman who, while bringing food, crushes insects, seeds or vegetables, he should consider her to be undisciplined.

विशेषार्थ :

श्लोक २९. असंजमकरिं–असयमकरीं–असंयम करने वाली/वाला। भिक्षा देने से पूर्व अथवा भिक्षा देने के लिए आते समय किसी प्रकार का असयम (हिसा) करने वाले से साधु भिक्षा न ले। असयम का सक्षिप्त विवरण उक्त गाथा में है। आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज इसका महत्त्व बताते हुए कहते है–"साधु यदि असंयमकरी स्त्री के हाथ से आहार-पानी ग्रहण कर लें तो उन्हें असंयम का दोष तो लगेगा ही, इसके अलावा असयम की अनुमोदना का भी दोष लगे बिना न रहेगा।"

ELABORATION :

(29) *Asanjamakarim*—undisciplined. The discipline required while giving food has been explained above in brief Stressing its importance, Acharya Shri Atmaram ji M. says—"If an ascetic accepts food from such an undisciplined woman he commits the faults of becoming undisciplined himself and that of approving indiscipline."

३० : साहट्टु निक्खिवित्ताणं सचित्तं घट्टियाणि य।
तहेव समणट्ठाए उदगं संपणुल्लिया॥

३१ : ओगाहइत्ता चलइत्ता आहरे पाणभोयणं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

इसी तरह कोई दाता-स्त्री साधु के लिए एक पात्र से दूसरे पात्र में डालकर, सचित्त और अचित्त को मिलाकर, अचित्त के ऊपर सचित्त को रखकर, अचित्त से सचित्त को छुआकर अथवा रगड़कर, जल को चलाकर अथवा जल में चलकर आहार-पानी दे तो साधु उससे कहे कि मुझे यह ग्राह्य नहीं है॥३०-३१॥

30, 31. Further, if a donor woman transfers food from one pot to another, mixes *sachit* with *achit,* places *achit* over *sachit,* touches or rubs *achit* with *sachit,* stirs water or walks over water before or while bringing food to an ascetic, he should say that it is not allowed for him to accept such food.

विशेषार्थ :

श्लोक ३०, ३१. **साहट्टु**—संहृत्य—समेटकर अथवा बड़े बर्तन से छोटे में निकालकर अथवा एक बर्तन से दूसरे में निकालकर। ऐसा करने से अचित्त अथवा प्रासुक को सचित्त मे मिलाना हो जाता है। अत: ऐसा आहार लेना निषिद्ध है। विशेष वर्णन पिण्डनिर्युक्ति मे उपलब्ध है।

उदगं सपणुल्लिया—जल को हिलाकर। यहाँ जल को हिलाकर, चलाकर और उस पर चलकर भोजन दिया जाये उसे निषिद्ध बताया है। जल में प्रत्येक सचित्त वस्तु का समावेश है। यह सभी एषणा के विविध दोष हैं।

ELABORATION :

(30, 31) ***Sahattu***—reduce quantity by transferring from a large vessel to a smaller one This action is deemed as mixing *sachit* with *achit,* thereby making it unacceptable. (more details in *Pinda Niryukti*).

Udang sampanulliya—to disturb water This includes stirring shaking, or walking over water. Here water has been used as a generic term for anything *sachit* All these are faults of seeking and accepting food

३२ : पुरेकम्मेण हत्थेण दव्वीए भायणेण वा।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

३३ : एवं उदउल्ले ससिणिद्धे ससरक्खे मट्टिआ ऊसे।
हरिआले हिंगुलए मणोसिला अंजणे लोणे॥

३४ : गेरुअ-वन्निय-सेदिअ-सोरट्ठिअ-पिट्ठ-कुक्कुसकए य।
उक्किट्ठमसंसट्ठे संसट्ठे चेव बोधव्वे॥

साधु को आहार-पानी देने से पहले ही सचित्त-अप्राशुक-जल से धोये हुए हाथ से, करछुली या किसी अन्य पात्र से आहार-पानी देने वाली स्त्री को साधु यह कह दे कि मैं इस प्रकार का आहार-पानी ग्रहण नहीं कर सकता। उसी प्रकार से पानी की बूँदें टपकते हाथों से अथवा स्निग्ध (गीले) हाथों से, सचित्त रज से भरे हुए हाथों से, मिट्टी (कीचड) और क्षार (नौनी मिट्टी) भरे हुए हाथों से, हरिताल वा हिगुल भरे हुए हाथों से, मनःशिला, अंजन वा लवण से भरे हाथों से गेरू (लाल मिट्टी) पोली मिट्टी, सफेद मिट्टी, फिटकरी, चावलों का आटा, अनछना आटा, अनाज का भूसा आदि से तथा फलों के टुकड़े आदि से असंसृष्ट तथा संसृष्ट हाथों के सम्बन्ध मे जानना चाहिए॥३२-३३-३४॥

32, 33, 34. If, just before giving food to an ascetic, a woman washes her hands or the serving spoon or other serving vessel with *sachit* water, the ascetic should refuse, stating that he is

not allowed to accept such food. The same is true for hands and serving vessels drenched with water or soiled with *sachit* dust, slime, sand, yellow pigment, vermilion powder, bitumen, collyrium, salt, red, yellow and white sand, alum, rice-flour, other unstrained flour, husk, scraps of vegetables and fruits and other such things.

विशेषार्थ :

श्लोक ३२. पुरे कम्मेण–पुर:कर्मणा–साधु को भिक्षा देने के निमित्त पहले से सचित्त जल से हाथ, बर्तन आदि धोना अथवा अन्य किसी प्रकार की हिंसा करना पूर्व-कर्म दोष है।

श्लोक ३३, ३४. असंसट्ठे ससट्ठे चेव बोधव्वे–सजीव पानी, पृथ्वी और वनस्पति से सने हुए हाथ को संसृष्ट हाथ कहा जाता है। यहाँ उन पदार्थों की संक्षिप्त सूची दी है तथा इनसे सने या बिना सने हाथों से आहार लेने-न लेने का विधान समझने की बात कही है। (स्पष्टता के लिए देखें चित्र संख्या ११/३)

ELABORATION :

(32) ***Pure kammena***—any action that entails harming any organism just prior to, and with the purpose of, giving food to an ascetic

(33, 34) ***Asamsatthe***—soiled with something sachit, such as water, sand and vegetables. For guidance a brief list of such things is given here with the code of accepting and rejecting alms given by hands soiled with them. **(illustration No. 11/3)**

३५ : असंसट्ठेण हत्थेण दव्वीए भायणेण वा।
दिज्जमाणं न इच्छिज्जा पच्छाकम्मं जहिं भवे॥

जहाँ पर पश्चात्-कर्म दोष लगे वहाँ असंसृष्ट हाथ से या कड़छी तथा बर्तन से दिये जाने वाले आहार-पानी को साधु नहीं लेवे॥३५॥

35. An ascetic should not accept food, even with clean and dry hands, serving spoons or vessels, if there is any chance of consequent faults.

विशेषार्थ :

श्लोक ३५. पच्छाकम्म-पश्चात्-कर्म-जिस वस्तु की हाथ अथवा शरीर के अन्य अंग अथवा बर्तन पर चिपकने की, लेप लग जाने की संभावना हो और फिर हाथ धोना पडे, वैसी वस्तु देने पर पश्चात् कर्म-दोष लगता है। कारण कि भिक्षा देने के लिए जो हाथ, बर्तन आदि आहार से लिप्त हो गये हों उन्हे गृहस्थ सचित्त जल से धोता है। ऐसे पश्चात्-कर्म की संभावना होने पर विना सने हाथ या कड़छी से भी आहार लेने का निषेध है। अलेपकृत आहार के सम्बन्ध मे पिण्डनिर्युक्ति में कहा गया है-पश्चात्-कर्म दोष की सभावना न रहे अत मुनि अलेपकृत जो चुपड़ा न हो, रूखा हो, ऐसा आहार लेवे। इसके समाधान में चूर्णिकार कहते हैं-"आवश्यक होने पर मुनि चुपडा सलेप आहार भी ले सकता है, किन्तु शर्त यही है कि वहाँ पश्चात्-कर्म दोष की सभावना न हो। (देखे विस्तार के लिए आचार्य श्री महाप्रज्ञ दशवै , पृ २३०-२३१)

ELABORATION :

(35) *Pacchakammam*—consequent faults If, while serving a thing, the hands or serving vessels get soiled and have to be washed and cleaned, it is known as a consequent fault This is because the householder generally washes these things with *sachit* water An ascetic is not allowed to accept such food, even if it is given with unsoiled hands In *Pind-Niryukti* it is stated that to avoid this fault ascetics should take only dry and oil-free food However, the commentators clarify that an ascetic may take oily food provided he avoids the chances of such consequent faults (for more details see *Dashavaikalik Sutra* by Acharya Mahaprajna, page 230-231)

३६ : संसट्ठेण य हत्थेण दव्वीए भायणेण वा।
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा जं तत्थेसणियं भवे॥

संसृष्ट हाथ, कडछी तथा भाजन से दिया हुआ अन्न-पानी यदि निर्दोष होवे तो साधु ग्रहण कर सकता है॥३६॥

36. An ascetic can accept food when it is served with soiled hands or serving vessels but is free of the above said faults or acceptable according to the codes

विशेषार्थ :

श्लोक ३६. एसणीयं-एषणीय-लेने योग्य या निर्दोष। एषणीय शब्द बडे व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है-सभी नियमो के अनुसार सब प्रकार से निर्दोष वस्तु को एषणीय कहते हैं। आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज इसका महत्त्व समझाते हुए कहते हैं-"साधु यदि इस बात का निश्चय कर लेवे कि यह अन्न-पानी तथा भोजनादि सर्वथा निर्दोष है, पश्चात्-कर्म या पूर्व-कर्म दोष की सभावना नहीं की जा सकती। अत यह अन्न-पानी ग्राह्य है, तव उस निर्दोष अन्न-पानी को ले लेवे। कारण कि जव साधु के नवकोटि प्रत्याख्यान है तब उसको प्रत्येक पदार्थ की ओर अत्यन्त विवेक रखने की आवश्यकना है, तभी वह दोषों से बच सकता है।"

ELABORATION :

(36) ***Esaniyam***—acceptable (conforming to the codes) or faultless. This term is used in its all enveloping meaning and not just in a specific context *Eshaniya* is a thing that conforms to the codes from every possible angle and is thus acceptable. Acharya Shri Atmaram ji M explains its importance—"An ascetic should first ensure that the food he is inspecting is absolutely faultless and there is no chance of some preceding or consequent fault if he accepts it, such food is acceptable Only then should he accept such faultless food. The reason for so much precaution is that an ascetic has an iron clad commitment to the nine rules of abstinence, and he can avoid straying into faults only if he is alert and choosy about each and every thing"

३७ : दुण्हं तु भुंजमाणाणं एगो तत्थ निमंतए।
दिज्जमाणं न इच्छिज्जा छंदं से पडिलेहए॥

यदि एक ही वस्तु को दो व्यक्ति भोगने वाले हों तव उनमें से यदि कोई एक व्यक्ति साधु को निमन्त्रण करे, तव साधु न देने वाले व्यक्ति का अभिप्राय अवश्य जाने॥३७॥

37. If there are two owners or consumers of a thing and only one of them invites the ascetic, then before accepting he must inquire about the intention of the other.

विशेषार्थ :

श्लोक ३७. भुजमाणाणं–स्वामी अथवा खाने वाला–एक वस्तु के दो स्वामी हों अथवा एक ही भोजन के दो खाने वाले हों तो दोनों व्यक्तियों की मन स्थिति देने की हो तभी आहार लेवे, यदि एक नहीं देना चाहे तो वह आहार न लेवे।

पडिलेहए–देखकर समझे और दाता की इच्छा को जाने। साधु को दूसरे स्वामी अथवा भोजन करने वाले के अभिप्राय को उसके मुख की चेष्टाओं या भाव से समझने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि उसकी भी अनुमति हो, उसे कोई आपत्ति न हो, उसे भी भिक्षा देना अच्छा लगे तभी आहार ग्रहण करे अन्यथा नहीं।

ELABORATION :

(37) ***Bhunjamananam***—plural of eater. This rule relates to a situation where the food is either owned by or meant for more than one person. An ascetic has to avoid becoming cause of harm to any of them

Padilehaye—see and understand An ascetic should observe the expression on the face of the joint owner and try to discern whether he has any objection He should accept only when he is sure that both the owners are desirous of giving the food.

३८ : दुण्हं तु भुंजमाणाणं दोवि तत्थ निमंतए।
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा जं तत्थेसणियं भवे॥

यदि एक पदार्थ के भोगने वाले दोनों ही व्यक्ति साधु को आहार ग्रहण करने का निमन्त्रण करें तो, मुनि उस देते हुए पदार्थ को यदि वह शुद्ध-निर्दोष हो तो ग्रहण कर ले॥३८॥

38. If both the owners ask him to accept the food, then the ascetic should accept the food after ensuring that it is pure and acceptable.

३९ : गुव्विणीए उवण्णत्थं विविहं पाणभोयणं।
भुंजमाणं विवज्जिज्जा भुत्तसेसं पडिच्छए॥

४० : सिआ य समणट्ठाए गुव्विणी कालमासिणी।
उट्ठिआ वा निसीइज्जा निसन्ना वा पुणुट्ठए॥

४१ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

गर्भवती स्त्री के लिए खास रूप से तैयार किये गये सामान्य भोजन के निमित्त बने हुए विविध प्रकार के खाद्य तथा पेय पदार्थों को अहिंसाव्रती मुनि ग्रहण न करे। यदि वे पदार्थ भुक्तशेष हों–खाने के बाद बचे हुए हों तो ग्रहण कर ले॥३९॥

यदि कदाचित् काल मासवती गर्भवती स्त्री, साधु को आहार-पानी बहराने के लिए खड़ी हुई बैठे और बैठी हुई फिर खड़ी होवे तो वह आहार-पानी साधु को अग्राह्य है। अतः वह देने वाली स्त्री से कह दे कि इस प्रकार का आहार-पानी लेना मुझे नहीं कल्पता है॥४०-४१॥

39, 40, 41. An ascetic, who has taken the *ahimsa* vow, should not accept any food specially prepared for, and meant even for normal feeding of, a pregnant woman. He is allowed such food only if it is left over after the pregnant woman has eaten. If, during the last month of her pregnancy, a pregnant woman stands up or sits down in order to serve food to an ascetic, then he must not accept such food. He should inform the woman that he is not allowed to accept such food.

विशेषार्थ :

श्लोक ३९ भुञ्जमाणं विवज्जेज्जा–जो भोजन गर्भवती स्त्री के लिए बना हो और जिसको वह ग्रहण कर रही हो। इसके पीछे दोहद-पूर्ति का नियम है। दोहद-पूर्ति न होने से गर्भवती स्त्री तथा उसके गर्भ दोनों को हानि पहुँचती है। दोहद-पूर्ति हेतु बनी सामग्री से साधु के ले लेने से कदाचित् कम पड जाए इस संभावना को ध्यान मे रखकर यह नियम बनाया गया है। (अगस्त्यसिंह चूर्णि, पृ. १११; जिनदास चूर्णि, पृ. १२० तथा हारिभद्रीय टीका, पृ. १७१)। इस सम्बन्ध में आचार्यश्री आत्माराम जी म. का महत्त्वपूर्ण कथन है–"जैन साधुओं के अहिंसा व्रत का वर्णन अत्यन्त सर्वतोव्यापिनी सूक्ष्मदृष्टि से किया है।"

श्लोक ४०, ४१. कालमासिणी–काल मासवती–पूरे महीने वाली, जिसके गर्भ का प्रसूति मास या नवाँ महीना चल रहा हो उसे काल मासवती कहते हैं। जो स्थविरकल्पी मुनि होते हैं वे तो उक्त दोष का विचार कालमास पर रखते हैं किन्तु जो जिनकल्पी मुनि होते हैं वे तो गर्भ धारण के समय से ही गर्भवती स्त्री से आहार-पानी ग्रहण करना छोडे देते हैं। (आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज तथा जिनदास चूर्णि)

ELABORATION :

(39) ***Bhujjamanam vivajjejja***—food specially prepared for a pregnant woman, or the food she is eating. The reason for this negation is related to pregnancy desire (*dohad*) It is believed that if the pregnancy desire is not fulfilled it is harmful to the mother as well as the fetus. If an ascetic takes such food there is a chance that there will be a shortfall in the required quantity. (*Agastya Simha Churni*, page 111; *Jinadas Churni*, page 120, commentary by Acharyashri Haribhadra Suri, page 171) Acharyashri Atmaram ji M comments about the importance of these rules—"The *ahimsa* vow of the Jain ascetics has been formulated with a minute but all enveloping angle."

(40, 41) ***Kaalamasini***—A pregnant woman during the last month of her pregnancy (the ninth month) The *sthavir kalpi* ascetics follow this rule The *jina kalpi* ascetics are even more strict They do not accept food from a pregnant woman from the moment she becomes pregnant (Acharyashri Atmaram ji M. and *Jinadas Churni*)

४२ : थणगं पिज्जमाणी दारगं वा कुमारिअं।
तं निक्खिवित्तु रोअंतं आहरे पाणभोयणं॥

४३ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

शिशु (बालक-बालिका) को स्तन-पान कराती हुई स्त्री, उन रोते हुए बालक-बालिका को नीचे भूमि आदि पर रखकर साधु को आहार-पानी दे तो वह

आहार-पानी साधु को अग्राह्य है। अतः देने वाली माता से कह दे कि इस प्रकार का आहार-पानी मुझे नहीं कल्पता है॥४२-४३॥

42, 43. If a woman who is breast-feeding a child (boy or girl) puts that crying child on the floor and proceeds to give food to an ascetic, then he should not accept that food. He should inform the woman that he is not allowed to accept such food.

विशेषार्थ :

श्लोक ४२, ४३. इस नियम को अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज कहते हैं–इस निषेध का कारण शिशु के दुग्धपान में अन्तराय पडना तथा असावधानी से धरती पर रखने के कारण शिशु को हानि पहुँचने की संभावना है। स्थविरकल्पी या अपवादमार्गी साधु यदि शिशु स्तन-पान न कर रहा हो, उसे पीडा की संभावना न हो, गोद से उतारने से रुष्ट न होता हो तो आहार-पानी ग्रहण कर सकता है किन्तु जो जिनकल्पी या उत्सर्गमार्गी साधु हैं वे ऐसा नहीं कर सकते। किन्तु अपवादमार्गी साधु को भी अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का पूर्ण विचार करके ही उचित मार्ग का आश्रय लेना चाहिए।

ELABORATION :

(42, 43) Clarifying this rule Acharyashri Atmaram ji M. says—The reason for this negation is that the arrival of the ascetic interrupts the feeding of the baby, causing him inconvenience. Also there are chances of harm to the child due to putting it on the floor in a hurry The *sthavir kalpi shraman* may accept such food if the child is not being fed or does not cry when placed on the floor. But the *jina kalpi* ascetic strictly refuses to accept. Even the ordinary ascetic who follows the relaxed codes should examine the situation on the basis of the matter at hand, area, time and attitude of those involved

कल्प-अकल्प का निश्चय करे

४४ : जं भवे भत्तपाणं तु कप्पाकप्पम्मि संकिअं।
दिंतिअं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

यदि ऐसी शंका हो जाये कि यह आहार-पानी मुझको कल्पनीय है या अकल्पनीय है तो साधु देने वाली स्त्री से कह दे कि मुझे ऐसा आहार-पानी लेना कल्पता नहीं है॥४४॥

DECISION ABOUT ACCEPTABILITY

44. Even if there is only some slight doubt about whether the food at hand is acceptable or not, the ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food.

विशेषार्थ :

श्लोक ४४. आहार-पानी के पूर्व कथित दोषों का निश्चय हो जाने पर तो वह सदोष सामग्री कल्पती ही नहीं किन्तु जब उन दोषों में किसी प्रकार की शका साधु के मन में उत्पन्न हो जाये तो भी वह सामग्री ग्रहण योग्य नहीं होती। कारण कि शका सहित लिया आहार शुद्ध होने पर भी शका के कारण कर्मबध का हेतु होने से अशुद्ध हो जाता है। साथ ही वैसा आहार ले लेने से मन मे एक प्रकार का अनुचित साहस उत्पन्न हो जाता है और कालक्रम से साधु अशुद्ध आहार लेने लग जाता है। पिण्डनिर्युक्ति (पृ ५२९-५३०) के अनुसार अपनी ओर से पूरी जाँच करके लिया हुआ आहार यदि अशुद्ध भी हो तो भी साधु के कर्मबन्ध का हेतु नहीं बनता।

ELABORATION :

(44) Once the food is properly examined and is found conforming to the above said codes it is acceptable. However, if there is even a slightest doubt about it in the mind of the ascetic, the food should not be accepted. This is because even if the food is actually pure and acceptable the doubt in the mind of the *shraman* becomes the cause of the bondage of *karmas*, rendering the food faulty Besides this, such acceptance, with a doubt in the mind, leads to relaxation of the discipline and in due course the ascetic starts accepting food that is unacceptable or faulty. When an ascetic accepts a food after finding it faultless to the best of his knowledge, it does not become the cause of bondage of *karmas* even if it really is faulty (*Pind Niryukti*, page 529-530)

४५ : दगवारेण पिहियं नीसाए पीढएण वा।
लोढेण वावि लेवेण सिलेसेण व केणइ॥
४६ : तं च उब्भिंदिआ दिज्जा समणट्ठाए व दावए।
दिंतिअं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

पानी के घड़े से, पत्थर की चक्की से, चौकी से, शिलापुत्र (लोढ़ी) से, मिट्टी के लेप से, लाख आदि की मुद्रा से अथवा अन्य किसीं वस्तु से आहार-पानी यदि ढका हुआ हो और यदि दाता उसको साधु के ही निमित्त उघाड़कर देता हो तो साधु दाता से कह दे कि इस प्रकार का आहार-पानी लेना मुझे नहीं कल्पता है॥४५-४६॥

45, 46. If the food is covered with a pitcher, a grinding wheel, a stool, a grinding stone or any other thing or is sealed with flour-putty or shellac and the donor uncovers it for the sole purpose of giving alms to an ascetic, the ascetic should inform the donor that he is not allowed to accept such food.

विशेषार्थ .

श्लोक ४५, ४६ इस नियम मे किसी भी प्रकार के ढके हुए या वंद किये आहार को लेने का निषेध है क्योंकि ढकना सचित्त हो सकता है। अचित्त भी हो तो खोलने-बद करने की क्रिया में हिंसा की सभावना बनी रहती है। यहाँ सीवन खोलने या किवाड़ खोलने का उल्लेख नहीं है। किन्तु उपलक्षण से वह भी निषिद्ध है। (देखें, पिण्डनिर्युक्ति, गाथा ३४७)

ELABORATION :

(45, 46) The reason for this negation is that the cover might be *sachit* Even if it is not, the process of uncovering and covering entails chances of harm to micro-organisms The opening and closing of doors, drawers, etc., is not mentioned here, but they are also included in the term 'cover'. (*Pind Niryukti* 347)

४७ : असणं पाणगं वावि खाइमं साइमं तहा।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा दाणट्ठा पगडं इमं॥

४८ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

अन्न-पानी, खाद्य वा स्वाद्य पदार्थ के विषय में साधु ने जान लिया हो अथवा सुन लिया हो कि यह पदार्थ दान के लिए ही तैयार किया गया है, तो इस प्रकार का (दानार्थ) अन्न-पानी साधुओं को लेना उचित नहीं है। अतः विवेकवान साधु देने वाली स्त्री से स्पष्ट कह दे कि इस प्रकार का अन्न-पानी लेना मुझे नहीं कल्पता है॥४७-४८॥

47, 48. If an ascetic has heard or otherwise become aware of the fact that some food has been specifically prepared for the purpose of charity, it is not proper for him to accept such food. So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food.

विशेषार्थ :

श्लोक ४७, ४८. **दाणट्ठा पगडं–दानार्थप्रकृत**–दान देने के प्रयोजन से बनाया गया। हमारे सामाजिक जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब दान देने के विशिष्ट उद्देश्य से भोजन पकाया जाता है। ऐसे बहुत से याचकादि होते हैं जिनकी जीविका का यही साधन बन जाता है। उनके निमित्त बनाया भोजन ग्रहण करने से उनको अन्तराय पडता है।

ELABORATION :

(47, 48) ***Danattha pagadam***—prepared for the purpose of charity In our social life there are numerous occasions when food is prepared for the welfare of destitute There are many poor people who live only on such food If an ascetic takes some food out of this, then he deprives someone of his source of survival And so such food is *akalpya* for a *shraman*

४९ : असणं पाणगं वावि खाइमं साइमं तहा।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा पुण्णट्ठा पगडं इमं॥

५० : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

अन्न-पानी खाद्य और स्वाद्य पदार्थ के विषय में साधु ने स्वयं या अन्य किसी से सुनकर यदि यह जान लिया हो कि वह पदार्थ पुण्य के वास्ते बनाया गया है, तो वह अन्न-पानी साधु के लिए अग्राह्य है। अतः साधु दानकर्त्ता से कह दे कि मुझे इस प्रकार का अन्न-पानी लेना नहीं कल्पता है॥४९-५०॥

49, 50. If an ascetic has heard or otherwise become aware that some food has been specifically prepared for the purpose of earning meritorious *karma*, then it is not proper for him to accept such food. So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food.

विशेषार्थ :

श्लोक ४९, ५०. पुण्णट्ठा पगडं-पुण्यार्थप्रकृतं-पुण्य होने के प्रयोजन से बनाया गया। दानार्थ तथा पुण्यार्थ शब्द पर्यायवाची होते हुए भी सूक्ष्म अन्तर है। दान प्रायः यश-कीर्ति व सहायता आदि के लिए किया जाता है और पुण्य प्रायः परलोक सुधारने के लिए। ग्रहण, सक्रान्ति आदि पर्व तिथियो पर प्राय पुण्य की भावना से विशेष अशन पान आदि बनाया जाता है।

ELABORATION :

(49, 50) ***Punnattha pagadam***—prepared for the purpose of earning meritorious *karmas*. Generally speaking the terms *daanarth* and *punyarth* are synonymous. However, there is a slight difference in meaning *Daan* is a form of charity that is generally done to earn name and fame, whereas *punya* is a form of charity done to earn meritorious *karmas* in order to gain a good rebirth. This is generally done on some specified occasions like a day of eclipse, a day of some astrological conjunction and also on some festival days.

५१ : असणं पाणगं वावि खाइमं साइमं तहा।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा वणिमट्ठा पगडं इमं॥

५२ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

अन्न-पानी, खाद्य और स्वाद्य पदार्थों के विषय में साधु स्वयं या किसी से सुनकर यह जान ले कि ये पदार्थ याचकों के वास्ते तैयार किये गये हैं तो वे पदार्थ साधु को अकल्पनीय हैं। अत. देने वाली स्त्री से स्पष्ट कहे कि इस प्रकार का भोजन-पानी मेरे योग्य नहीं है, अतः मैं ग्रहण नहीं कर सकता॥५१-५२॥

51, 52. If an ascetic has heard or otherwise become aware that some food has been specifically prepared for the purpose of giving to some beggars, then it is not proper for him to accept such food. So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food.

विशेषार्थ ·

श्लोक ५१, ५२. **वणिमट्ठा पगड–वनीपकार्थप्रकृत**–दूसरो को अपनी दरिद्रता दिखाने से या उनकी प्रशंसा करने से जो द्रव्य मिलता है उसे वनी कहते हैं और वैसा पदार्थ पाने वाले को वनीपक। अत याचक या भिखारी के निमित्त बनाया भोजन भी पूर्वोक्त कारणो से निषिद्ध है। स्थानागसूत्र मे पॉच प्रकार के वनीपक बताये गये हैं, जैसे–(१) अतिथि वनीपक, (२) कृपण वनीपक, (३) ब्राह्मण वनीपक, (४) श्व-वनीपक, तथा ५ श्रमण-वनीपक।

व्यक्ति की श्रद्धा देखकर उसी प्रकार के दान की प्रशसा करने वाले, जैसे–अतिथि-भक्त के सन्मुख अतिथिदान की, कृपण (दरिद्र) के प्रति दयालुता रखने वाले के सन्मुख कृपणदान की, इसी प्रकार ब्राह्मण-भक्त, श्वान-भक्त तथा श्रमण-भक्त के सन्मुख उनकी प्रशसा करके दान चाहने वालो को उक्त पाँच श्रेणी में विभक्त किया गया है।

ELABORATION:

(51, 52) ***Vanimattha pagadam***—the things one gets by exhibiting one's poverty or by praising others is called *vani*, and he who gets such thing is called *vanipak* (beggar). Such food is also unacceptable for a *shraman* for the above said reasons In the *Sthanang Sutra* there is a mention of five types of beggars depending upon the object of praise—(1) one who praises hospitality, (2) one who praises clemency, (3) one who praises Brahmins, (4) one who praises dogs, and (5) one who praises *shramans*

५३ : असणं पाणगं वावि खाइमं साइमं तहा।
जं जाणिज्ज सुणिज्जा वा समणट्ठा पगडं इमं॥
५४ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

अन्न-पानी, खाद्य, स्वाद्य पदार्थ के सम्बन्ध में साधु स्वयं या अन्य किसी से सुनकर यह जान ले कि वे पदार्थ श्रमणों के वास्ते बनाये गये हैं, तो वे पदार्थ साधु को अकल्पनीय होते हैं। अतः साधु देने वाली स्त्री से कह दे कि ये पदार्थ मुझे लेने नही कल्पते है॥५३-५४॥

53, 54. If an ascetic has heard or otherwise become aware that some food has been specifically prepared for the purpose of giving to *shramans*, then it is not proper for him to accept such food So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food

५५ : उद्देसिअं कीअगडं पूइकम्मं च आहडं।
अज्झोअर पामिच्चं मीसजायं विज्जए॥

औद्देशिक, क्रीतकृत, पूतिकर्म, आहत, अध्यवतर, प्रामित्य और मिश्रजात दोषयुक्त आहारो को साधु लेने से मना कर दे कि यह मुझ नहीं कल्पता है॥५५॥

55. An ascetic should refuse to accept such faulty food as *auddeshik, kreetkrit, pootikarma, ahrit, adhyavatar, pramitya* and *misrajat,* saying that he is not allowed to accept such food

विशेषार्थ

श्लोक ५५. उद्देसियं–औद्देशिकं–साधु के ही निमित्त बनाया आहार।

कीअगड–क्रीतकृतम्–साधु के ही लिए खरीदकर मँगाया गया आहार।

पूइकम्म–पूतिकर्म–जो आहार सामग्री साधु के लिए बनाई जाए वह 'आधाकर्म' कहलाता है। जिस सामग्री मे ऐसी 'आधकर्मी' सामग्री का थोड़ा-सा अश भी मिला हुआ हो वह सदोष

हो जाती है। ऐसी आहार-सामग्री को 'पूतिकर्म' युक्त कहते हैं। जिस घर में आधाकर्मी आहार पका हो वह तीन दिन तक पूतिकर्मदोषयुक्त होता है। इसलिए साधु वहाँ से चार दिन तक भिक्षा नहीं ले सकता।

आहडं–आहृतं–साधु के उपाश्रय में लाकर दिया अथवा साधु के लिए अन्य स्थान से मँगाया आहार।

अज्झोयर–अध्यवतरं–अपने लिए आहार बनाते समय साधु की याद आ जाने पर उसकी मात्रा बढ़ा देना। ऐसा आहार अध्यवतर कहलाता है।

पामिच्च–प्रामित्य–साधु को देने के लिए कोई वस्तु अन्य से उधार लेना। ऐसा आहार प्रामित्य होता है।

मीसजाय–मिश्रजात–गृहस्थ जो भोजन अपने और साधु दोनों के लिए एक साथ पकाता है वह मिश्रजात होता है।

ELABORATION :

(55) ***Uddesiyam***—prepared for *shramans*

Ke-agadam—purchased for *shramans*.

Pooikammam—any food cooked for ascetics is called *aadhakarma*; even if only a small quantity of such food is mixed with other food, that food also becomes faulty and is called *pootikarma* food The house where such food is cooked is believed to be affected with such a fault for three days. Therefore, an ascetic is not allowed to accept food from such a house for four days

Ahadam—food that is brought to the place of stay of an ascetic and given to him

Ajjhoyar—food of which the quantity has been increased during cooking in anticipation of an ascetic's arrival

Pamiccham—food that is taken on loan for the specific purpose of giving to ascetics

Meesjayam—food cooked jointly for family and ascetics.

५६ : उग्गमं से अ पुच्छिज्जा कस्सट्ठा केण वा कडं।
सुच्चा निस्संकियं सुद्धं पडिगाहिज्ज संजए॥

पूर्वोक्त आहारादि के विषय में शंका हो जाने पर साधु दाता से उस आहार की उत्पत्ति के विषय में पूछे कि यह आहार किसलिए और किसने तैयार किया है? इस प्रकार पूछने पर यदि वह आहार शंकारहित एवं निर्दोष जान पड़े तो साधु ग्रहण करे अन्यथा नहीं॥५६॥

56. If an ascetic has some doubt about any of these types of food, he should ask about its source as well as by whom and for whom it was cooked. When informed, if he is convinced that the food is faultless he may accept, otherwise not.

५७ : असणं पाणगं वावि खाइमं साइमं तहा।
पुप्फेसु हुज्ज उम्मीसं बीएसु हरिएसु वा॥

५८ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

यदि आहार-पानी, खाद्य तथा स्वाद्य पदार्थ पुष्पों से, बीजों से तथा वनस्पति आदि मे मिश्रित हों तो वह अन्न-पानी साधु के ग्रहण करने योग्य नहीं होता है। अतः देने वाली स्त्री से साधु स्पष्ट कह दे कि यह पदार्थ मुझे लेना नहीं कल्पता है॥५७-५८॥

57, 58. If some food is mixed with flowers, seeds or other vegetables, then it is not proper for a *shraman* to accept such food. So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food.

विशेषार्थ :

श्लोक ५७, ५८. उम्मीस–उन्मिश्र–साधु को देने योग्य शुद्ध आहार को न देने योग्य अशुद्ध आहार (सचित्त या मिश्र) में मिलाकर दिया जाये अथवा जो अचित्त आहार सहज ही सचित्त अथवा मिश्र आहार से मिला हुआ हो उसे उन्मिश्र कहते हैं।

ELABORATION :

(57, 58) ***Ummisam***—a faultless food mixed with impure or *sachit* food naturally or intentionally.

५९ : असणं पाणगं वावि खाइमं साइमं तहा।
उदगम्मि हुज्ज निक्खित्तं उत्तिंग पणगेसु वा॥

६० : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

अन्न-पानी, खाद्य तथा स्वाद्य पदार्थ, यदि सचित्त जल पर या कीड़ी आदि के नगर पर या फफूँद पर रखे हुए हों–तो वे पदार्थ साधु को अग्राह्य होते हैं। अतः मुनि देने वाली स्त्री से कह दे कि यह आहार मुझे ग्रहण करना योग्य नहीं है, मैं नहीं ले सकता॥५९-६०॥

59, 60. If the food being offered to an ascetic is lying where it is in direct or indirect contact with *sachit* water, an anthill or moss, it is not proper for a *shraman* to accept such food. So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food

विशेषार्थ :

श्लोक ५९, ६०. उत्तिंग–कीडी आदि जीवो के नगर।

पणगेसु–पनक–काई या फफूँद।

निक्खित्त–निक्षिप्त–रखा हुआ। यह दो प्रकार का होता है–(१) अनन्तर निक्षिप्त–जहाँ जल आदि से सीधा सम्पर्क बने। जैसे–मक्खन को पानी मे रखना। (२) परम्पर निक्षिप्त–जहाँ जल आदि से सीधा सम्पर्क न बने। जैसे–दही आदि के बर्तन को चीटी आदि जीवों से सुरक्षित रखने के लिए पानी से भरे बडे बर्तन में रखना।

ELABORATION :

(59, 60) ***Utting***—abode of ants or other such insects; anthill.

Panagesu—moss; mildew.

Nikkhittam—placed in contact with. This contact is of two types—**(1) Direct contact,** such as butter being stored in a bowl of water **(2) Indirect contact,** as when a bowl containing food is placed in a larger bowl containing water in order to protect it from insects

६१ : असणं पाणगं वावि खाइमं साइमं तहा।
तेउम्मि हुज्ज निक्खित्तं तं च संघट्टिया दए॥
६२ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

यदि अशन आदि चारों प्रकार का आहार अग्नि पर रखा हुआ हो अथवा दाता अग्नि से संपर्क करके देवे तो साधु को वह पदार्थ नहीं लेना चाहिये और दाता से कह देना चाहिये कि यह आहार मेरे ग्रहण करने योग्य नहीं है अतः मैं नहीं ले सकता॥६१-६२॥

61, 62. If the food is placed on fire or the donor gives some food after touching a thing in contact with fire, then it is not proper for a *shraman* to accept such food. So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food

विशेषार्थ :

श्लोक ६१, ६२ संघट्टिया–संघट्य–सम्पर्क करके अथवा छूकर। साधु को भिक्षा दूँ उतने समय मे रोटी आदि जल न जाय, दूध आदि उफन न जाय, यह सोचकर रोटी आदि को पलटकर, दूध आदि को नीचे उतारकर अथवा किसी कारण से जलते ईंधन को छूकर बहराना संघट्य दोष है।

ELABORATION :

(61, 62) ***Sanghattiya***—touching. Shifting or taking a thing off from a fire or also touching the other end of burning wood or stirring embers, in order to facilitate giving alms to an ascetic This

is generally done by a cook to avoid over-cooking while he or she is attending to the ascetic.

६३ : एवं उस्सक्किया ओसक्किया उज्जालिया पज्जालिया निव्वाविया।
उस्सिंचिया निस्सिंचिया ओवत्तिया ओयारिया दए॥

६४ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

इसी प्रकार यदि कोई दाता चूल्हे में ईंधन डालकर, चूल्हे में से ईंधन निकालकर, चूल्हे को सुलगाकर, चूल्हे की आँच बढ़ाकर, जलती हुई अग्नि को बुझाकर, अग्नि पर रखे पात्र में से थोड़ा-सा अन्न निकालकर, अग्नि पर स्थित पात्र में जल का छींटा डालकर, अग्नि पर रखे अन्न को अन्य पात्र में उँडेलकर तथा अग्नि पर से पात्र उतारकर साधु को आहार-पानी देवे तो वह आहार-पानी साधु के ग्रहण करने योग्य नहीं होता, अतः साधु देने वाली से कह दे कि यह आहार मेरे अयोग्य है, इसलिये मैं नहीं ले सकता॥६३-६४॥

63, 64. In the same way if a donor proceeds to give alms to an ascetic immediately after putting fuel into a stove, taking fuel out from a stove, igniting a stove, stepping up the flame of a stove, extinguishing a fire, taking out some food from the cooking pot on the stove, sprinkling water into the cooking pot on the fire, pouring the food from the cooking pot on the fire into other pot or shifting the cooking pot from the fire, it is not proper for a *shraman* to accept such food. So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food.

६५ : हुज्ज कट्ठं सिलं वा वि इट्टालं वा वि एगया।
ठवियं संकमट्ठाए तं च होज्ज चलाचलं॥

६६ : न तेण भिक्खू गच्छेज्जा दिट्ठो तत्थ असंजमो।
गंभीरं झुसिरं चेव सव्विंदियसमाहिए॥

वर्षा आदि के समय रास्ते में काठ, शिला व ईंट आदि वस्तु (जाने-आने के) लिए रखी हुई हों और वे अस्थिर हों, हिलती हों तो साधु उस मार्ग से गमनागमन न करे, क्योंकि ऐसा करने से असंयम की संभावना है। इसी प्रकार सर्वेन्द्रिय-समाहित साधु अन्य अन्धकारमय और पोले मार्गों से भी गमनागमन न करे॥६५-६६॥

65, 66. If, during the rainy season, things like wooden planks, boulders or bricks placed on the path to help movement are loosely placed or shaky, an ascetic should not use that path, as there are chances of forced indiscipline. Similarly a disciplined *shraman* should also avoid a dark or loose and spongy path.

६७ : निस्सेणिं फलगं पीढं उस्सवित्ताणमारुहे।
मंचं कीलं च पासायं समणट्ठाए एव दावए॥

यदि कोई दाता केवल साधु को आहार देने के लिये निश्रेणी (निसैनी/सीढ़ी), फलक (तख्ता), पीठ (पीढ़ा, चौकी), मंच और कील खंभा के सहारे या इन पर चढ़कर प्रासाद पर ऊँचा चढे और साधु को आहार दे तो साधु वह आहार न ले॥६७॥

67. If a donor climbs a ladder, a bench, a stool, a table or raises himself using a peg or a pillar in order to get food for an ascetic, the *shraman* should not accept such food.

६८ : दुरूहमाणी पवडेज्जा हत्थं पायं व लूसए।
पुढवि जीवे वि हिंसेज्जा जे य तन्निस्सिया जगे॥

६९ : एयारिसे महादोसे जाणिऊण महेसिणो।
तम्हा मालोहडं भिक्खं न पडिगेण्हंति संजया॥

पूर्वोक्त निश्रेणी आदि द्वारा दुःखपूर्वक ऊपर चढ़ने से दाता के गिर जाने, हाथ-पैर आदि अंग-भंग हो जाने की तथा पृथ्वीकायिक एवं पृथ्वीकाय आश्रित

जीवों की विराधना हो जाने की आशंका जुड़ी रहती है। संयतात्मा महामुनि, पूर्वोक्त महादोषों को अच्छी प्रकार से जानकर कदापि मालापहृत अर्थात् ऊपर के मकान से सीढ़ी आदि से उतारकर लाई हुई भिक्षा ग्रहण नहीं करते॥६८-६९॥

68, 69. There is a chance that such climbing might be painful or that a fall might occur during climbing resulting in hurt or the fracture of bones or harm to earth bodied and other beings. The disciplined *shramans*, being well aware of these gross faults, do not accept such food brought down from higher places.

विशेषार्थ

श्लोक ६८, ६९. **मालोहड–मालापहृत**–अन्य स्थल/स्तर से लाया हुआ। इस दोष के तीन प्रकार है–(१) **ऊर्ध्व-मालापहृत**–ऊपर से उतारा हुआ, (२) **अधो-मालापहृत**–तलघर से लाया हुआ, तथा (३) **तिर्यग्-मालापहृत**–ऊँडे बर्तन या कोठे आदि मे से झुककर निकाला हुआ। टीकाकार का मत है कि यहाँ केवल ऊर्ध्व-मालापहृत का ही निषेध है। (दसवेआलिय, पृ. २४२) आचार्यश्री आत्माराम जी म. के मतानुसार यह उत्सर्ग सूत्र है। अपवाद मार्ग में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का विचार कर श्रमण उचित आचरण करे। (दशवै , पृ २०८)

ELABORATION :

(68, 69) ***Malohadam***—brought from a different level This is of three types—(1) brought down from a higher level, (2) brought up from a lower level, and 3. taken out from a deep vessel by bending into it The commentator infers that here the negation is only for the things brought down from higher level. (*Dashavaikalik* by Acharya Mahaprajna, page 242) According to Acharyashri Atmaram ji M. this is an optional rule meant only for the ascetics at a higher level of discipline The ordinary ascetic should take a decision based on the prevailing situation. (*Dashavaikalik Sutra,* page 208)

७० : कंदं मूलं पलंबं वा आमं छिन्नं व सन्निरं।
तुंबागं सिंगबेरं च आमगं परिवज्जए॥

कन्द, मूल, फल, पत्रशाक, तुम्बक और अदरक आदि यदि कच्चे हों और केवल छीले या काटे हुए हों, अर्थात् आग में पकाकर पूर्णतया प्रासुक न किये हों तो आत्मार्थी मुनि उन्हें कदापि ग्रहण न करे ॥७०॥

70. An ascetic should never accept freshly cut or peeled bulbs, roots, fruits, leafy vegetables, cucumber, ginger, etc., that are not properly cooked and made *achit*.

७१ : तहेव सत्तुचुन्नाइं कोलचुन्नाइं आवणे।
सक्कुलिं फाणियं पूयं अन्नं वा वि तहाविहं॥

७२ : विक्कायमाणं पसढं रएण परिफासियं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

इसी तरह बाजार में दुकानों पर बिक्री के लिये सजाए हुए सचित्त रज से मिश्रित सत्तू-चूर्ण, बेर-चूर्ण, तिल, पापडी, राब या ढीला गुड़, पूआ तथा अन्य इसी प्रकार के खाद्य पदार्थ यदि साधु को मिलते हों तो साधु न ले और देने वाले से कह दे कि ये पदार्थ मुझे लेना नहीं कल्पता ॥७१-७२॥

71, 72. In the same way, if an ascetic is offered eatables like *sattu* powder, berry powder, sesame, seed cake, jaggery, *puwa*, etc., displayed in shops for sale and contaminated with *sachit* dust, he should refuse and tell the donor that he is not allowed to accept such food.

७३ : बहु-अट्ठियं पुग्गलं अणिमिसं वा बहु-कंटयं।
अत्थियं तिंदुयं बिल्लं उच्छुखंडं व सिंबलिं॥

७४ : अप्पे सिया भोयणजाए बहु-उज्झिय-धम्मिए।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

इसी प्रकार बहुत अधिक गुठलियों वाले बीजों सहित, गूदे वाले फल, अनिमिष (-वर्जित, न खाने योग्य) फल, बहुत काँटों वाले फल, अस्थिक

(एकफली विशेष) फल, तिन्दुक (तेंदू) फल, बिल्व (बेल) फल, गन्ने की गनेरियाँ तथा फलियाँ आदि ऐसे पदार्थ जिनमें खाने लायक भाग तो थोड़ा हो और फेंकने लायक भाग अधिक हो तो साधु ऐसा आहार ग्रहण न करे और दाता से स्पष्ट कह दे कि ये पदार्थ मेरे योग्य नहीं, अत: मैं नहीं ले सकता॥७३-७४॥

73, 74. If an ascetic is offered fruits with many seeds, scales, thorns, *asthik*, *tinduk* and *bilva* fruits, sugar-cane slices, pods or other such fruits or vegetables with little to eat and much to throw, he should refuse and tell the donor that he is not allowed to accept such food.

विशेषार्थ :

श्लोक ७३, ७४. पुग्गल-पुद्गल-जैन-साहित्य में यह एक विशिष्ट तथा बहु-प्रयुक्त शब्द है। सूक्ष्म कणो के ऐसे समूह को जो सगठित होने के कारण अपेक्षाकृत स्थूल बने-उसे पुद्गल कहते है। यहाँ एक समूह रूप मे-फल (गुठली, गूदा, छिलका, जैसे-आम, केला आदि), फल का गूदा बीज, रेशे, छिलका (त्वचा) दाने, जैसे-अनार, नारंगी) आदि अर्थों मे प्रयोग किया गया है।

इस श्लोक में आये हुए बहुअट्ठिय तथा अणिमिसं शब्द माँसपरक अर्थ की भ्रान्ति पैदा करते है। अनेक विद्वान् इस भ्रान्ति के शिकार हो चुके है। आचार्यश्री आत्मागम जी म ने अपनी असंदिग्ध भाषा-शैली में अनिमिस का स्पष्ट अर्थ वनस्पति फल-विशेष किया है। उनका तर्क है कि श्लोक के अगले चरण में बेल, ईख आदि फलों का स्पष्ट ही उल्लेख है अत एक ही प्रकरण मे फल के साथ मॉस का अर्थ करना प्रकरण विरुद्ध है। फिर यहाँ मुनि के लिए निर्दोष-भिक्षा का प्रकरण चल रहा है, वहाँ पर माँस का विधान कैसे हो सकता है ? बहुत-सी वनस्पतियाँ ऐसी है जिनके नाम पशु, पक्षी तथा मनुष्यों के नाम पर होते है, जैसे-ब्राह्मणी, कुमारी, मार्जारी, कापोती। आयुर्वेद मे ये फल व वनस्पति है। इनका अर्थ फलपरक करने के स्थान पर यदि मानव व पशु-पक्षी कर देगे तो अनर्थ हो सकता है। (देखें-दशवैकालिक आचार्यश्री आत्माराम जी. म., पृ २१२)

ELABORATION :

(73, 74) ***Puggalam***—this is a term much used in Jain literature It means a comparatively large cluster made up of minute particles. Here it has been used for gross things made up of

comparatively smaller constituents A fruit is made up of skin, pith, seed, juice, etc.

In these verses words like *bahuatthiyam* and *animisam* have dual meanings. The other meanings are connected with meat products This has confused many scholars who have translated these terms as 'lump of flesh with many bone pieces' and 'fish with many scales and thorns'. Acharyashri Atmaram ji M. has emphatically denied this and has translated them as specific scaly and thorny fruits and vegetables He argues that the following part of the verse lists things of plant origin, so a reference to meat would be against the conventional style of not mixing categories. The entire chapter is about the faults in the things otherwise acceptable to ascetics and so meat or things of animal origin are completely beyond the scope of this chapter Moreover, there are numerous vegetables having the names of animals merely because of some superficial similarities in attributes. Some examples from *Ayurveda* are—*Brahmani* (Brahmin lady), *Kumari* (young woman), *Marjari* (cat), and *Kapoti* (pigeon) It would be wrong and confusing to translate them literally without seeing the context. (*Dashavaikalik Sutra* by Acharyashri Atmaram ji M , page 212)

७५ : तहेवुच्चावयं पाणं अदुवा वारधोअणं।
संसेइमं चाउलोदगं अहुणाधोअं विवज्जए॥

जिस प्रकार अशन भोजन के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार उच्च–(स्वादिष्ट या श्रेष्ठ जैसे द्राक्षादि का पानी) और अवच (बेस्वाद या खराब कांजी आदि का पानी) जल, गुड के थड़े की धोवन, आटे की धोवन, चावलों की धोवन का पानी इत्यादि तत्काल की धोवन का पानी मुनि कदापि ग्रहण न करे।।७५।।

75. As it is said about solid food, so the ascetic should also never accept high quality fluids (tasty and nutritious drinks like grape juice) and low quality fluids (drinks with bad taste like stale mustard water), wash of jaggery vessels, flour wash, rice wash and any other fresh wash.

विशेषार्थ :

श्लोक ७५. उच्चावय-उच्चावच-ऊँचा और नीचा अर्थात् जिसके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श श्रेष्ठ हो वह ऊँचा और जिसके ये गुण श्रेष्ठ न हों वह नीचा।

अहुणाधोअं-अधुना-धौत-तत्काल का धोवन। आचारांग चूला के अनुसार अप्रासुक जल के चार लक्षण हैं। अनाम्ल या जिसका स्वाद नहीं बदला हो, अव्युत्क्रान्त अर्थात् जिसकी गंध नहीं बदली हो, अपरिणत अर्थात् जिसका रंग न बदला हो, अविध्वस्त अर्थात् विरोधी शस्त्र के द्वारा जिसके जीव ध्वस्त न हुए हों-वह तत्काल का धोवन होता है और सजीव या अप्रासुक होने के कारण साधु को लेना नहीं कल्पता।

ELABORATION :

(75) ***Uchawayam***—high or low, a thing with good attributes of colour, smell, taste and touch is high quality and that with bad attributes is low quality

Ahunadhoyam—fresh wash. According to *Acharang Chula* there are four signs of *sachit* water or fluid—without any change in normal taste; without any change in normal smell; without any change in normal color, and not rendered *achit* (lifeless or made free of living organisms) by mixing some antidote as explained in chapter 4 These are the qualities of a fresh wash And as it is *sachit* it is not acceptable to an ascetic.

७६ : जं जाणेज्ज चिराधोअं मईए दंसणेण वा।
पडिपुच्छिऊण सोच्चा वा जं च निस्संकिअं भवे॥

यदि साधु स्वयं की विवेक-बुद्धि से, प्रत्यक्ष देखकर, दातार से पूछकर या सुनकर कि "यह जल चिरकाल का बहुत देर का है" ऐसा शंकारहित शुद्ध निश्चय हो जाने पर मुनि वह धोवन पानी ग्रहण कर ले॥७६॥

76. When an ascetic ascertains beyond any doubt by his own experience, by proper inspection, by asking the donor, or by hearing that this wash was prepared long back, the ascetic may accept that wash water.

विशेषार्थ :

श्लोक ७६ मईए–मत्या–मति, बुद्धि, ज्ञान अथवा तर्क की कसौटी पर खरा उतरे वह। इसमें परम्परागत अनुभव का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जैसे–प्रायः धोवन कब और कैसे तैयार होता है? ग्रहण करने के समय उसे तैयार हुए कितना समय बीत चुका है? आदि।

दंसणेण–देख-जाँचकर। सामान्य तथा धोवन के जल आदि को देख-जाँचकर निर्णय करना कि कल्पता है या नहीं।

पडिपुच्छिऊण–पूछकर–दानदाता से सम्यक् जानकारी प्राप्त कर।

सुच्चा–सुनकर। शका समाधान के सभी माध्यमों का उल्लेख साधु को अपनी मर्यादा-पालन मे पूर्णतया स्थिर रहने के लिए किया है।

ELABORATION :

(76) ***Maiye***—that which has been examined by wisdom, knowledge, experience and logic, and found acceptable. Traditional experience plays an important role here Information such as when or how a wash is prepared, or how much time must elapse before it becomes acceptable, is very helpful.

Damsanena—by seeing and examining, to decide if it is acceptable or not by seeing and examining ordinary or wash water.

Padipucchiun—after asking, after getting all and correct information from the doner

Succha—after hearing or listening. The mention of all possible means of examining is to place emphasis on being steadfast in observing discipline.

७७ : अजीवं परिणयं नच्चा पडिगाहिज्ज संजए।
अह संकियं भवेज्जा आसाइत्ताण रोयए॥

साधु, अजीव भावपरिणत अर्थात् जीवरहित पूर्ण प्रासुक जल ही ग्रहण करे। यदि किसी अन्य प्रासुक जल के विषय में यह शंका हो जाय कि यह जल मेरी प्रकृति या स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं पड़ेगा तो चखकर लेने-न लेने का निर्णय करे॥७७॥

77. An ascetic should accept only the water that has been rendered completely free of living organisms. If there is some doubt about some *achit* water, namely that it could be unsuitable to his system or health, he should decide to accept it only after tasting.

विशेषार्थ

श्लोक ७७. सकिय भविज्ज-शंका हो जाने पर। शका के विषय मे आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज स्पष्ट करते है कि यदि यह शंका हो जाय कि यह जल दु स्वाद-विरस-अरुचिकर है अत· यह मेरी शारीरिक प्रकृति के अनुकूल नहीं होगा तो उस जल को चखकर अपनी शंका मिटानी चाहिये। शरीर की उपमा यत्र से दी जाती है। यदि यह शरीर यत्र अव्यवस्थित हो जाता है अर्थात् अस्वस्थ हो जाता है तो आत्मा के उत्थान के लिए धार्मिक क्रियाएँ करने में असमर्थ हो जाता है। अत साधु को खान-पान के विषय मे सदा सतर्क रहना चाहिए। चखकर शका मिटाना इस सावधानी का ही एक अग है,अत दूषण नहीं है।

ELABORATION :

(77) ***Sankiyam bhavijja***—if there is any doubt; Acharyashri Atmaram ji M. has given importance to removing even the slightest doubt before accepting He equates the body to a machine If this machine is disturbed, it will be unable to perform necessary tasks for spiritual uplift So an ascetic should be very careful about matters of food intake. Tasting in order to remove doubt is a part of this caution

७८ : थोवमासायणट्ठाए हत्थगम्मि दलाहि मे।
मा मे अच्चंबिलं पूइं नालं तण्हं विणित्तए॥

(साधु दाता मे कहे) हे बहन ! चखने के लिये थोड़ा-सा पानी मुझे हाथ में दे। क्योंकि बहुत खट्टा, सड़ा हुआ, प्यास नहीं मिटाने वाला जल मुझे अनुकूल नहीं, अतः वह ग्रहण योग्य नहीं है॥७८॥

78. (The ascetic should address the donor,) "Sister! Please pour a little water in my palm for tasting, because excessively

sour and stale water, or that which cannot quench my thirst, does not suit me and so it is unacceptable.

विशेषार्थ :

श्लोक ७८. अच्चंबिल–बहुत खट्टा। आगम रचना काल मे साधुओं को यवोदक, तुषोदक, सौवीर अरनाल आदि खट्टे जल ही अधिक मात्रा में प्राप्त होते थे। वे कांजी की तरह खट्टे होते थे। अधिक समय के होने पर उनकी खटास बढ़ जाती थी तथा बदबू भी पैदा हो जाती थी, ऐसे जल से प्यास भी नहीं बुझती और वे स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक होते हैं। अतः उनका निषेध है। इस संदर्भ को आगे बढाते हुए आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज कहते है– "शंकित पदार्थ की उसी स्थान पर परीक्षा कर ले जिससे उसे फेंकना न पड़े। क्योंकि फेंकने मे प्राय: अयत्ना हो जाने की सभावना रहती है।"

ELABORATION :

(78) *Acchambilam*—extremely sour During the period when the *Agams* were written the ascetics mostly got sour fluids that included various types of wash-water. These used to be sour like mustard water. After preparing such water the sourness used to increase with lapse of time and it started giving a stink. Such water did not quench thirst and it also became toxic. That is why such water was prohibited. Acharyashri Atmaram ji M adds that when in doubt the thing should be examined at once and before taking it If examined after acceptance, it will have to be discarded This creates chances of carelessness in conduct and should be avoided

७९ : तं च अच्चंबिलं पूअं नालं तिण्हं विणित्तए।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

(साधु द्वारा मना करने पर भी) यदि दातार स्त्री आग्रह करके इस प्रकार का खट्टा, सडा हुआ, प्यास बुझाने के अयोग्य पानी देने लगे, तो साधु उस देने वाली बहन से स्पष्ट कह दे कि इस प्रकार का दूषित पानी मुझे ग्रहण करना नहीं कल्पता है॥७९॥

79. If, even after refusing, the donor insists on giving such sour, stale and flat water, the ascetic should emphatically

deny and explicitly state that such impure water is not acceptable to him.

८० : तं च होज्ज अकामेणं विमणेण पडिच्छिअं।
तं अप्पणा न पिबे नोवि अन्नस्स दावए॥

यदि पूर्वोक्त प्रकार के अग्राह्य पानी बिना इच्छा के और बिना मन के अर्थात् असावधानता से ग्रहण कर लिया हो, तो साधु का कर्त्तव्य है कि उस जल को न तो स्वयं पीवे और न दूसरों को पिलावे॥८०॥

80. If by chance he has unintentionally and unwillingly accepted such water due to the insistence of the donor, it is the duty of the ascetic neither to drink it himself nor give it to others to drink

८१ : एगंतमवक्कमित्ता अचित्तं पडिलेहिया।
जयं परिट्ठविज्जा परिट्ठप्प पडिक्कमे॥

किन्तु एकान्त स्थान पर जाकर, निर्दोष जीवरहित स्थान की प्रतिलेखना करके, यतनापूर्वक उस पानी को परठ दे (धीरे से फेक दे) और परठकर प्रतिक्रमण कर ले॥८१॥

81. Instead, he should go to some isolated place, find a proper place free of living organisms and carefully discard it After discarding it he should do the prescribed *Pratikraman* (critical review).

विशेषार्थ :

श्लोक ८१. अचित्तं–यहाँ अचित्त भूमिका संकेत है–दग्ध स्थान आदि शस्त्रोपहत भूमि तथा जिस भूमि पर लोगो का आवागमन होता है वह भूमि अचित्त होती है।

परिट्ठवेज्जा–परित्याग करना। परित्याग करने की विधि यह है कि एकान्त स्थान चुनकर, उसे भली प्रकार देख-जाँचकर, रजोहरण आदि से साफ कर धीरे-धीरे डाल देना।

पडिक्कम्मे–प्रतिक्रमण करना, वापस लौटना। परठने की क्रिया के साथ प्रतिक्रमण को स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री आत्माराम जी म. कहते हैं–"यद्यपि वृत्तिकार 'प्रतिक्रामेत'

क्रियापद के अर्थ में ईर्यापथिकाम् का ध्यान करे ऐसा बताते हैं। परन्तु प्रतिक्रामेत क्रियापद का अर्थ यहाँ पीछे हटना है अर्थात् परठकर 'वोसिरामि-वोसिरामि' कहना यही अर्थयुक्ति संगत लगता है। क्योंकि जब दैवसिक प्रतिक्रमण किया जाता है तब दिन में लगे हुए सब अतिचारों की विधिपूर्वक आलोचना की ही जाती है।"

ELABORATION :

(81) ***Achittam***—free of living organisms; here it refers specifically to the earth or ground. The ground that has been disturbed by some instrument or by frequent movement of people is considered *achit*.

Paritthavejja—to discard or throw away. The process of discarding for ascetic is that he should select an isolated spot, inspect it properly for living organisms, sweep it with his broom to ensure the removal of any unseen insects and then slowly pour or throw the things he has to discard

Padikkamme—to retrace steps; to return; to do critical review; Acharyashri Atmaram ji M says that here this word does not mean critical review but just returning after throwing and uttering '*vosirami-vosirami*' (I am discarding, I am throwing). This is because the critical review of all the activities of the day is routinely done every evening and this activity will naturally be included in that

आहार कैसे करें?

८२ : सिआ य गोयरग्गगओ इच्छेज्जा परिभुत्तुयं।
कुट्ठगं भित्तिमूलं वा पडिलेहित्ताण फासुयं॥

८३ : अणुन्नवित्तु मेहावी पडिच्छन्नम्मि संवुडे।
हत्थगं संपमज्जित्ता तत्थ भुंजिज्ज संजए॥

भिक्षाचरी के लिये गाँव में गये हुए बुद्धिमान् मुनि को कदाचित् किसी कारणवश वहाँ पर ही भोजन करने की आवश्यकता हो जाय, तो वह सूने निर्जन-घर में अथवा किसी दीवार के पास प्रासुक शुद्ध भूमि की प्रतिलेखना

करके गृहस्थ की आज्ञा लेकर अपने शरीर के अवयवों का भली प्रकार से प्रमार्जन करके छायादार स्थान पर बैठकर उपयोगपूर्वक भोजन करे॥८२-८३॥

HOW TO EAT FOOD ?

82, 83. If an ascetic, who has gone into some village to seek alms, is for some reason forced to eat there only, he should find some proper and shaded spot in an isolated room or near a wall, inspect and clean the ground, seek permission from the owner, wipe clean his limbs, sit down and eat with discipline.

विशेषार्थ

श्लोक ८२, ८३. सामान्यतया साधु को गोचरी से वापस उपाश्रय में आकर भोजन करना चाहिये। परन्तु जो साधु दूसरे गाँव में भिक्षा लेने जावे और वह बालक, बूढ़ा, भूख से पीडित तपस्वी प्यासा आदि हो तो उपाश्रय में लौटने से पहले ही सीमित आहार कर सकता है यह ऐसी ही अपवाद-स्थिति के नियम हैं (श्लोक ८२-८६)।

भित्तिमूलं–दो घरों के बीच का भाग, दीवार की जड अथवा कोना।

अणुन्नवेत्तु–अनुज्ञाप्य–अनुज्ञा प्राप्त करने की विधि इस प्रकार है–"हे श्रावक ! तुम्हे धर्मलाभ है। मैं मुहूर्त्त भर यहाँ विश्राम करना चाहता हूँ"–साधु इस प्रकार कहे। ऐसा न कहे कि खाना-पीना चाहता हूँ, क्योंकि वैसा कहने से श्रावक कौतूहलवश वहाँ आने की चेष्टा कर सकता है।

हत्थग–हाथ मे रहा झाडने-पोछने का वस्त्र अथवा छोटा रजोहरण या पूँजनी। महत्त्वपूर्ण क्रिया प्रमार्जन की है, चाहे वह रजोहरण से किया जाय अथवा अन्य वस्त्र द्वारा। इसका उद्देश्य है शरीर पर पडे सूक्ष्म जीव तथा धूल आदि पदार्थ उतार दिये जावे और भोजन के समय शरीर शुद्ध तथा निराकुल रहे।

ELABORATION :

(82, 83) Normally a *shraman* should bring back the food to his place of stay (*upashraya*) and eat there only. However, if the *shraman* is a child, aged, extremely hungry and thirsty due to fasting or sick, he is allowed to eat out in limited quantity. These are the rules for exceptional circumstances (82 to 86).

Bhittimoolam—an alley between two houses; base of a wall; meeting point of two walls.

Anunnavettu—to seek permission; the prescribed process is to say—"O *Shravak*! May you be blessed with *dharma*! I want to rest here for some time." The ascetic should not say that he desires to eat his food there, because that might make the *shravak* curious enough to come to the spot while the ascetic is eating.

Hatthagam—the handkerchief-like square piece of cloth or a small brush like broom. The important thing is the act of cleaning, not the instrument of cleaning. The purpose of this cleaning is that, while eating, the body should be undisturbed, clean and free of dust or insects.

८४ : तत्थ से भुंजमाणस्स अट्ठिअं कंटओ सिया।
तण-कट्ठ-सक्करं वा वि अन्नं वा वि तहाविहं॥

८५ : तं उक्खिवित्तु न निक्खिवे आसएण न छड्डुए।
हत्थेण तं गहेऊण एगंतमवक्कमे॥

८६ : एगंतमवक्कमित्ता अचित्तं पडिलेहिआ।
जयं परिट्ठविज्जा परिट्ठप्प पडिक्कमे॥

पूर्व में कहे अनुसार योग्य स्थान में भोजन करते समय यदि साधु के आहार में गुठली, काँटा, तिनका, काठ, कंकर तथा अन्य भी इसी प्रकार के कोई पदार्थ आ जायें तो साधु उन पदार्थों को न तो हाथ से उठाकर इधर-उधर फेंके और न मुख से आवाज करता हुआ थूके। किन्तु उनको सँभालकर यतनापूर्वक हाथ में लेकर एकान्त जीवरहित स्थान में चला जावे और वहाँ अचित्त भूमि को देखभालकर परठने योग्य स्थान पर परठे और परठकर प्रतिक्रमण करे॥८४-८५-८६॥

84, 85, 86. *If, while eating at such a place, the ascetic finds* some hard seed, thorn, piece of straw or wood, pebble or any

other such thing, he should neither throw it around nor spit it producing noise. Instead, he should carefully take it in his hand, move to an isolated spot, inspect it properly for living organisms, carefully discard it and do *pratikraman*.

भिक्षा के दोषो की विशुद्धि

८७ : सिआ य भिक्खू इच्छिज्जा सेज्जमागम्म भोत्तुयं।
सपिंडपायमागम्म उंडुयं पडिलेहिया॥

यदि कोई विशेष कारण उपस्थित न हो और साधु यह चाहे कि उपाश्रय में जाकर ही भोजन करूँ, तो निर्दोष भिक्षा लिये हुए वह साधु अपने उपाश्रय में आवे और भोजन-स्थान की प्रतिलेखना करके लाये हुए भोजन की विशुद्धि करे॥८७॥

ATONING FOR THE FAULTS IN ALMS COLLECTION

87. Unless faced with some unforeseen situation, when the ascetic desires to return to his *upashraya* and eat, he should take the food, return to the *upashraya*, wipe clean the allotted spot, place the food and proceed to purify it (the ritual process of atoning for any faults committed during alms collection)

८८ : विणएणं पविसित्ता सगासे गुरुणो मुणी।
इरियावहियमायाय आगओ य पडिक्कमे॥

सर्वप्रथम विनयपूर्वक 'मत्थएण वंदामि' कहता हुआ उपाश्रय में प्रवेश करे और गुरुदेव या आचार्य के समीप आकर 'इरियावहियाए' सम्पूर्ण सूत्र को पढकर कायोत्सर्ग करे॥८८॥

88. First of all he should enter the *upashraya* uttering—***'Matthayena vandami'*** (I hereby offer my salutations). He should approach the guru, recite the complete ***iriyavahiyaye-sutra*** (a rite meant to atone for the faults committed while moving about), and stand in meditation.

८९ : आभोइत्ताण नीसेसं अइयारं जहक्कमं।
गमणागमणे चेव भत्तपाणे च संजए॥

गोचरी लेकर आने वाला मुनि कायोत्सर्ग में गमनागमन की क्रियां से तथा अन्न-पानी के बहरने से लगे हुए समस्त अतिचारों को कायोत्सर्ग में अनुक्रम से एक-एक करके स्मरण करके अपने हृदय में धारण करे॥८९॥

89. This ascetic who has brought alms should, while meditating, recall all the faults committed during every act of the process, beginning with going out to collect alms and ending with his return, all in the correct sequence.

९० : उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो अव्वक्खित्तेण चेयसा।
आलोए गुरुसगासे जं जहा गहिअं भवे॥

सरल स्वभावी एवं आकुलतारहित साधु जो पदार्थ जिस रूप से ग्रहण किया हो उसकी उसी रूप से स्थिर मन होकर गुरुदेवश्री के समक्ष आलोचना करे॥९०॥

90. The humble and serene *shraman* should critically review before the *guru* exactly what he got as alms and how he got it

९१ : न सम्ममालोइअं होज्जा पुव्विं पच्छा व जं कडं।
पुणो पडिक्कमे तस्स वोसट्ठो चिंतए इमं॥

जिन सूक्ष्म अतिचारो की सम्यक् प्रकार से आलोचना न हुई हो और जो पूर्व-कर्म तथा पश्चात्कर्म दोष लगे हों, उन्हें आगे पीछे-किये हों तो उनका फिर प्रतिक्रमण करे और पुनः कायोत्सर्ग करके चिंतन करे॥९१॥

91. The subtle faults or the preceding and consequential faults related to an action, that were overlooked or those that were misplaced in the sequence during the initial review, should be reviewed and meditated upon again.

विशेषार्थ :

श्लोक ८७-९१. इन श्लोकों में भिक्षा लेकर अपने स्थान पर आने के बाद की विधि बताई गई है।

ओघनिर्युक्ति में इस विषय में विस्तार के साथ बताया है-उपाश्रय में प्रवेश करते समय पहले रजोहरण से पाद-प्रमार्जन करे, फिर 'निस्सही' दो बार बोले। इस शब्द का आशय है कि "हे भगवन् ! मै जिस काम के लिए गया था उसे पूर्ण कर आ गया हूँ।" इसके बाद मत्थएणं वदामि नमो खमासमणाण-मस्तक झुकाकर मैं अपने क्षमाश्रमण गुरुजन को वन्दना करता हूँ। ऐसा विनयपूर्वक उच्चारण करता हुआ गुरुओं के निकट आये। गुरु के समक्ष भिक्षा की झोली को रखकर स्थिर-चित्त से इच्छाकारेण तथा तस्सोत्तरी-करणेण सूत्र को पढ़े फिर 'लोगस्स उज्जोयगरे' का ध्यान करे। इसके साथ ही कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग में पहले गमनागमन की क्रिया में लगे अतिचारों का चिन्तन-स्मरण करे और फिर अनुक्रम से आहार-ग्रहण करने मे लगे अतिचारों की विचारणा करे। आलोचना करने से भूलवश या अन्य कारण से लगे दोषों का निवेदन करने से हृदय में निष्कपटता आती है तथा दोषों की शुद्धि भी हो जाती है। (दशवै. आ. आत्मारामजी म., पृष्ठ २०५-२०९)

ELABORATION :

(87-91) In these verses in given the process of returning to the place of stay after alms-collection

This process has been mentioned in greater detail in *Ogh Niryukti*—On return, while entering the *upashraya,* first of all he should clean his feet with his broom He should utter '*nissahi*' twice (the gist of words uttered is—"O Lord! I have returned after completing the work I went for."). Then, while approaching the guru, he should humbly utter the following—Bowing my head I offer my salutations to my compassionate *guru* and elders He should place the bag of alms before the *guru,* and, composing himself, recite the prescribed texts such as *Icchakarena* and *Tassottari-karanena* After this he should start his meditation with *Logassa Ujjoyagare* (a panegyric) and proceed to review and atone as mentioned above The importance of this process is that such a critical review, before the *guru,* of one's own faults during some action nurtures purity of heart besides the required

atonement. (*Dashavaikalik Sutra* by Acharyashri Atmaram ji M., pages 205-209)

९२ : अहो जिणेहिं असावज्जा वित्ती साहूण देसिया।
मुक्खसाहणहेउस्स साहुदेहस्स धारणा॥

अहो, कितना अच्छा है कि तीर्थंकर देवों ने साधुओं के लिये पापरहित उस गोचरीरूपवृत्ति का उपदेश किया है, जो मोक्ष-साधना के कारणभूत साधु के शरीर को धारण करने में सहायक होती है॥९२॥

92. (At the end of the meditation he should think....) Oh! How good of the Tirthankars that they have prescribed this sinless process of seeking alms for the ascetic way of life; the process that maintains the body of the ascetic; the body which is the vehicle of spiritual practices directed at liberation.

९३ : नमुक्कारेण पारित्ता करित्ता जिणसंथवं।
सज्झायं पट्ठवित्ताणं वीसमेज्ज खणं मुणी॥

इस प्रकार आलोचना विचारणा के बाद साधु 'नमोअरिहंताणं' के पाठ से कायोत्सर्ग ध्यान करे। ध्यान के बाद जिन स्तुति करे अर्थात् 'लोगस्स' का पाठ बोले फिर सूत्र स्वाध्याय पूर्ण करके कुछ देर विश्राम करे॥९३॥

93. After all this he should once again commence meditation, silently reciting the *Namokar* mantra. He should then recite '*Logassa*' or some other panegyric of the Jina and start his normal studies. Later he should take some rest.

विशेषार्थ :

श्लोक ९३. करित्ता जिणसंथवं–पाठ का प्रचलित अर्थ तो 'लोगस्स उज्जोयगरे' पाठ से किया जाता है किन्तु भगवद् स्तुति की कोई भी २-४-५ गाथाएँ बोलने से भी जिन-संस्तव हो जाता है। आहार करने से पूर्व यह विधि करनी चाहिए। इस विधि से कई लाभ होते हैं। भिक्षाचरी के दोषो की विशुद्धि हो जाती है। स्वाध्याय आदि में समय लगने से गोचरी में हुआ श्रम भी दूर हो जाता है।

ELABORATION :

(93) ***Karitta Jinasanthavam***—The traditional meaning of this term is *'Logassa Ujjoyagare'*, but uttering 2-4-5 verses from any other panegyric of the Jina also serves the purpose. This ritual should be done before eating. This complete process detailed above besides atoning for faults also helps in pacifying any physical or mental agitation or exertion incurred during seeking alms

साधर्मिको को निमत्रण

९४ : वीसमंतो इमं चिंते हियमट्ठं लाभमट्ठिओ।
जइ मे अणुग्गहं कुज्जा साहू हुज्जामि तारिओ॥

कर्मनिर्जरारूप महान् लाभ की इच्छा करने वाला साधु, विश्राम करता हुआ अपने कल्याण के लिए यह विचार करे कि यदि कोई कृपालु मुनिवर मुझसे कुछ आहार लेने की कृपा अनुग्रह करे तो मैं समझूँ कि उन्होंने मुझे संसार-समुद्र से तार दिया॥९४॥

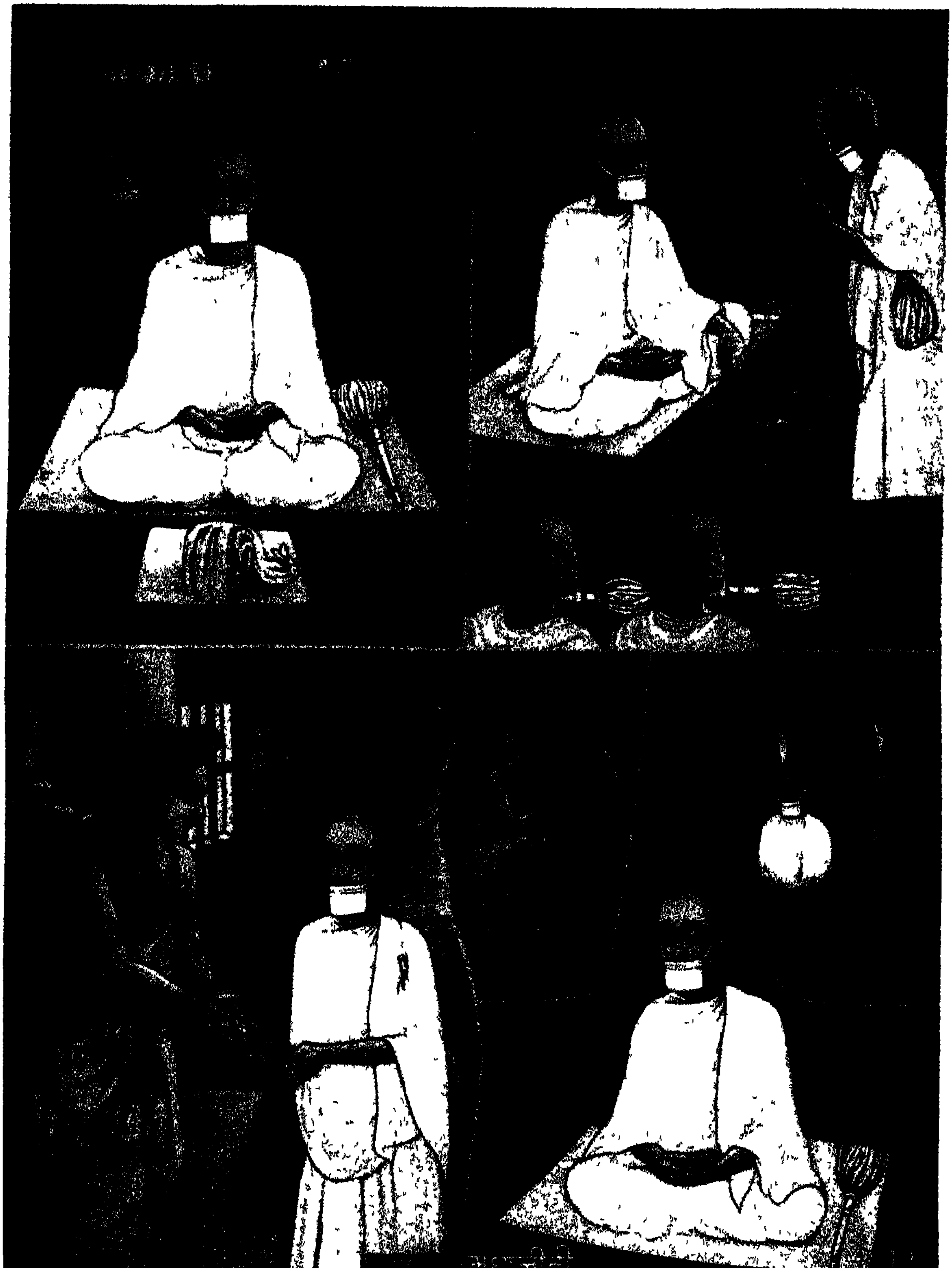
INVITING OTHER ASCETICS

94. An ascetic desirous of the boon of shedding of *karmas* should, while resting, think for his benefit thus—if some benevolent *shraman* obliges me by sharing the food I have brought, I will feel that he has helped me cross the ocean of mundane existence.

९५ : साहवो तो चिअत्तेण निमंतेज्ज जहक्कमं।
जइ तत्थ केइ इच्छिज्जा तेहिं सद्धिं तु भुंजए॥

गुरुदेव की आज्ञा मिलने पर साथ के साधुओं को बड़े-छोटे के क्रम से प्रीतिपूर्वक निमंत्रण करे। यदि निमंत्रणा स्वीकार करके कोई साधु भोजन करना चाहे तो प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ भोजन करे॥९५॥

95. On getting permission from the *guru* he should affectionately invite other ascetics in the order of protocol. If



प्राप्त भिक्षा में से सबको आमंत्रित करें
INVITE ALL TO SHARE THE ALMS

१. **नमोक्कारेण पारित्ता**–साधु भिक्षा लेकर अपने स्थान पर आकर पात्र को रख देवे। फिर शात चित्त से नमोक्कार मत्र आदि के पाठ से कायोत्सर्ग करे। गमनागमन मे लगे दोषो को शुद्ध करे। कुछ देर विश्राम करे। *(अध्ययन ५, श्लोक ९३)*

1 After collecting alms the *shraman* should return to his place of stay and put the pot on the ground He should compose himself and chant the *Namokar mantra,* followed by meditation He should atone for the possible sins committed during his movement outside, and finally take rest briefly. ***(Chapter 5, verse 93)***

२. **साहू हुज्जामि तारिओ**–फिर वह भोजन गुरुजनो को बतावे ओर गुरु एव अन्य साधर्मिको को प्रेमपूर्वक आमत्रण देवे–"कोई कृपालु मुनि मेरे भोजन में मे कुछ आहार लेकर मुझे तारे। निहाल करें।" *(अध्ययन ५, श्लोक ९४-९५)*

2 After rest he should show the food to his seniors and affectionately invite all his colleagues including the guru to share in the repast He should say "Someone oblige me by sharing my food and allowing me take one more step towards liberation."

(Chapter 5, verses 94-95)

३. **मुहालद्धं महाजीवी**–साधु को भिक्षा देने वाला गृहस्थ मुधादायी अर्थात् नि स्वार्थ बुद्धि से देने वाला हो और लेने वाला साधु भी मुधाजीवी–केवल सयम यात्रा निर्वाह के लिए भिक्षा लेवे। वह विचार करे–"जैसे कोई गाडीवान अपनी गाडी के पहियो को तेल आदि देकर उसे चलने लायक रखता है, वैसे ही मै अपनी शरीर गाडी को भोजन का तेल पानी देता हूँ–**अक्खोवंजणलेवाणुभूय।**"

(भगवती सूत्र ७/१-२५)

3 The householder giving alms to an ascetic should be unselfish in this act. The ascetic should also take the alms with the sole aim of sustenance on the spiritual path. He should think to himself "As a driver oils the wheels of his chariot to keep it fit for the road, so do I oil with food the chariot that is my body" *(Bhagavati Sutra 7/1-25)*

ऐसे मुधादायी गृहस्थ और मुधाजीवी साधु दोनों ही सद्गति को प्राप्त करते है।

Such an unselfish householder and ascetic will both meet with a good end.

any of them accepts the invitation, he should eat the food happily with the guest.

९६ : अह कोइ न इच्छिज्जा तओ भुंजिज्ज एक्कओ।
आलोए भायणे साहू जयं अपरिसाडियं॥

यदि बार-बार आग्रहपूर्वक निमंत्रण देने पर भी कोई साधु भोजन करने के लिये तैयार न हो तो फिर मुनि अकेला ही प्रकाशमय खुले पात्र में (चौड़े मुँह वाला पात्र), यतनापूर्वक इधर-उधर बिना बिखेरे भोजन करे॥९६॥

96. If none of the ascetics is interested in sharing his food even after this request, he should eat alone from a wide and open pot carefully and without splattering around.

९७ : तित्तगं व कडुअं व कसायं अंबिलं व महुरं लवणं वा।
एअ लद्धमन्नट्ठ पउत्तं महुघयं व भुंजिज्ज संजए॥

संयमी साधु वही भोजन ग्रहण करे जो गृहस्थ ने अपने लिए बनाया हो और जो आगम में बताई विधि से लिया हुआ हो। फिर चाहे वह तीखा हो, कड़वा हो, कषैला हो, खट्टा हो, मीठा हो, खारा हो, चाहे भोजन कैसा ही हो उसी को मधु-घृत के समान (रसयुक्त) मानता हुआ प्रसन्नतापूर्वक खावे॥९७॥

97. The disciplined *shraman* should eat only that food which a householder has prepared for himself and has been collected conforming to the procedure mentioned in *Agams*. He should eat it happily, considering it to be good and tasty, like butter and honey, irrespective of the fact that it is hot, bitter, astringent, sour, sweet or salty.

९८ : अरसं विरसं वा वि सूइयं वा असूइयं।
उल्लं वा जइ वा सुक्कं मन्थु-कुम्मास-भोयणं॥

९९ : उप्पण्णं नाइहीलिज्जा अप्पं वा बहु फासुयं।
मुहालद्धं मुहाजीवी भुंजिज्जा दोसवज्जिअं॥

आत्मार्थी मुधाजीवी (धर्म के लिए जीने वाला) साधु आगमोक्त विधि से प्राप्त अरस, विरस, सूचित, असूचित, आर्द्र, शुष्क तथा बैर का चूर्ण, मूंग-उड़द के बाकले आदि किसी भी प्रकार के निकृष्ट भोजन की घृणा से निन्दा न करे। थोड़ा या बहुत जो भी प्राप्त हुआ हो, बिना किसी ननुनच के उसी से संतुष्ट रहे। प्राप्त वस्तु की अवहेलना न करे। अस्तु मुधाजीवी साधु को तो जो आहार मिले वह मुधालब्ध (निःस्वार्थ वृत्ति) से प्राप्त और प्रासुक होना चाहिये, उसे ही संयोजनादि दोषों का वर्जन करता हुआ निःस्पृहभाव से खा लेवे॥९८-९९॥

98, 99. An ascetic who is a spiritualist and *mudhajivi* should not condemn with aversion any food collected in the prescribed manner, no matter if it is with or without taste, flavor, richness and other qualities. He should be content with what little or much he gets without any feeling of annoyance. He should not belittle what he gets. Thus, a *mudhajivi* ascetic should eat, with a detached attitude, whatever acceptable food he has collected without yearning. While eating he should avoid faults like mixing anything to improve taste.

विशेषार्थ :

श्लोक ९८, ९९. अरसं-अरस-संस्काररहित या बघाररहित भोजन; बेस्वाद।

विरस-विरस-जिसका स्वाद बिगड गया हो, बासी आदि।

सूइयं-व्यंजनादि से युक्त भोजन; मसालेदार; चटपटा।

उल्ल-आर्द्र-तरी वाला आहार-जिसमें अधिक घी, तेल व मसाला हो।

सुक्क-शुष्क-आर्द्र का विपरीत।

मंथु-मन्थु-बेर का चूर्ण, अन्य प्रकार के चूर्ण या सत्तू।

कुम्मास-कुल्माष-उबले हुए उड़द, मूँग आदि के बाकले; यव-मास आदि अर्थात् जैसा भी आहार भिक्षा मे प्राप्त हुआ हो उसे इस प्रकार उदर में डाले जैसे कोई गाडीवान अपनी गाडी चलाने के लिए उसके पहियों को तेल आदि लगाता हो। (देखे चित्र संख्या १२)

मुहालद्ध-मुधालब्ध-बिना किसी स्वार्थभाव के मिला अर्थात् उपकार, मंत्र, तंत्र और औषधि के द्वारा हित-सम्पादन के बिना मिला हुआ पवित्र आहार।

मुहाजीवी-मुधाजीवी-जो अपनी पूर्व जाति, कुल, व्यवसाय, प्रसिद्धि आदि के सहारे नहीं जीता हो तथा प्रतिफल देने की भावना रखे बिना जैसा आहार मिले उससे जीवन यापन करने वाला अनासक्तभाव से जीने वाला निस्पृह त्यागी। मुधाजीवी के विषय में आचार्य महाप्रज्ञजी ने एक प्राचीन दृष्टान्त उद्धृत किया है। जिससे प्रस्तुत विषय अधिक स्पष्ट होता है। दृष्टान्त इस प्रकार है-

एक राजा था। एक दिन उसके मन में विचार आया कि 'सभी लोग अपने-अपने धर्म की प्रशंसा करते हैं और उसको मोक्ष का साधन बताते हैं अतः कौन-सा धर्म अच्छा है उसकी परीक्षा करनी चाहिए। धर्म की पहचान उनके गुरु से ही होगी। वही सच्चा गुरु है जो निःस्वार्थ भिक्षाजीवी है। उसी का धर्म सर्वश्रेष्ठ होगा।' ऐसा सोच उसने अपने नौकरो से घोषणा कराई कि राजा मोदकों का दान देना चाहता है। राजा की मोदक-दान की बात सुन अनेक कार्पटिक आदि वहाँ दान लेने आये। राजा ने दान के इच्छुक उन एकत्र कार्पटिक आदि से पूछा-"आप लोग अपना जीवन-निर्वाह किस तरह करते हैं?" उपस्थित भिक्षुओं मे से एक ने कहा-"मैं मुख से निर्वाह करता हूँ।" दूसरे ने कहा-"मैं पैरों से निर्वाह करता हूँ।" तीसरे ने कहा-"मैं हाथो से निर्वाह करता हूँ।" चौथे ने कहा-"मैं लोकानुग्रह से निर्वाह करता हूँ।" पाँचवें ने कहा-"मेरा क्या निर्वाह? मैं मुधाजीवी हूँ।"

राजा ने कहा-"आप लोगो के उत्तर को मैं अच्छी तरह नहीं समझ सका अतः इसका स्पष्टीकरण करें।"

तब पहले भिक्षु ने कहा-"मैं कथक हूँ, कथा कहकर अपना निर्वाह करता हूँ, अतः मैं मुख से निर्वाह करता हूँ।" दूसरे ने कहा-"मैं सन्देश पहुँचाता हूँ, लेखवाहक हूँ, अतः पैरों से निर्वाह करता हूँ।" तीसरे ने कहा-"मै लेखक हूँ, अतः हाथ से निर्वाह करता हूँ।" चौथे ने कहा-"मै लोगों का अनुग्रह प्राप्त कर निर्वाह करता हूँ।" पाँचवे ने कहा-"मैं संसार से विरक्त निर्ग्रन्थ हूँ। संयम-निर्वाह के हेतु निःस्वार्थ बुद्धि से लेता हूँ। मै आहार आदि के लिए किसी की अधीनता स्वीकार नहीं करता, अतः मै मुधाजीवी हूँ।" इस पर राजा ने कहा-"वास्तव मे आप ही सच्चे साधु हैं।" राजा उस साधु से प्रतिबोध पाकर प्रव्रजित हुआ।

दोसवज्जियं-दोषवर्जित-भोजन करने के दोष दो प्रकार के हैं-(१) गवेषणा दोष, तथा (२) भोगैषणा दोष। गवेषणा के आधाकर्मी आदि दोषो की चर्चा पूर्व मे की जा चुकी है। भोगैषणा दोष निम्न पाँच प्रकार के कहे हैं-

(१) **अगार**-आहार ग्रहण कर उसमें मूर्च्छित, गृद्ध होकर आहार करना। इससे संयम कोयला जैसा मलिन हो जाता है।

(२) धूम—आहार ग्रहण कर उस पर तीव्र द्वेष, क्रोध, घृणा आदि करते हुए आहार करना। यह संयम को धूमिल कर देता है।

(३) संयोजना—आहार ग्रहण कर उसका स्वाद बढाने हेतु दूसरे द्रव्य से मिलाकर आहार करना।

(४) प्रमाणातिक्रान्त—मात्रा से अधिक आहार करना, अति भोजन।

(५) कारणातिक्रान्त—साधु के लिए भोजन करने के छह कारण बताये है—(१) भूख मिटाना, (२) आचार्यादि की सेवा, (३) ईर्या हेतु, (४) संयमार्थ, (५) प्राण-धारणार्थ, तथा ६ धर्म-चिन्तनार्थ। इन कारणो के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से आहार करना दोष है।

ELABORATION :

Arasam—without spices; tasteless.

Virasam—having bad taste; stale.

Suiyam—spicy, tasty food

Ullam—food with rich curry, greasy and spicy

Sukkam—dry; opposite of *Ullam*.

Manthu—powder of forest blum; other powders or *sattu*

Kummas—lumps of husk or skin of pulses like *Udad* and *Moong* removed when these pulses are boiled. The list of foods of different quality is given to emphasize that an ascetic should eat whatever he gets. For an ascetic the act of eating is just like the act of oiling the wheels of a cart It is functional, not joyous **(illustration No. 12)**

Muhaladdh—Pure food obtained without any obligation like helping someone with mantra, tantra, healing, etc

Muhajivi—One who survives on alms sought without reference to past achievements like family background, business involvements or fame, and also without offering any service in return. Such a detached and uninvolved renouncer is called *Mudhajivi* An interesting incident quoted from ancient texts by Acharya Mahaprajna to explain this term is as follows—

A king one day thought that, since everyone praises his own religion claiming that it is the only path to liberation, why not conduct a test to find out which is the best. This can only be done by finding out from the respective leaders or *gurus* He who is unselfish and subsists on non-obligatory alms is a true *guru*. Only his religion could be termed the best After coming to this conclusion, he made an announcement that he wanted to distribute sweets. Many different types of alms seekers arrived. The king asked a group of five, "What do you do for your living?" Their replies were—I live by my mouth I live by my legs I live by my hands I live on mercy of people I do not bother about living as I am a *mudhajivi*.

The king said, "I don't understand a word of what you said. Please explain."

One by one they explained I am a story teller and get alms in return for that, thus I live by my mouth I am a messenger and get alms in return for that, thus I live by my legs. I am a writer and get alms in return for that; thus I live by my hands. I invoke mercy in people and get alms in return for that; thus I live on mercy of people I am a *nirgranth* who has renounced the world. I seek alms with an unselfish attitude just in order to subsist while on the path of discipline. I do not accept dependence on food. Thus I am a *mudhajivi* The king bowed and said, "You are a true ascetic," and became his disciple.

Dosavajjiyam—faultless There are two types of faults related to food—(1) of seeking, (2) and of eating The first type has already been discussed. The second type has five categories—

(1) ***Angar***—like ember. To enjoy food and get greedy for it. As a result of this the radiance of discipline is completely lost as an ember turns into coal.

(2) ***Dhoom***—like smoke. To eat food with intense aversion, anger, and dislike. This makes discipline hazy like smoke

(3) ***Samyojana***—mixing To mix different types of foods before eating, in order to add to the taste.

(4) ***Pramanatikrant***—over eating.

(5) ***Karanatikrant***—to eat for a purpose other than those prescribed for an ascetic The prescribed ones are six in number—(1) to satisfy hunger, (2) to serve the acharya and seniors, (3) to facilitate movement, (4) to observe discipline, (5) to survive, and (6) to pursue the spiritual path

१०० : दुल्लहा उ मुहादाई मुहाजीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी दो वि गच्छंति सुग्गइं॥

इस संसार में, निःस्वार्थभाव से देने वाले दाता और निःस्वार्थ बुद्धि से लेने वाले साधु–दोनों ही दुर्लभ हैं। अतः ये दोनों ही सत्पुरुष उच्च सद्गति को प्राप्त करते है॥१००॥

100. In this world an unselfish donor and selfless seeker of food both are rare. These two class of pious individuals attain a higher and good rebirth.

विशेषार्थ :

मुहादाई–मुधादायी–प्रतिफल की कामना के बिना निःस्वार्थभाव से देने वाला। फल की कामना सहित दिया दान–दान नहीं, आदान-प्रदान है या विनिमय है। मुधादायी का एक रोचक दृष्टान्त इस प्रकार है–

एक सन्यासी एक गृहस्थ के पास आकर बोला–"मैं तुम्हारे यहाँ चातुर्मास व्यतीत करना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि तुम मेरे निर्वाह का भार वहन कर सकोगे।" भक्त ने कहा–"आप मेरे यहाँ वर्षाकाल बिता सकते है किन्तु मेरी भी एक शर्त है कि आप मेरे घर का कोई भी काम नही करेंगे।" साधु ने शर्त मान ली और उसके यहाँ ठहर गया। भक्त उसकी सब प्रकार से सेवा करने लगा।

एक रात भक्त के घर चोर आए और गृहस्थ का घोड़ा चुरा लिया। रात में ही उसे ले जाकर नदी-तट के एक पेड से उसे बाँध दिया। सन्यासी सुबह अपनी नियमित चर्यानुसार स्नान करने नदी पर गया, वहाँ उसने गृहस्थ के घोडे को पेड से बँधा देखा। संन्यासी से रहा नही गया और वह झट से गृहस्थ के घर लौटा। वहाँ पहुँच अपनी प्रतिज्ञा को बचाते हुए बोला–"मै नदी-तट पर अपने कपडे भूल आया हूँ।" गृहस्थ ने अपने नौकर को दौड़ा दिया जा कपड़े ले आ। नौकर ने जब घोडे को वृक्ष से बँधा देखा तो वह घोड़ा खोल लाया और

अपने स्वामी से सब बात बताई। गृहस्थ संन्यासी के भाव को ताड़ गया और उससे बोला- "आप अपनी प्रतिज्ञा भूल गए। अब मैं आपकी सेवा नहीं कर सकता क्योंकि कोई अपेक्षा रखकर सेवा करने का फल बहुत कम होता है। (आ. आत्माराम जी म दशवै., पृष्ठ २४४)

ELABORATION :

(100) ***Muhadayee***—one who donates without any expectations. To give with expectations is not donation, it is give and take, *i.e.*, a business transaction. An interesting incident explaining this is—

A mendicant once approached a householder and said, "I want to spend the monsoon season at your place. I hope you will be able to look after my needs." The devotee said, "You can certainly spend the monsoon season at my place. But I have a condition; as repayment you will not attend to any work in my household." The mendicant accepted the condition and stayed in the house. The devotee served him well with all reverence.

One night some thieves entered the house and took away the horse belonging to the devotee They took it to the bank of a nearby river and tethered it to a tree In the morning the mendicant went to the river bank for his daily bath and saw the horse. He could not contain himself and rushed back to the house leaving some of his clothes at the river bank. Hiding his true intent he said to the devotee, "I left some of my clothes at the river bank, please arrange to get them back." The devotee sent his servant. While fetching the clothes the servant saw the horse and brought it back When the servant explained how he saw the horse, the devotee understood what the mendicant had done. He said to the mendicant, "You broke your promise of attending to no work in my household. To serve you with an expectation is no service at all. Please excuse me." And he sent the mendicant away. (*Dashavaikalik Sutra* by Acharyashri Atmaram ji M., page 244)

॥ पिण्डैषणा (प्रथम उद्देशक) समाप्त ॥

END OF THE FIRST SECTION OF FIFTH CHAPTER

पंचमं अज्झयणं : पिंडेसणा : बीओ उद्देसो
पंचम अध्ययन : पिण्डैषणा : द्वितीय उद्देशक

FIFTH CHAPTER : PINDAISHANA : FOOD SELECTION
BEEO UDDESO : SECOND SECTION

आहार विधि

१ : पडिग्गहं संलिहित्ताणं लेवमायाइ संजए।
दुग्गंधं वा सुगंधं वा सव्वं भुंजे न छड्डए॥

मुनि जव आहार करे तब पात्र को पोंछ-पोंछकर साफ कर लेवें, लेप मात्र भी न लगा रहने दे। दुर्गन्धित या सुगन्धित जैसा भी पदार्थ हो, सब का सब लेप पर्यंत खा ले, झूठा न डाले॥१॥

THE PROCESS OF EATING

1. When an ascetic eats he should wipe the pot clean so that not a grain of food is left in it. He should finish even what is sticking on the walls of the pot, ensuring that there are no leftovers, whether or not the food has an agreeable or a disagreeable smell.

२ : सेज्जा निसीहियाए समावन्नो अ गोयरे।
अयावयट्ठा भुच्चा णं जइ तेणं न संथरे॥

३ : तओ कारणमुप्पण्णे भत्तपाणं गवेसए।
विहिणा पुव्व उत्तेण इमेणं उत्तरेण य॥

अपने उपाश्रय में अथवा स्वाध्याय करने के स्थान पर बैठा हुआ गोचर प्राप्त साधु, अपर्याप्त आहार भोगकर यदि उतने आहार से न रह सके और फिर

आहार की आवश्यकता समझे तो (भिक्षाकाल आने पर) पहले बताई हुई विधि अनुसार तथा आगे बताई गई विधि से दुबारा आहार-पानी की गवेषणा करे अर्थात् दुबारा गोचरी के लिये जावे॥२-३॥

2, 3. If an ascetic, who has brought the food and has eaten it while sitting in the *upashraya* or the place of study, is still hungry and requires more food, he may go again to seek alms at the proper time in the manner prescribed earlier.

विशेषार्थ :

श्लोक २-३. सेज्जा–शय्या–सोने का स्थान या ठहरने का स्थान अर्थात् उपाश्रय, कोष्ठक या वसति।

निसीहियाए–नैषेधिक्यां–निषिद्ध स्थान अथवा वह एकान्त स्थान जहाँ जन सामान्य के आवागमन का निषेध हो और इस कारण स्वाध्याय के लिए उपयुक्त हो ऐसी स्वाध्यायभूमि। यह प्राय: उपाश्रय से भिन्न होती थी। दिगम्बरों में प्रचलित 'नसियां' इसी शब्द का अपभ्रंश है।

न सथरे–न सस्तरेत्–न रह सके तो। सामान्यतया साधु के लिए अल्प भोजन ही वांछित है किन्तु विशेष परिस्थिति मे अपवादस्वरूप यह इगित है कि अपर्याप्त भोजन से वह रह न सके तो पुन गोचरी के लिए जावे। यह विशेष नियम टीकाकारों के मत में अस्वस्थ, तपस्वी, बाल आदि साधु के लिए ही बताया गया है।

ELABORATION :

(2, 3) ***Sejja***—place of sleeping; here it means place of stay like *upashraya*

Niseehiyaae—a prohibited place for common man but suitable for ascetics, a place where people are not allowed to come and as a result it becomes a place with sufficient solitude for self-study. This is generally different from the place of stay. The popular Digambar term for such places, *nasiyan*, is derived from this word.

Na samthare—cannot do without Normally speaking an ascetic is supposed to eat only a little. But as an exception, he is allowed to go to seek alms if he cannot do without additional food under special circumstances. According to the commentators, this

rule is made only for child, sick and weak ascetics or those who are engaged in harsh austerities.

४ : कालेण निक्खमे भिक्खू कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता काले कालं समायरे॥

जिस क्षेत्र में भिक्षा का जो समय हो, साधु को उसी समय भिक्षा के लिए वहाँ जाना चाहिए और उचित समय पर ही वापस लौट आना चाहिए। अकाल को टालकर समय और काल के नियमानुसार क्रियाओं में प्रवृत्ति करे॥४॥

4. An ascetic should go out to seek alms and return only during the traditionally allotted period of a specific geographic area. He should avoid odd times and indulge in any activity only at its proper time.

विशेषार्थ :

श्लोक ४. जिस कार्य का जो नियत समय है वही उसको करने का काल है और अन्य कार्य के लिए वह अकाल है। साधु की चर्या नियत होती है, नियमित होती है अतः काल का व्यतिक्रम मानसिक असन्तोष पैदा करता है।

ELABORATION :

(4) The traditionally allotted time for any specific activity is the right time to engage in it For all other activities that time is the wrong time. An ascetic follows an organized routine and so any departure from it causes mental disturbance

अकाल प्रवृत्ति

५ : अकाले चरसि भिक्खू कालं न पडिलेहसि।
अप्पाणं च किलामेसि सन्निवेसं च गरिहसि॥

हे मुनि ! तुम पहले तो अकाल में भिक्षा के लिये जाते हो, भिक्षाकाल को देखते ही नहीं हो तथा फिर अकाल में भिक्षा न मिलने पर फलस्वरूप अपने आपको खिन्न, दुःखित करते हो और व्यर्थ ही गाँव-क्षेत्र की निन्दा भी करते हो। (यह श्लोक अकालचारी मुनि को लक्ष्य करके कहा गया है)॥५॥

UNTIMELY ACTIVITY

5. *O Muni!* First of all you set out to seek alms at odd times and without checking if it is the proper time to seek alms. Then when you do not get anything you are annoyed and sad and unnecessarily condemn the village or the area.

६ : सइ काले चरे भिक्खू कुज्जा पुरिसकारिअं।
अलाभु त्ति न सोइज्जा तवु त्ति अहिआसए॥

मुनि भिक्षा का समय होने पर अथवा स्मृति काल होने पर ही भिक्षा के लिये जावे और यथोचित पुरुषार्थ करे। यदि भिक्षा न मिले तो शोक व दुःख न करे, 'मेरे अनशन आदि तप ही हो गया है'–ऐसा विचार कर क्षुधा आदि परीषह को सहन करे॥६॥

6. An ascetic should go for alms only when it is time to do so. He should make the required effort. Even then, if he does not get alms he should not feel sorry. He should tolerate the pain of hunger, thinking that he got an opportunity to observe the austerity of fasting.

विशेषार्थ ·

श्लोक ६ **सइ काले–स्मृति काले**–जिस समय भिक्षा देने के लिए गृहस्थ भिक्षु को याद करे वह समय स्मृति-काल कहलाता है

ELABORATION :

(6) ***Sai kale***—the time when a householder thinks of an ascetic to offer him alms

७ : तहेवुच्चावया पाणा भत्तट्ठाए समागया।
तं उज्जुअं न गच्छिज्जा जयमेव परक्कमे॥

गोचरी गये हुए मुनि को, यदि मार्ग में कहीं पर भोजनार्थ एकत्र हुए विभिन्न जातियों के पशु-पक्षी आदि प्राणी मिल जायें तो मुनि उनके सम्मुख न जावे। उनसे बचकर यतनापूर्वक गमन करे॥७॥

7. If while going for alms an ascetic comes across animals or birds of different species collected at a place for feeding, he should not go near them and move carefully so as to avoid them.

८ : गोयरग्ग पविट्ठो अ न निसीइज्ज कत्थई।
कहं च न पबंधेज्जा चिट्ठित्ताण व संजए॥

९ : अग्गलं फलिहं दारं कवाडं वावि संजए।
अवलंबिया न चिट्ठिज्जा गोयरग्गगओ मुणी॥

गोचरी के लिए गया हुआ मुनि कहीं पर भी न बैठे और न ही कहीं खड़ा होकर विशेष धर्मकथा या तत्त्वचर्चा करे। गोचरी के लिये घरों में गया हुआ पूर्ण यतनावान् श्रमण वहाँ की आगल का, परिघ का, द्वार का अथवा कपाट आदि का अवलम्बन लेकर, सहारा लेकर खड़ा न होवे॥८-९॥

8, 9. An ascetic out to collect alms should neither sit nor stand at a place in order to discuss religion or philosophy That cautious *shraman* should also not stand leaning on the fastening bar of a door, door panel, the door itself or other such things.

विशेषार्थ :

श्लोक ८-९ कहं–कथा–कथा के तीन प्रकार हैं–धर्म कथा, वाद कथा, और निग्रह कथा। साधु गृहस्थ के यहाँ जाकर, खडा होकर या बैठकर इनमें से किसी भी प्रकार की कथा का आयोजन न करे।

परिघ–नगर द्वार को बन्द करने के बाद पीछे से दिया जाने वाला पाट या बडी आगल।

अवलबिया–सहारा लेकर खडा होना शिष्टाचार के विपरीत है तथा दुर्बलता का चिह्न भी। साथ ही इससे स्वय के तथा अन्य वस्तु के गिरने की संभावना रहती है।

ELABORATION :

(8, 9) ***Kaham***—talk This includes discourse, discussion or simple exchange of words An ascetic is supposed to conduct only

that specific work for which he has emerged; and so he should not engage in any of these.

Parigh—the fastening bar or chain used to lock large city gates or main gates from inside.

Avalambiya—to take the help of; to stand leaning on something; this is against normal courtesy and a sign of weakness. Moreover, there are chances of falling down as well as toppling things

याचको को लाँघकर न जावे

१० : समणं माहणं वावि किविणं वा वणीमगं।
उवसंकमंतं भत्तट्ठा पाणट्ठाए व संजए॥

११ : तमइक्कमित्तु न पविसे न चिट्ठे चक्खु गोअरे।
एगंतमवक्कमित्ता तत्थ चिट्ठिज्ज संजए॥

आहार तथा पानी के लिए गृहस्थ के द्वार पर अपने बराबर से जाते हुए या पहले से पहुँचे हुए श्रमण, ब्राह्मण, कृपण (भिक्षुक) तथा दरिद्र पुरुषों को लॉघकर सयमी मुनि गृहस्थ के घर में प्रवेश न करे तथा गृह-स्वामी व उन श्रमण आदि की ऑखों के सामने भी खड़ा न होवे, अपितु एकान्त में जाकर खड़ा रहे॥१०-११॥

NO PUSHING AHEAD

10, 11. An ascetic approaching a house should not push ahead of or cross over, other seekers including *shramans*, Brahmins, beggars or destitute persons, in an effort to enter the house ahead of them. He should not even stand in the view of the householder in order to draw his attention; instead he should wait at an isolated spot

१२ : वणीमगस्स वा तस्स दायगस्सुभयस्स वा।
अप्पत्तिअं सिया हुज्जा लहुत्तं पवयणस्स वा॥

१३ : पडिसेहिए व दिन्ने वा तओ तम्मि नियत्तिए।
उवसंकमिज्ज भत्तट्ठा पाणट्ठाए व संजए॥

द्वार पर खड़े याचकों को लाँघकर जाने से एक तो याचकों को, दाता को, तथा याचक और दाता दोनों को अप्रीति उत्पन्न होगी और आर्हत् प्रवचन (जिनशासन) की लघुता (निन्दा) होगी। गृह स्वामी के द्वारा उन्हें दान देने का निषेध कर देने या दान के बाद जब वे श्रमण, ब्राह्मण आदि याचक लोग उस स्थान से लौट जायें तब साधु आहार-पानी आदि के लिये उक्त घर में भिक्षा के लिए प्रवेश करे॥१२-१३॥

12, 13. This pushing ahead will provoke the antagonism of the seekers as well as the donor. Besides this, it will also reflect badly on the ascetic organization or the word of the Jina When the donor either gives them alms or refuses to do so and the seekers leave that place, only then should the *shraman* enter that household to seek alms.

सचित्त आहार वर्जन

१४ : उप्पलं पउमं वावि कुमुअं वा मगदंतिअं।
अन्नं वा पुप्फसच्चित्तं तं च संलुंचिया दए॥

१५ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

दान देने वाली स्त्री, उत्पल (नील कमल) का, पद्म (रक्त कमल) का, कुमुद (चन्द्र विकाशी श्वेत कमल) का, मगदन्तिका (मालती पुष्प) को तथा अन्य भी ऐसे ही सचित्त पुष्पों का यदि छेदन-भेदन करके आहार-पानी देने लगे तो वह आहार-पानी साधुओं को अकल्पनीय होता है। अतः साधु देने वाली से कह दे कि यह आहार-पानी लेना मुझे कल्पना नहीं है, इसलिये मैं नहीं ले सकता॥१४-१५॥

PROHIBITION OF SACHIT FOOD

14, 15. If a donor woman proceeds to give food to an ascetic immediately after piercing holes into different

varieties of lotus (blue lotus, red lotus, white lotus), *Malati* or other *sachit* flowers, it is not proper for him to accept such food. So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food and therefore he cannot take it.

१६ : उप्पलं पउमं वा वि कुमुअं वा मगदंतिअं।
अन्नं वा पुप्फ सच्चित्तं तं च सम्मद्दिया दए॥

१७ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पिअं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

गृहस्थ के घर में यदि कोई स्त्री पूर्वोक्त नीलोत्पल आदि सचित्त पुष्पों को कुचलकर, मर्दन करके आहार-पानी देने लगे तो साधु ऐसा आहार-पानी नहीं लेवे तथा कह देवे कि यह आहार-पानी मेरे योग्य नहीं है अतः मैं नहीं ले सकता॥१६-१७॥

16, 17. If a donor woman proceeds to give food to an ascetic immediately after crushing or rubbing such lotuses or other *sachit* flowers, it is not proper for him to accept such food. So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food and therefore he cannot take it.

१८ : उप्पलं पउमं वावि कुमुअं वा मंगदंतिअं।
अन्नं वा पुप्फ सच्चित्तं तं च संघट्टिया दए॥

१९ : तं भवे भत्तपाणं तु संजयाण अकप्पियं।
दिंतियं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

यदि दान देने वाली कोई स्त्री नीलोत्पल आदि सचित्त पदार्थों का संघटन–स्पर्श करती हुई श्रमण को आहार-पानी देने लगे तो साधु वह आहार-पानी नहीं लेवे तथा देने वाली स्त्री से कहे कि बहन, यह आहार-पानी मुझे लेना नहीं कल्पता है॥१८-१९॥

18, 19. If a donor woman proceeds to give food to an ascetic touching different varieties of lotus or other flowers, it is not proper for him to accept such food. So a disciplined ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food and therefore he cannot take it.

२० : सालुअं वा विरालिअं कुमुउप्पलनालियं।
मुणालिअं सासवनालिअं उच्छुखंडं अनिव्वुडं॥

२१ : तरुणगं वा पवालं रुक्खस्स तणगस्स वा।
अन्नस्स वा वि हरिअस्स आमगं परिवज्जए॥

कमल का कन्द, पलाश का कन्द, श्वेत कमल की नाल, नील कमल की नाल, कमल के तन्तु, सरसों की नाल और गन्ने की गनेरियॉ ये सब सचित्त पदार्थ हैं अतः साधु को ग्रहण करना नहीं कल्पता। वृक्ष का, तृण का तथा अन्य किसी दूसरी वनस्पति का तरुण प्रवाल (नई कोंपल) यदि कच्चा है तो मुनि उस सचित्त पदार्थ को ग्रहण न करे॥२०-२१॥

20, 21. Lotus root, *palash* (a flower) root, lily stalk, lotus stalk, lotus bulb, mustard bunch and sugar-cane are all *sachit* things and so it is not proper for an ascetic to accept them. He should also not accept fresh sprouts of trees, grass or other vegetation while it is still raw

विशेषार्थ ·

श्लोक २०-२१ सालुय–कमलकन्द या कमल की जड।

विरालिय–पलाशकन्द या पलाश की जड।

मुणालिय–मृणालिका–कमल नाल।

सासवनालिय–सरसो की नाल।

तणगस्स–तृण–इसके विभिन्न टीकाकारो ने विभिन्न अर्थ लिए हैं। जिनदासचूर्णि में अर्जक और मूलक अर्थ किया है। अगस्त्यसिंह इसे मधुर तृण बताते हैं जो लाल गन्ना अथवा चावल हो सकता है। यह भी संभव है कि यह तृणद्रुम का सक्षेप हो, इस श्रेणी में नारियल, ताल, खजूर, केतक, छुहारे आदि के वृक्ष आते हैं।

ELABORATION :

Saluyam—lotus root.

Viraliyam—*Palash* (a flower tree) root.

Munaliyam—lotus stalk.

Sasavanaliyam—mustard bunch or stalk.

Tanagassa—straw or reed; different commentators have interpreted it differently. *Jindas Churni* interprets it as arjak (one who earns) and moolak (radish). Agastya Simha interprets it as sweet-reed which may be pink sugar-cane or rice. Another possibility is that it may be short form of *Trindrum* (plants of palm variety) and thus it may mean coconut, date, palm, pandanus, etc.

२२ : तरुणिअं व छिवाडिं आमिअं भज्जिअं सइं।
दिंतिअं पडिआइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥

जिसमें अच्छी तरह दाने नहीं पड़े हों, ऐसी मूँग, चौला, मूँगफली आदि की फलियाँ जो सर्वथा कच्ची अथवा एक बार भुनी हुई हों, यदि दाता देने लगे, तो साधु देने वाली से कह दे कि बहन, यह आहार लेना मुझे नहीं कल्पता है॥२२॥

22. If a donor gives pods of various grains that are raw or unripe or baked only once, the ascetic should inform the woman that he is not allowed to accept such food and therefore he cannot take it.

विशेषार्थ :

श्लोक २२. तरुणिअं–तरुणी–ऐसी फली जिसमें बीज न पडे हों।

भज्जिअं सईं–एक बार भूनी हुई। धान की फलियाँ एक बार भूनने से पूरी तरह सिकती नहीं है। अतः उनके कच्ची अथवा सचित्त रह जाने की संभावना रहती है।

छिवाडिं–सबालिया–सिंगा (मूँग धान्य की) फलियाँ।

ELABORATION :

Taruniyam—young; a pod that is yet to have seeds.

Bhajjiyam sai—once baked; when baked once there are chances that part of it remains uncooked and *sachit*

Chivadim—pods of *moong* (a cereal, kidney-bean).

२३ : तहा कोलमणुस्सिन्नं वेलुअं कासवनालिअं।
तिलपप्पडगं नीमं आमगं परिवज्जए॥

इसी प्रकार भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर जाने पर साधु को अग्नि आदि शस्त्र से अपरिणत बिना पकाए बदरीफल (बेर), वंश-करेला, श्रीपर्णी फल (कायफल), तिलपापडी और नीम की निबोलियाँ आदि भी अगर कोई देवे तो वह नहीं लेने चाहिए॥२३॥

23. In the same way if, when going for alms, an ascetic is offered unprocessed and uncooked berries or other different varieties of fruits, including bamboo shoots, *shriparni* fruit, sesame seeds, margosa berry, etc., he should refuse to accept it.

२४ : तहेव चाउलं पिट्ठं वियडं वा तत्तनिव्वुडं।
तिलपिट्ठ-पूइपिन्नागं आमगं परिवज्जए॥

चावलों का पिष्ट (आटा), शुद्धोदक (धोवन का जल), मिश्रित जल, तिलों का पिष्ट, सरसों की खली ये सब यदि अचित्त न हुए हों तो साधु को ग्रहण करना नहीं कल्पता है॥२४॥

24. If not *achit*, then rice flour, any type of wash, mixed water (hot and cold or treated and fresh), paste of sesame seeds, mustard husk and other such things should not be accepted by an ascetic

विशेषार्थ :

श्लोक २४. वियडं–विकृत जल अर्थात् ऐसा जल जो प्राकृतिक न हो। प्राकृतिक जल सचित्त होता है। अन्य वस्तु के मिश्रण से वह विकृत हो जाता है तथा अचित्त हो जाता है। धोवन, शुद्धोदक।

तत्तनिव्वुडं-तप्त-निर्वृतम्-कम गर्म किया हुआ तथा गर्म हो जाने के बाद जो ठंडा हो गया हो। ऐसी वस्तु के सचित्त रह जाने की संभावना होती है।

पूइपिन्नागं-सरसों की पिट्ठी या खली। पूई एक प्रकार का साग भी होता है तथा पिण्याक शब्द का उपयोग तिल, अलसी, सरसों आदि की खली के लिए भी किया जाता है।

ELABORATION :

(24) ***Viyadam***—unnatural water, this term refers to wash water which becomes *achit* due to its mixing with other things—rice-wash, flour-wash, etc. Natural water or fresh water comes in the *sachit* class

Tattanivuddam—water not heated up to the prescribed temperature; water that has cooled down; hot water mixed with cold, there are chances that these types of water remain *sachit*.

Pooipinnagam—mustard husk or paste, *pooi* also means a leafy vegetable and *pinnag* is also used for husk of sesame, linseed, mustard, etc

२५ : कविट्ठं माउलिंगं च मूलगं मूलगत्तियं।
आमं असत्थपरिणयं मणसा वि न पत्थए॥

२६ : तहेव फलमंथूणि बीयमंथूणि जाणिया।
बिहेलगं पियालं च आमगं परिवज्जए॥

इसी प्रकार सचित्त भोजन त्यागी साधु, कच्चे और अग्नि आदि शस्त्र से अपरिणत कैथ (कोढ) बिजोरा, मूली और मूलकर्तिका लेने की मन से भी इच्छा न करे। इसी प्रकार बेर आदि फलों के चूर्ण और जौ आदि बीजों के चूर्ण, विभीतक (बहेडा) और प्रियाल फल (चिरोंजी) आदि भी शास्त्रोक्त विधि अनुसार कच्चे हों तो श्रमण उनको ग्रहण न करे॥२५-२६॥

25, 26. In the same way if an ascetic who has abandoned *sachit* food should not even desire unprocessed and uncooked *kapittha*, *bijora*, *mooli* and *moolkartika*. In the same way, an ascetic should not accept things like powders of dry berries

and grains, *vibhitak* and *priyal* if they do not conform to the standards set in the scriptures.

विशेषार्थ :

श्लोक २५-२६. कविट्ठं-कपित्थं-कैथ-यह एक प्रकार का कँटीला पेड़ है जिसमें बेल के आकार के कसैले और खट्टे फल लगते हैं।

माउलिंग-मातुलिग-बिजौरा, इसी के अन्य नाम-बीजपूर, मातुलुग, रुचक तथा फलपूरक है।

मूलग-मूलक का अर्थ पत्तों सहित मूली।

मूलगत्तियं-मूलकर्तिका का अर्थ पत्ते काटी हुई मूली।

असत्थपरिणय-अशस्त्र परिणत-शस्त्र का अर्थ आग, पानी आदि तथा अन्य विजातीय पदार्थ से है। जो वनस्पति आग और पानी के योग से विकारान्तर को प्राप्त नहीं हुई हैं वे सचित्त होने से साधु को सर्वथा त्याज्य हैं।

फलमंथूणि-बेर आदि फलो के चूर्ण।

बीयमंथूणि-धानादि बीजो के चूर्ण, जैसे-उड़द, मूँग, चना, गेहूँ आदि का आटा।

बिहेलगं-(बिभीतक) बहेडा-अर्जुन वृक्ष की जाति का एक विशाल वृक्ष जिसके फल दवा के काम आते हैं। त्रिफला मे से एक फल।

पियालं-प्रियाल-चिरोंजी।

वनस्पति विषयक उपरोक्त श्लोकों के विषय में आचार्यश्री आत्माराम जी म का विशेष कथन है-"सूत्रकार ने नाम ले-लेकर बार-बार जो वनस्पति का सविस्तार वर्णन किया है वह अहिंसा महाव्रत की रक्षा पर अत्यधिक जोर देने के उद्देश्य से किया है। ग्रन्थकार को जब किसी विषय पर अधिक जोर देना होता है तब वह उस विषय को बार-बार पुनरावृत्ति करके कहा करता है। ऐसे में पुनरुक्ति दोष की आशंका न करे।

ELABORATION :

(25, 26) *Kavittham*—kaith, a thorny tree producing an astringent and sour fruit.

Mauling—bijora; a species of lemon, it is also called *beejpur, Matulung, Ruchak* and *Phalpoorak*.

Moolagam—mooli; radish with leaves

Moolgattiyam—radish with its leaves cut-off.

Asatthaparinayam—not converted by use of weapon Here weapon means fire, water, etc. and things of a different class. The vegetables that have not been made *achit* by such treatment are absolutely prohibited because they are *sachit*.

Phal Manthuni—powders of dry herries.

Beeyamanthuni—flour or powder of grains and cereals like horse-bean, kidney bean, gram, wheat etc

Bihelagam—baheda; a large tree of *Arjuna* variety; a medicinal plant; one of the constituents of *Trifala*.

Piyalam—*chiraunji*, a medicinal plant.

These repeated references to a variety of vegetables are designed to give stress on the *ahimsa* vow. Such repetition should not be considered as an aberration in the style of writing, as it is an established literary convention to use repetition where emphasis is desired (Acharyashri Atmaram ji M)

२७ : समुआणं चरे भिक्खू कुलं उच्चावयं सया।
नीयं कुलमइक्कम्म ऊसढं नाभिधारए॥

शुद्ध भिक्षा की एषणा करने वाला साधु ऊँच और नीच कुलों में समान भाव से आहार के लिये जावे, परन्तु सरस-नीरस आहार के विचार से धनहीन कुलों को लाँघकर (छोड़कर) धन-सम्पन्न ऊँचे कुलों में कदापि न जावे॥२७॥

27. An ascetic seeking pure alms should go to houses of lower and higher status without any discrimination. He should not go only to the houses of the wealthy and high families, rejecting the poor and low, with an eye to the richness of the food.

विशेषार्थ :

श्लोक २७. समुयाणं–समुदानं–अनेक स्थानों से शुद्ध आहार एकत्र करना। एक अथवा कुछ विशेष घरों से भिक्षा ली जाने से एषणा शुद्धि नहीं रह सकती। ऊँच-नीच का भेद चाहे

सामाजिक हो, आर्थिक हो अथवा आहार की मनोज्ञता को लेकर हो। साधु की भिक्षा में बाधक नहीं बनना चाहिए। इससे स्वयं साधु की आहार के प्रति ललक प्रकट होती है तथा समाज में भेदभाव को प्रोत्साहन मिलता है।

ELABORATION :

(27) ***Samuyanam***—to collect pure alms from many places. To collect from a few and selected houses is against the ascetic code. If the taste and quality of the food become the yardstick of such discrimination, it reveals the craving for food in the mind of the ascetic It also encourages such social discrimination.

२८ : अदीणो वित्तिमेसिज्जा न विसीइज्ज पंडिए।
अमुच्छिओ भोयणम्मि मायन्ने एसणा रए॥

वही साधु वास्तव में ज्ञानी है जो दीनता से रहित होकर, प्राण-निर्वाह के लिए आहार की गवेषणा करता है। जो आहार न मिलने पर कभी व्याकुल नहीं होता है और जो सरस भोजन मिल जाने पर उसमें मूर्च्छित नहीं होता है। वह आहार की मात्रा का उचित ज्ञान भी रखता है और उसी आहार का उपभोग करता है, जो आहार शास्त्रोक्त विधि से एषणीय सर्वथा शुद्ध अर्थात् निर्दोष होता है॥२८॥

28. An ascetic is truly wise if he seeks food with humility and only for his subsistence. He is never disturbed if he does not get alms and never attracted if he gets rich food. He is knowledgeable about the right quantity of the food, eats only what is acceptable according to the prescribed codes and is completely faultless and pure.

२९ : बहुं परघरे अत्थि विविहं खाइमं साइमं।
न तत्थ पंडिओ कुप्पे इच्छा दिज्ज परो न वा॥

गृहस्थ के घर में विविध प्रकार के खाद्य तथा स्वाद्य पदार्थ विद्यमान रहते हैं। परन्तु यदि गृहस्थ, साधु को वे पदार्थ नहीं देना चाहे तो साधु उस गृहस्थ पर क्रोध नहीं करे, अपितु विचारना चाहिए कि यह गृहस्थ है। इसकी इच्छा है दे या न देवे, मेरा इसमें क्या आग्रह है?॥२९॥

29. In a household there are numerous eatables and tasty things. But if a householder does not intend to give these to a *shraman*, the ascetic should not get annoyed with him. He should think that it is the donor's sweet will to give or not. The seeker has no right to interfere.

३० : सयणासण वत्थं वा भत्तपाणं च संजए।
अदिंतस्स न कुप्पिज्जा पच्चक्खे वि अ दीसओ॥

गृहस्थ के घर में भले ही प्रत्यक्ष दिखते हुए भी शयन, आसन, वस्त्र और अन्न-पानी आदि पदार्थ न देवे, तब भी साधु उस गृहस्थ पर किंचित्मात्र भी क्रोध न करे॥३०॥

30. A householder may even refuse to give things like a bed, mattress, clothing, or food, that are openly visible. Still the ascetic should not show even the slightest annoyance with the householder.

३१ : इत्थिअं पुरिसं वा वि डहरं वा महल्लगं।
वंदमाणं न जाइज्जा नो इणं फरुसं वए॥

वन्दना (स्तुति) करते हुए स्त्री-पुरुष आदि से श्रमण किसी प्रकार की याचना न करे। यदि कोई गृहस्थ याचित वस्तु न देवे, तो साधु उसको कटु वचन भी न कहे॥३१॥

31. An ascetic should never seek anything from those who come and pay him homage. If a householder does not give what is sought, the ascetic should refrain from using abusive language.

३२ : जे न वंदे न से कुप्पे वंदिओ न समुक्कसे।
एवमन्नेसमाणस्स सामण्णमणुचिट्ठई॥

३३ : सिया एगइओ लद्धुं लोभेण विणिगूहई।
मामेय दाइअं संतं दट्ठूणं सयमायए॥

३४ : अत्तट्ठागुरुओ लुद्धो बहुं पावं पकुव्वई।
दुत्तोसओ य से होइ निव्वाणं च न गच्छइ॥

जो साधु वन्दना नहीं करने वालों पर अप्रसन्न या कुपित नहीं होता और (राजा आदि बड़े आदमियों द्वारा) वन्दना करने पर अहंकार नहीं करता है उसी साधु का श्रमणधर्म सुरक्षित रहता है॥३२॥

"यदि सरस आहार गुरुदेव देख लेंगे तो स्वयं ही ले लेंगे मुझे नहीं देंगे," इस लोभयुक्त घृणित विचार से यदि कोई साधु लाए हुए सरस आहार को नीरस आहार से ढाँपता है, छुपा लेता है। जो केवल अपने ही स्वार्थ को मुख्य समझता है, ऐसा रसलोलुप साधु, बहुत अधिक पापकर्म का बंधन करता है। यही नहीं, वह किसी वस्तु से सन्तुष्ट नहीं होता तथा निर्वाण-पद भी नहीं प्राप्त कर सकता है॥३३-३४॥

32, 33, 34. The ascetic who is not annoyed or angry at those who do not bow before him and is not elated or proud when people of high status bow before him is truly established in the *shraman dharma*

"If the *guru* sees this rich food he will take all and leave nothing for me." If, with this lowly and greedy idea, an ascetic hides the rich food he has brought, under repulsive simple food, he enters the deep bondage of sinful *karmas*. Such a selfish and indulgent ascetic is never contented, no matter what he gets. He can never attain liberation.

मायाचार का निषेध

३५ : सिया एगइओ लद्धुं विविहं पाणभोयणं।
भद्दगं भद्दगं भोच्चा विवण्णं विरसमाहरे॥

कोई विवेकशून्य साधु ऐसा भी करता है कि भिक्षा में तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन-पान मिलने पर सरस पदार्थ तो वहीं एकान्त में बैठकर खा-पी लेता है और बचा हुआ असार एवं विरस आहार उपाश्रय में लाता है॥३५॥

THE NEGATION OF DECEPTION

35. Some unworthy ascetic, when he gets tasty and rich food, goes to a solitary place and eats it all. He brings only the left over and repugnant food to the *upashraya*.

३६ : जाणंतु ताइमे समणा आययट्ठी अयं मुणी।
संतुट्ठा सेवए पंतं लूहवित्ती सुतोसओ॥

३७ : पूयणट्ठा जसोकामी माणसम्माणकामए।
बहुं पसवई पावं मायासल्लं च कुव्वइ॥

रस में लोलुपता रखने वाला वह साधु ऐसे भाव रखता है कि 'ये उपाश्रय में रहने वाले अन्य साधु यह समझें कि यह साधु कैसा संतोषी और मोक्षार्थी है जो इस प्रकार के रूखे-सूखे असार पदार्थों से ही संतोष कर लेता है। जैसा मिल जाता है वैसा ही खा पीकर सन्तुष्ट हो जाता है।' पूजा, यश और मान-सम्मान की झूठी कामना करने वाला वह साधु इस प्रकार का कपट आचरण करके अत्यन्त भयंकर पापकर्मों का बन्धन करता है तथा मायारूपी शल्य उत्पन्न कर लेता है॥३६-३७॥

36, 37. Such an indulgent ascetic thinks—'These other ascetics staying in the *upashraya* will take me to be a contented ascetic desirous of liberation. They will think that he is content with dry, simple and worthless things. That he satisfies himself eating and drinking whatever he gets.' Driven by the desire for such false reverence, praise and respect, he indulges in deceitful conduct and attracts the bondage of acute and terrible sinful *karmas* and is pierced by the thorn of deceit.

विशेषार्थ :

श्लोक ३६, ३७. मायासल्लं–माया-शल्य–शल्य के कई अर्थ हैं–शस्त्र या हथियार, बाण की नोंक अथवा कांटा। जिस प्रकार शरीर में घुसी हुई अस्त्र की नोंक निरन्तर पीड़ा पहुँचाती है उसी प्रकार पापकर्म मन को व्यथित करते रहते हैं इसलिए उन्हें शल्य कहा जाता है।

माया, निदान और मिथ्यादर्शन–ये तीनो सतत चुभने वाले पापकर्म हैं इसलिए इन्हें शल्य कहा है। पूजा व मान-सम्मान की इच्छा रखने वाला व्यक्ति सदा अपने दोषों को छिपाने का प्रयत्न करता रहता है यह माया-शल्य है।

ELABORATION :

(36, 37) ***Mayasallam***—the word *shalya* has numerous meanings such as weapon, tip of an arrow or a thorn. As a thorn or the tip of a weapon, sunk in the flesh, causes incessant pain, sinful *karmas* also cause incessant pain in the mind. That is why they are called *shalya* Deceit, desire and falsehood are the sinful activities that cause continued pain and so they are known as *shalya* A man desirous of respect and devotion always tries to hide his shortcomings, which is a deceitful activity

मद्यपान का निषेध

३८ : सुरं वा मेरगं वावि अन्नं वा मज्जगं रसं।
ससक्खं न पिवे भिक्खू जसं सारक्खमप्पणो॥

इन्द्रियों को वश में रखने वाला मुनि अपने संयम रूप विमल यश की रक्षा करता हुआ, सुरा, मेरक आदि नाना प्रकार के मादक द्रव्यों का आत्म-साक्षी से त्याग करदें अर्थात् उनका सेवन (पान) न करे॥३८॥

PROHIBITION OF INTOXICATION

38. An ascetic desirous of disciplining his senses should, employing his self-control, try to protect his discipline by not consuming alcohol or various other types of intoxicating things

विशेषार्थ :

श्लोक ३८ ससक्ख–स्वसाक्ष्य–आत्म-साक्षी का अर्थ है अपनी संयम प्रवृत्त आत्मा की साक्षी मे। संयम ग्रहण करते समय केवली भगवान की साक्षी मानी जाती है, अत: यहाँ आत्म-साक्षी का अर्थ केवली भगवान की साक्षी भी किया जाता है।

ELABORATION :

(38) ***Sasakkham***—under the witness of the self; employing self control; as the name of the omniscient is invoked at the time of initiation, this word also means under the witness of the omniscient.

३९ : पियए एगओ तेणो न मे कोइ वियाणइ।
तस्स पस्सह दोसाइं नियडिं च सुणेह मे॥

जो साधु अपने धर्म से विमुख होकर, एकान्त में छिपकर मद्यपान करता है और समझता है कि मुझे यहाँ कौन देखता है, वह जिन आज्ञा की चोरी करता है। उस मायाचारी के प्रत्यक्ष दोषों को तुम स्वयं देखो और अदृष्ट मायारूप दोषों को मुझसे सुनो॥३९॥

39. An ascetic who, going against his duty, consumes alcohol stealthily in solitude and thinks that no body is seeing him, is going against the order of the Jin. You should observe the apparent faults of such a deceitful person and hear from me about those that are not so apparent.

४० : वड्ढई सुंडिया तस्स मायामोसं च भिक्खुणो।
अयसो अ अनिव्वाणं सययं च असाहुआ॥

मद्यपान करने वाले साधु के मन में लोलुपता, छल, कपट, झूठ, अपयश और अतृप्ति आदि दोष बढ़ते जाते हैं। अर्थात् वह निरन्तर असाधुता की ओर बढ़ता रहता है॥४०॥

40. There is a continuous increase of vices like craving, deceit, duplicity, falsehood, ignominy and discontent. He falls unimpeded towards disgrace.

४१ : निच्चुव्विग्गो जहा तेणो अत्तकम्मेहिं दुम्मइ।
तारिसो मरणंते वि न आराहेइ संवरं॥

ऐसा मद्यपान करने वाला दुर्बुद्धि साधु, अपने किये हुए पापकर्मों से चोर के समान सदा (अशान्तचित्त) रहता है। वह जीवन के अन्तिम समय पर भी संवर चारित्ररूप धर्म की आराधना नहीं कर सकता॥४१॥

41. Such a perverse ascetic who consumes alcohol is ever disturbed by his sinful *karmas*, just like a thief. Even during the fag end of his life he is unable to pursue the *samvar* conduct and stop the inflow of *karmas*

४२ : आयरिए नाराहेइ समणे आवि तारिसो।
गिहत्था वि णं गरहंति जेण जाणंति तारिसं॥

विचार एवं विवेकमूढ़ मद्य पीने वाला साधु न तो गुरुजनों/आचार्यों की आराधना कर पाता है और न साधुओं की। ऐसे विवेक विकल साधु की तो गृहस्थ भी निन्दा ही करते हैं, क्योंकि वे अच्छी तरह जानते हैं कि वह कैसा है?॥४२॥

42. Such a drunkard ascetic loses his rationality and intelligence and is unable to worship or follow either his *guru* and elders or other ascetics. Such an uncouth *shraman* is slandered even by householders because they know well what he is.

४३ : एवं तु अगुणप्पेही गुणाणं च विवज्जओ।
तारिसो मरणंते वि न आराहेइ संवरं॥

इस प्रकार अनेकानेक अवगुणों की प्रेक्षा अर्थात् जीवन में धारण करने वाला और सद्गुणों की उपेक्षा करने वाला साधु और तो क्या मृत्यु के समय में भी संवर धर्म की आराधना नहीं कर सकता॥४३॥

43. Thus, such an ascetic continues to imbibe numerous vices within him and neglects all virtues. He thereby makes himself incapable of pursuing the *samvar* conduct and stopping the inflow of *karmas* even at the time of his death.

बुद्धिमान् साधु की पहचान

४४ : तवं कुव्वइ मेहावी पणीअं वज्जए रसं।
मज्जप्पमायविरओ तवस्सी अइउक्कसो॥

ज्ञानवान और बुद्धिमान साधु वही है, जो सदा तप की आराधना करता है, काम उत्पन्न करने वाले स्निग्ध भोजन का त्याग करता है और मद्य-पान के प्रमाद से भी सर्वथा विमुख रहता है। वह कभी अपने तप आदि गुणों पर गर्व नहीं करता है॥४४॥

THE RECOGNITION OF AN ASCETIC

44. Only he is a learned and wise ascetic who always practices austerities, abandons lust producing rich food and rejects the habit forming consumption of alcohol. He is never conceited about his virtues.

४५ : तस्स पस्सह कल्लाणं अणेगसाहुपूइअं।
विउलं अत्थसंजुत्तं कित्तइस्सं सुणेह मे॥

गुरु कहते हैं—हे शिष्यो ! तुम उस साधु के कल्याणकारी संयम को देखो जो अनेक साधुओं से पूजित है, कल्याण मोक्ष को प्राप्त करने वाला है तथा मोक्षमार्ग का साधक है। मैं स्वयं उसके गुणों का कीर्तन करूँगा, इसलिए तुम सावधान होकर मुझसे सुनो॥४५॥

45. The *guru* states—O disciples! You should observe the beneficent discipline of the *shraman* who is revered by many ascetics, pursuing the path of liberation and destined to attain that bliss. I am going to praise his virtues, so you should listen attentively.

४६ : एवं तु स गुणप्पेही अगुणाणं च विवज्जए।
तारिसो मरणंते वि आराहेइ संवरं॥

उक्त प्रकार से जो साधु सद्गुणों को धारण करने वाला और दुर्गुणों को छोड़ने वाला है, वह जीवन के अंतिम समय में भी संवर-चारित्र धर्म की सम्यक् आराधना करता है॥४६॥

46. The *shraman* who thus accepts virtues and rejects vices pursues the right practice of *samvar dharma* during the last part of his life.

४७ : आयरिए आराहेइ समणे आवि तारिसो।
गिहत्था वि णं पूयंति जेण जाणंति तारिसं॥

चारित्र आदि गुणों से युक्त गुणवान् साधु, आचार्यों की एवं अन्य सामान्य साधुओं की भी भली प्रकार से आराधना, उपासना करता है। ऐसे गुणी साधु की गृहस्थ भी भक्तिभाव से सेवा-पूजा करते हैं, क्योंकि गृहस्थ उस शुद्ध संयमधारी को भलीभाँति पहचानते हैं॥४७॥

47. Such a virtuous ascetic, established in right conduct, also reveres and worships his *acharya* and other *shramans* properly. The householders also worship and serve him with devotion because they are well aware of his discipline and virtues.

४८ : तवतेणे वयतेणे रूवतेणे य जे नरे।
आयारभावतेणे य कुव्वइ देवकिब्बिसं॥

जो साधु तप का चोर, वचन का चोर, रूप का चोर, आचार का चोर तथा भाव का चोर होता है, वह अगले जन्म में अत्यन्त नीच योनि के किल्विष देवों में उत्पन्न होता है॥४८॥

48. The ascetic who has duplicity in all his acts of austerity, speech, appearance, conduct and thought begets a rebirth as the lowest of gods, the *Kilvish* gods.

विशेषार्थ :

श्लोक ४८. तवतेणे–तप का चोर–इसका भावार्थ यह है कि जो साधु तपस्वी नहीं है, किन्तु लोकों में तपस्वी की तरह अपने को पुजाता है। इसी प्रकार वचन का चोर वह है जो धर्मकथा नहीं करके भी स्वयं को धर्मकथी के रूप में पुजवाता है। उत्कृष्ट आचार सम्पन्न न होकर भी उच्च आचारी कहलवाता है इस प्रकार मायाचार करने वाला क्रमशः तप का चोर, वाणी का चोर, रूप का चोर और आचार का चोर कहलाता है।

देवकिब्बिसं–दैवकिल्विषम्–अधम जाति के देव को देव किल्विष कहते हैं। ऐसे देव के रूप में उत्पन्न होने योग्य कर्म या भाव दैवकिल्विष कहलाता है। स्थानांगसूत्र (४/५७०) के अनुसार अरिहन्त-प्रज्ञप्त धर्म, आचार्य-उपाध्याय और चार तीर्थ के प्रति अपशब्द बोलने वाला व्यक्ति इस कर्म का बंधन करता है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार ज्ञान, केवली, धर्माचार्य, संघ और साधुओं का अवर्णवाद बोलने वाला तथा माया करने वाला इस कर्म का बंधन करता है। (उत्त. ३६/२६४)

ELABORATION :

Tavtene—thief of tap; it means who gets himself worshipped as an austere person in spite of not being so. In the same way a thief of speech is one who gets himself worshipped as a preacher in spite of not being so, and a thief of conduct is one who gets himself worshipped as a man of high conduct in spite of not being so. Thus these are different names of an ascetic who resorts to such duplicity.

Dev kivvisam—the lowest class of gods is known as *Kilvish dev*. The *karmas* that lead to a rebirth as such gods are known as *daivakilvish karmas*. According to *Sthanang Sutra* (4/570), one who speaks ill of the *dharma* propagated by the *Arihant, acharya, upadhyaya* or the four fold *teerth (shraman, shramani, shravak, shravika)* earns these *karmas*. According to the *Uttaradhyayan Sutra* (36/264) one who is deceitful and speaks ill of *jnana*, omniscient, *acharya*, religious organization and ascetics earns these *karmas*.

४९ : लद्धूण वि देवत्तं उववन्नो देवकिब्बिसे।
तत्था वि से न याणाइ किं मे किच्चा इमं फलं? ॥

वह मायाचार करने वाला साधु किल्विष देव के रूप में उत्पन्न होकर भी यह नहीं जानता कि मैं किस दुष्कर्म के फल से इस नीच किल्विष देव जाति में उत्पन्न हुआ हूँ॥४९॥

49. Such deceitful *shraman*, when reborn as a *Kilvish* god, does not know that for what evil action he was punished by that rebirth as a *Kilvish* god.

५० : तत्तोवि से चइत्ताणं लब्भइ एलमूअअं।
नरगं तिरिक्खजोणिं वा बोही जत्थ सुदुल्लहा॥

देवलोक से च्युत होकर (आयुष्यपूर्ण) वह मेमने के समान मूक भाषा बोलने वाला (गूँगा) मनुष्य होता है अथवा नरक या तिर्यंच योनि को प्राप्त करता है, जहाँ सम्यक् बोध की प्राप्ति होना अतीव दुर्लभ है॥५०॥

50. On completing his life span there, he descends and is born as a lamb-like mute human being or a hell being or an animal It is almost impossible to get enlightenment as such beings.

५१ : एअं च दोसं दट्ठूणं नायपुत्तेण भासियं।
अणुमायं पि मेहावी मायामोसं विवज्जए॥

बुद्धिमान् (मर्यादा का पालन करने वाला) साधु, ज्ञातपुत्र भगवान महावीर द्वारा कहे इन दोषों को भलीभाँति पहचानकर अणुमात्र भी माया-मृषा (कपटपूर्वक असत्य) भाषण न करे॥५१॥

51. A disciplined *shraman* should properly understand these faults mentioned in the teachings of Jnataputra (Bhagavan Mahavir) and refrain from even the slightest of deception and duplicity

५२ : सिक्खिऊण भिक्खेसणसोहिं संजयाण बुद्धाण सगासे।
तत्थ भिक्खू सुप्पणिहिइंदि तिव्वलज्ज गुणवं विहरिज्जासि॥
त्ति बेमि।

ऐसा साधक भिक्षु श्रेष्ठ गुणों वाले संयमी तत्त्वज्ञ मुनियों के पास विनय भक्ति से भिक्षैषणा-शुद्धि का सम्यग्ज्ञान प्राप्त करे, भली प्रकार इन्द्रियों का निग्रह करने वाली अनाचार सेवन से लज्जा रखने वाली एषणासमिति की समाचारी का विशुद्ध रूप से पालन करता हुआ आनन्दपूर्वक संयममार्ग में विचरण करे॥५२॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

52. Such disciplined ascetic should humbly learn about faultless alms-collecting from the virtuous, disciplined and learned sages. He should then be steadfast in observing the conduct of *Eshanasamiti* which inspires to discipline the senses and refrain from undisciplined activity ..... So I say.

उपसहार

आचार्यश्री आत्माराम जी म. इस अध्ययन की महत्ता बताते हुए कहते हैं–"साधु को सबसे प्रथम भिक्षैषणा के ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि भिक्षैषणा के ज्ञान से ही आहार की शुद्धि होती है और शुद्ध आहार से ही प्रायः शुद्ध मन रह सकता है। जब मलिन मन शुद्ध हो गया तो चंचल इन्द्रियाँ अपने आप कुमार्ग-गमन से रुक जायेंगी और जिस समय इन्द्रियाँ कुमार्ग-गमन से रुक गईं तो फिर मोक्ष अपने हाथ ही में है।" (दशवै., पृष्ठ ३०७)

Conclusion

Acharyashri Atmaram ji M. revealing the importance of this chapter states, "For an ascetic the first and prime necessity is to learn the proper way of alms-collection. Because this helps him collect pure food and purity of food is a must for maintaining the purity of mind. When a tarnished mind becomes pure, the ever wavering senses will automatically be disciplined and checked from going into wrong direction. And when this is attained, the path of liberation is not very far" (*Dashavaikalik Sutra* by Acharyashri Atmaram ji M.)

॥ पाँचवें अध्ययन का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

END OF THE SECOND SECTION OF FIFTH CHAPTER

॥ पाँचवा अध्ययन समाप्त ॥

END OF FIFTH CHAPTER

छठा अध्ययन : महाचार कथा

प्राथमिक

इस अध्ययन का नाम महाचार कथा है।

तीसरे अध्ययन का नाम था क्षुल्लकाचार कथा अर्थात् आचार-विचार का सक्षिप्त वर्णन। इस दृष्टि से इस अध्ययन में साधु के आचार-अनाचार का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज के कथनानुसार इसकी पृष्ठभूमि में एक प्रसंग जुडा है।

कोई एक भिक्षा विशुद्धि का ज्ञाता मुनि नगर में भिक्षा के लिए गया। मार्ग में उसे राजा, राज-मंत्री आदि मिले। मुनि को देखकर उन्होंने जिज्ञासा की-"भगवन् ! आपका आचार-गोचर-क्रिया-कलाप क्या है? कृपया हमें बताइये।" मुनि ने कहा-"राजन् ! अभी मैं भिक्षा के लिए निकला हूँ इस समय धर्म-कथा करना उपयुक्त नही होगा। फिर अमुक उद्यान में हमारे आचार्य भगवन्त विराजमान हैं, वे बडे ज्ञानी हैं। अच्छा हो आप उनसे अपनी जिज्ञासा का समाधान प्राप्त करें।"

मुनि का यह उत्तर पाकर राजा आदि आचार्यश्री के समक्ष आते हैं और अपनी जिज्ञासा रखते हैं। समाधान स्वरूप आचार्यश्री का वह कथन इस अध्ययन में वर्णित है।

तृतीय अध्ययन में संक्षिप्त रूप में वर्णित अनाचारों का इस अध्ययन में विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। इसमें उन अठारह स्थानों का वर्णन है जो मुनि के लिए अनाचरणीय/अकरणीय है। उनमे उत्सर्ग-अपवाद नियमो का भी संकेत मिलता है।

निर्युक्ति के अनुसार यह अध्ययन प्रत्याख्यान प्रवाद नामक नौवें पूर्व की तीसरी वस्तु से उद्धृत है।

SIXTH CHAPTER : ELABORATE CODES

INTRODUCTION

The name of this chapter is Mahachar Katha or great (elaborate) codes

The third chapter was titled Condensed Codes or brief mention of codes of conduct. This sixth chapter discusses these codes in details As stated by Acharyashri Atmaram ji M. there is an incident related to this

An ascetic well versed with the right codes of alms-collection once came to a city seeking alms. On the way he met the king and his ministers When he saw the ascetic the king inquired, "*Bhante*! Tell me about your conduct, way of life and other activities." The ascetic replied, "O king! At the moment I am out to seek alms It is not proper time for a discourse Our *acharya*, who is a great scholar, is staying in the city garden It would be good if you get your answers from him "

As advised by the ascetic the king and his ministers approached the *acharya* and put forth their question before him The discourse by the *acharya* in response to the question is presented in this chapter

The faults in the ascetic conduct mentioned in brief in the third chapter have been discussed here in details This chapter details the eighteen activities that are prohibited for an ascetic. There are indications about the rules of strict and relaxed adherence to the codes.

According to the commentary this chapter has been taken from the third chapter of *Pratykhyan Pravad*, the ninth *Purva*.

■■

छट्ठम अज्झयणं : महायार कहा
छठा अध्ययन : महाचार कथा

SIXTH CHAPTER : MAHACHAR KAHA
ELABORATE CODES

आचार-गोचर की जिज्ञासा

१ : नाणदंसणसंपन्नं संजमे य तवे रयं।
गणिमागमसंपन्नं उज्जाणम्मि समोसढं॥

२ : रायाणो रायमच्चा य माहणा अदुव खत्तिया।
पुच्छंति निहुअप्पाणो कहं भे आयारगोयरो? ॥

राजा, राज-मन्त्री, ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि लोग उद्यान में पधारे हुए ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न, संयम और तप की क्रियाओं में पूर्णतया जागरूक आगम के ज्ञाता गणिवर से पूछते हैं कि भगवन् ! आपका आचार-गोचर कैसा है? बताने की कृपा करें॥१-२॥

THE QUESTION

1, 2. The king, his ministers and other Brahmins and *Kshatriyas* ask the *Agam* knowing *Gani* (a great ascetic) who is endowed with right knowledge and perception and is strict follower of practices of discipline and austerities, "*Bhante*! Please tell us about your conduct and other activities."

विशेषार्थ :

श्लोक १, २ नाण–ज्ञान–आचार्य के संदर्भ मे ज्ञान के चार विकल्पों मे से कोई भी हो सकता है। ये चार विकल्प हैं–(१) मति और श्रुत-दो ज्ञान-सम्पन्न, (२) मति, श्रुत और अवधि अथवा मनःपर्यव–तीन ज्ञानयुक्त, (३) मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यव–चार ज्ञानयुक्त, एवं (४) केवलज्ञानयुक्त। ज्ञान के साथ दर्शन रहता ही है। इसलिए यहाँ नाण-दसण-सपन्ने विशेषण है।

आयार-गोयरो—आचार के विषय को आचार-गोचर कहते हैं। स्थानांग वृत्ति के अनुसार साधु के आचार के अंगभूत छह व्रतों को आचार-गोचर कहा जाता है। आचार और गोचर का अर्थ स्वतंत्र भाव से भी किया जा सकता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य यह पाँच प्रकार का आचार है और भिक्षाचरी आदि का वर्णन गोचर है। (दशवैकालिक, आचार्य श्री महाप्रज्ञ, पृष्ठ ३०७)

ELABORATION :

(1, 2) ***Nana***—knowledge There are four combinations of different types of knowledge an *acharya* is supposed to possess An *acharya* can have any of these—(1) *Mati* (own intelligence and experience) and *Shrut* (scriptural), a combination of two; (2) *Mati, Shrut* and *Avadhi* (extrasensory perception of the physical dimension) or *Manahparyav* (direct awareness of thought-forms of others without the aid of mind or senses), a combination of three; (3) *Mati, Shrut, Avadhi* and *Manahparyav,* a combination of four; and (4) *Kewal Jnana* (omniscience). As knowledge and perception are two sides of the same coin both the terms have been used here to describe the lofty status of the great ascetic

Ayar-goyaro—the subject of conduct. According to *Sthanang Vritti* the six vows that form the basis of ascetic conduct are called *Achar-gochar*. Another comprehensive meaning can be derived by combining the meaning of the two component terms. *Achar* covers activities related to knowledge, perception, conduct, austerities and potency and *gochar* covers the activities related to physical or mundane activities like alms seeking. (*Dashavaikalik* by Acharya Mahaprajna, page 307)

३ : तेसिं सो निहुओ दंतो सव्वभूअसुहावहो।
सिक्खाए सुसमाउत्तो आइक्खइ वियक्खणो॥

राजा द्वारा पूछे जाने पर—संयम से स्थिर चित्त इन्द्रियों का निग्रह करने वाले, सब जीवों को अभयदान रूप सुख पहुँचाने वाले, शिक्षाओं से संयुक्त, परम विद्वान् वे आचार्य उन्हें उत्तर में कहते हैं॥३॥

3. When asked by the king the *acharya* who had attained serenity through discipline, who had subdued his senses, who bestowed all beings with bliss in the form of amnesty, who had acquired and perfected all education, and was a great scholar, replied thus.

विशेषार्थ :

श्लोक ३ सिक्खाए-शिक्षा से युक्त। शिक्षा दो प्रकार की होती है-(१) **ग्रहण शिक्षा**-सूत्र और अर्थ का अभ्यास अनुशीलन, तथा (२) **आसेवन शिक्षा**-आचार का सेवन और अनाचार का वर्जन। यहाँ उपदेशक आचार्य के गुणों के वर्णन के पीछे भावना यह है कि गुण-सम्पन्न आचार्य के वचन ही प्रभावी हो सकते है। जब तक उपदेशक स्वय गुण और आचरण मे दृढ नहीं होगा तब तक उसका प्रवचन तथा समाधान श्रोता/श्रावक में न तो धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकेगा न शंकाओं का समाधान दे सकेगा।

ELABORATION :

(3) ***Sikkhaye***—educated There are two types of education—(1) Acquisition or reading, memorizing and understanding the text and the meaning of scriptures. (2) Work towards improving one's conduct by imbibing virtues and rejecting vices through the knowledge thus gained The purpose of mentioning the virtues of an *acharya* here is that only his teaching can exert influence who has perfected the knowledge As long as a preacher does not practice the acquired knowledge himself, his preaching cannot attract the *shravaks* (listeners, Jain laity) towards *dharma* nor can it remove their doubts.

४ : हंदि धम्मत्थकामाणं निग्गंथाणं सुणेह मे।
आयारगोयरं भीमं सयलं दुरहिट्ठिअं॥

हे जिज्ञासुओ ! जो धर्म के अर्थ (-फल रूप मोक्ष) की कामना करने वाले निर्ग्रन्थ हैं, उनके भीम (सुनने से ही मन को कँपाने वाला) और कठिन आराधना में दुष्कर सम्पूर्ण आचार-गोचर का वर्णन मुझसे सावधान होकर सुनो॥४॥

4. O inquirers! Carefully listen to what I say about the Herculean and very hard to practice conduct that is practiced

by the *nirgranth's* desirous of the fruit of *dharma* (*moksha* or liberation).

विशेषार्थ :

श्लोक ४. धम्मत्थ-कामाणं–अर्थात् धर्म के अर्थ फल रूप में मोक्ष की कामना रखने वाले। आचार्य भद्रबाहु ने कहा है–धम्मस्स फल मोक्खो–धर्म का अन्तिम फल मोक्ष है। अतः वही धर्म का प्रयोजन है, अर्थ है।

ELABORATION :

(4) *Dhammttha-kamanam*—Those desirous of the meaning or fruit of *dharma,* which is liberation Acharya Bhadrabahu says—the ultimate fruit of *dharma* is liberation. Therefore, that is the meaning or purpose of *dharma.*

५ : नन्नत्थ एरिसं वुत्तं जं लोए परमदुच्चरं।
विउलट्ठाणभाइस्स न भूयं न भविस्सई॥

जैसा अत्यन्त दुष्कर आचार निर्ग्रन्थ-शासन में वर्णित है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं है। मोक्षमार्ग की साधना का ऐसा उत्कृष्ट आचार न अतीत में कभी हुआ और न भविष्य में कभी होगा॥५॥

5. The extremely difficult to practice conduct mentioned in the *Nirgranth* order has no parallel. Such superlatively perfect conduct directed at the spiritual path for liberation was neither formulated before this nor will it be done in the future.

विशेषार्थ :

श्लोक ५. इस सन्दर्भ में औपपातिक सूत्र (१/७९) में वर्णित यह प्रसंग यहाँ विशेष महत्त्व रखता है। भगवान महावीर जब चम्पानगरी में पधारते हैं तो चम्पा-नरेश कूणिक सपरिवार भगवान की देशना सुनने जाता है। भगवान का उत्कृष्ट धर्मप्रवण वाणी सुनकर उसका हृदय धर्म उल्लास से गद्‌गद हो जाता है। धर्मप्रीति से भर जाता है। वह उठकर "तिक्खुत्तो" के पाठ से वन्दना करके अपना हृदयोद्‌गार प्रकट करता है–

"सुयक्खाए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।
सुपण्णत्ते ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।

सुभासिए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।
सुविणीए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।
सुभाविए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।
अणुत्तरे ते भंते ! निग्गंथे पावयणे।
धम्मं णं आइक्खमाणा उवसमं आइक्खह।
उवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खह।
विवेगं आइक्खमाणा वेरमणं आइक्खह।
वेरमण आइक्खमाणा अकरणं पावाणं कम्माणं आइक्खह।
णत्थिं णं अण्णे केइ समणे वा माहणे वा जे एरिसं धम्ममाइक्खित्तए।

भगवन् ! आपका निर्ग्रथ प्रवचन सुविख्यात है। सुप्रज्ञप्त है। सुभाषित है। शिष्यों में सम्यक् प्रकार से नियोजित/आचरित है। सुभावित है। अनुत्तर है।

आपने अपने धर्म प्रवचन में उपशम भाव के साथ विवेक, विरति और पापकर्म-निवृत्तिरूप धर्म का सम्यक् प्रतिपादन किया है। कोई भी अन्य श्रमण और ब्राह्मण इस प्रकार धर्म व्याख्या करने में समर्थ नही है।

"किमंग पुण एत्तो उत्तरतर?"

इससे श्रेष्ठ और क्या हो सकता है?

ELABORATION :

(5) In this context there is an important incident mentioned in the *Aupapatik Sutra*—When Bhagavan Mahavir arrived at Champa city, King Kunik and his family went to listen to his discourse The eloquent and *dharma*-enriched discourse overwhelmed him with a pious joy He was filled with a deep love for *dharma*. He got up and after paying due homage conveyed his feelings—Bhagavan! Your *nirgranth*-discourse is far-famed, perfectly propagated, eloquently worded, effectively organized, remarkably evoked and inimitable. In your discourse you have made the right propagation of the *dharma* that is based on sagacity with self-control, detachment and freedom from sinful activity (evil *karmas*) No other *shraman* or Brahmin is capable of defining *dharma* in this manner. What can be better than this?

६ : सखुड्डगवियत्ताणं वाहियाणं च जे गुणा।
अखंडफुडिया कायव्वा तं सुणेह जहा तहा॥

बालक, वृद्ध, व्याधिग्रस्त एवं सर्वथा स्वस्थ सभी व्यक्तियों को जिन गुणों की आराधना अखण्ड एवं अस्फुटित रूप से पालन करनी होती है उसको ध्यानपूर्वक यथार्थ रूप से मुझसे सुनो॥६॥

6. Give heed to what I say about the true form of the virtues for which every young or old and sick or healthy should strive always and practice unfailingly.

विशेषार्थ :

श्लोक ६. सखुड्डग–क्षुद्रक–अल्प आयु, बालक।

वियत्त–व्यक्त–वृद्ध।

अखण्डऽफुडिया–अखण्ड अस्फुटित–आंशिक विराधना न करना 'अखण्ड' है और पूर्णत. विराधना न करना अस्फुटित है। यह साधना की पूर्णता की ओर इंगित है। (दशवैकालिक सूत्र आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज, पृ. ३१८)

ELABORATION :

(6) ***Sakhuddag***—young; child.

Viyatta—old

Akhandaphudia—to avoid partial or complete indiscipline; absolute perfection in spiritual practices (*Dashavaikalik Sutra* by Acharya Shri Atmaram Ji M., page 318)

७ : दस अट्ठ य ठाणाइं जाइं बालोऽवरज्झई।
तत्थ अन्नयरे ठाणे निग्गंथत्ताओ भस्सई॥

जो व्यक्ति सम्पूर्ण अठारह स्थानों में से किसी एक भी स्थान की विराधना करता है, वह साधुता के सर्वोच्च स्वरूप से भ्रष्ट हो जाता है॥७॥

7. The person who goes against even one of the eighteen principle codes falls from the lofty ideal of asceticism.

८ : वयछक्कं कायछक्कं अकप्पो गिहिभायणं।
पलियंक निसेज्जा य सिणाणं सोहवज्जणं॥

प्राणातिपात आदि छह व्रत विराधना, पृथ्वीकाय आदि छह जीवनिकाय हानि, अकल्पनीय पदार्थ-ग्रहण, गृहस्थ के भाजन मे भोजन करना, पर्यंक पर बैठना, गृहस्थों के घरों में एवं गृहस्थों के आसनों पर बैठना, स्नान करना और शरीर की विभूषा करना ये सब साधु के लिये सर्वथा त्याज्य हैं॥८॥

THE EIGHTEEN PRINCIPLE CODES

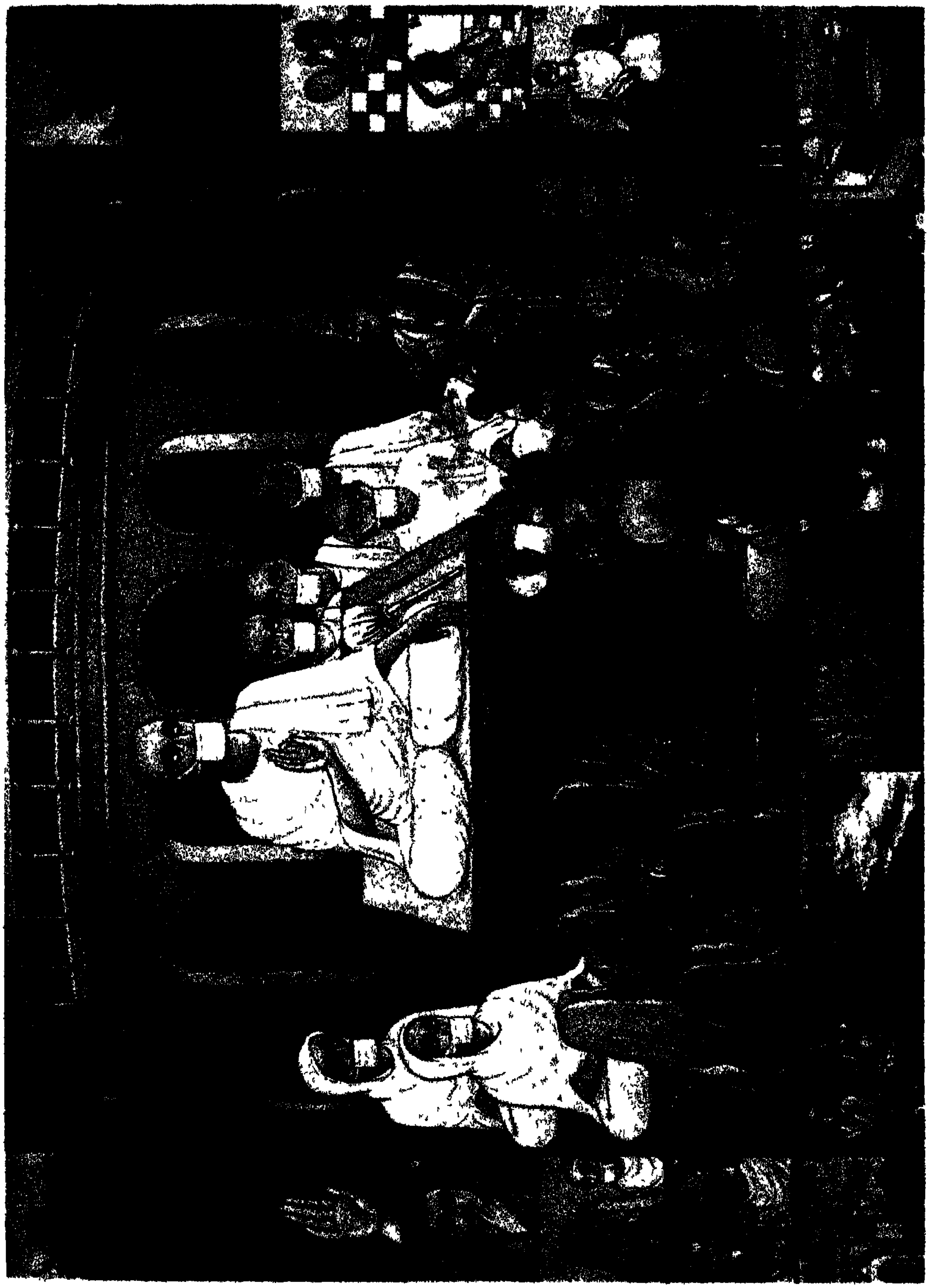
8. An ascetic should never indulge in—going against the six vows including harm to beings, harming the six classes of living beings including earth bodied ones, accepting what is not allowed, eating with householder, sitting on a bed, sitting in the house or on the seat of a householder, bathing and beautifying the body.

विशेषार्थ :

श्लोक ८. आचार के अठारह स्थान—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अचौर्य, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह (पाँच महाव्रत), (६) रात्रि-भोजन त्याग, (७) पृथ्वीकाय-सयम, (८) अप्काय-सयम, (९) तेजस् काय-सयम, (१०) वायुकाय-सयम, (११) वनस्पतिकाय-सयम, (१२) त्रसकाय-संयम, (१३) अकल्प-वर्जन, (१४) गृहस्थ-भाजन-वर्जन, (१५) पर्यंक-वर्जन, (१६) गृहान्तर-निषद्या-वर्जन, (१७) स्नान-वर्जन, तथा (१८) विभूषा-वर्जन।

ELABORATION :

(8) Eighteen Principle Codes—The five great vows—(1) *Ahimsa*, (2) Truth, (3) Non-stealing, (4) Celibacy, (5) Non-possession, sixth vow—6 Abstaining from eating during the night; not harming the six classes of living beings—(7) earth bodied, (8) water bodied, (9) fire bodied, (10) air bodied, (11) plant bodied, and (12) mobile bodied; abstaining from—(13) accepting the prohibited, (14) eating in the same plate with a householder,



श्रमण का महा आचार : अष्टादश स्थान वर्जन

THE LOFTY CONDUCT OF A SHRAMAN : THE EIGHTEEN PROSCRIBED ACTIVITIES

१. नाणदंसण संपन्ने—नगर के उद्यान मे आचार्य अपने साधु-साध्वी परिवार के साथ पधारे हैं। नगर के राजा, मत्री, क्षत्रिय, ब्राह्मण आदि स्त्री-पुरुष पूछते हैं—"भगवन् ! आपका आचार-गोचर क्या है?"

1 In the garden outside the city has arrived the great *Acharya* with the group of his disciples. The king, ministers and citizens come to pay homage and ask : "What code you follow?"

२ दस अट्ठयठाणाइं—आचार्यश्री ने कहा—"ये अठारह स्थान हैं, जिनकी विराधना करने वाला साधु धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।" चित्र में दोनो तरफ तथा नीचे क्रमश अठारह स्थान का निम्न निर्देश दिखाया गया है—

(१) हिसा-त्याग। ऊपर उठा हाथ अहिसा का प्रतीक है। (२) वाणी सयम रूप सत्य महाव्रत। (३) अदत्तादान-निषेध। दॉत कुरेदने के लिए एक तिनका भी बिना दिया न ले। (४) नारी-विमुखता रूप अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन। (५) धन-भवन त्याग का प्रतीक अपरिग्रह। (६) रात्रि-भोजन निषेध। (७) पृथ्वी, (८) अप्, (९) तेजस्, (१०) वायु, (११) वनस्पति, (१२) त्रसकाय का हिंसा त्याग। (१३) सचित्त आहार त्याग। (१४) गृहस्थ के बर्तनो मे भोजन त्याग। (१५) पलॅग आदि पर नही बैठना। (१६) घर मे बिछे सोफा (आसनो) आदि पर न बैठना। (१७) स्नान त्याग। (१८) विभूषा त्याग। प्रतीक रूप मे यह सब छोटे चित्रो मे दिखाया गया है। *(अध्ययन ६, श्लोक ७-६६)*

2. The *Acharya* replies, "There are eighteen proscribed activities. The ascetic who indulges in any of them falls from grace." These activities are shown below the illustration in eighteen small boxes—

(1) Abandoning violent activity, or the vow of ahimsa. A raised palm is the sign of amnesty (2) Discipline of speech or the vow of truthfulness. (3) Not taking even a tooth-pick if not offered, or the vow of non-stealing. (4) Indifference towards the opposite sex, or the vow of celibacy. (5) Detachment from material wealth, or the vow of non-possession. (6) Not eating after sunset Not harming living organisms that are in the—(7) earth, (8) water, (9) fire, (10) air, (11) plant bodied as well, (12) the mobile beings. (13) Not eating food containing living organisms. (14) Not sharing food in the same plate with a householder. (15) Not sitting on the same bed. (16) Seat (like a sofa) with a householder. (17) Not bathing. (18) Not embellishing the body or being conscious of one's appearance.

(Chapter 6, verses 7-66)

(15) sleeping on a bed, (16) sitting in a house, (17) bathing, and (18) beautifying the body.

९ : तत्थिमं पढमं ठाणं महावीरेण देसिअं।
अहिंसा निउणा दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो॥

भगवान महावीर ने इनमें से प्रथम स्थान अहिंसा का बताया है। इसे उन्होंने अत्यन्त सूक्ष्म रूप से देखा है और बताया है कि सब जीवों के प्रति संयम रखना ही अहिंसा है॥९॥

9. Of these the first is *ahimsa* according to Bhagavan Mahavir He has observed it minutely and said that to keep discipline in behavior towards all beings is *ahimsa*.

१ हिंसा-त्याग

१० : जावंति लोए पाणा तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाणं वा न हणे णो वि घायए॥

११ : सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोरं निग्गंथा वज्जयंति णं॥

संसार में जितने भी त्रस, स्थावर प्राणी हैं, साधु जाने या अनजाने में उनकी हिंसा न करे और न किसी से करावे॥१०॥

संसार मे सभी जीव जीना चाहते हैं मरना कोई नहीं चाहता। इसी प्राणि-स्वभाव को जानकर दयालु मुनि भयंकर दुःख उत्पन्न करने वाले प्राणिवध का पूर्णतया त्याग करते हैं॥११॥

1. NEGATION OF HARMING OTHERS

10, 11. An ascetic, knowingly or unknowingly, should not indulge in or induce others to do any act of harming any mobile or immobile being existing in this world.

All beings in this world desire to live and none wants to die Realizing this inherent nature of beings the

compassionate ascetic should absolutely abandon killing of beings which is terrible in its effect.

२. असत्य-त्याग

१२ : अप्पणट्ठा परट्ठा वा कोहा वा जइ वा भया।
हिंसगं न मुसं बूया नो वि अन्नं वयावए॥

क्रोध अथवा भय के कारण से, अपने लिए तथा दूसरों के लिए, साधु पर-पीडाकारक वचन तथा मिथ्या-भाषण न स्वय करे और न दूसरों से करवाये॥१२॥

2. NEGATION OF TELLING LIES

12. Driven by anger or fear, either for himself or for others, an ascetic should not utter painful or false words nor should he inspire others to do so.

विशेषार्थ

श्लोक १२ कोहा वा–क्रोध द्वारा प्रेरित। यहाँ मिथ्या-भाषण के हेतु स्वरूप क्रोध तथा भय का उल्लेख साकेतिक है तथा इममे अन्य सभी हेतुओ का समावेश हो जाता है। यथा–क्रोध, मान, माया, लोभ, भय तथा हास्य।

हिसग–हिसकं–यहाँ हिंसक शब्द द्वारा पर-पीडादायक वचन कहने का निषेध है।

ELABORATION :

(12) ***Koha va***—mention of anger and fear here includes all driving sentiments—anger, conceit, deceit, greed, fear and laughter

Himsagam—here this means words that cause pain to others

१३ : मुसावाओ उ लोगम्मि सव्वसाहूहिं गरिहिओ।
अविस्सासो य भूयाणं तम्हा मोसं विवज्जए॥

इस संसार में सभी साधु पुरुषों ने असत्य-भाषण की निन्दा की है। असत्य वोलने वाला मनुष्य कहीं भी विश्वास योग्य नहीं रहता। अतः साधु को असत्य भाषण का सर्वथा परित्याग करना चाहिए॥१३॥

13. All sages in this world have condemned falsehood. Nowhere anyone relies on a person who speaks lies. Therefore, an ascetic should completely abstain from telling a lie.

३. अदत्त-त्याग

१४ : चित्तमंतमचित्तं वा अप्पं वा जइ वा बहुं।
दंतसोहणमित्तं पि ओग्गहंसि अजाइया॥

१५ : तं अप्पणा न गिण्हंति नो वि गिण्हावए परं।
अन्नं वा गिण्हमाणं पि नाणुजाणंति संजया॥

महाव्रत धारी–साधु सचेतन या अचेतन पदार्थ, अल्प या अधिक पदार्थ और तो क्या दाँत कुरेदने के लिए तृण मात्र जैसे साधारण पदार्थ भी गृहस्थ स्वामी की आज्ञा लिए बिना न तो स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरों से करवाते हैं, न ही ग्रहण करते हुए दूसरों का अनुमोदन करते है॥१४-१५॥

3. NEGATION OF TAKING WHAT IS NOT GIVEN

14, 15. An ascetic who has taken five great vows does not take anything, without the permission of the owner, may it be living or non-living and less or more and even as insignificant as a straw, neither does he induce others to do so nor approve of others doing so

४ अब्रह्मचर्य-त्याग

१६ : अबंभचरियं घोरं पमायं दुरहिट्ठियं।
नायरंति मुणी लोए भेयाययणवज्जिणो॥

१७ : मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं।
तम्हा मेहुणसंसग्गिं निग्गंथा वज्जयंति णं॥

जो मुनि संयम को नष्ट करने वाले स्थानों के त्यागी हैं, वे संसार में रहते हुए भी दुर्बलों द्वारा आसेवित और प्रमाद के मूल कारण घोर अब्रह्मचर्य का कभी सेवन नहीं करते॥१६॥

यह अब्रह्मचर्य सब अधर्म का मूल है और महान् से महान् दोषों को उत्पन्न करने वाला है। इसीलिए निर्ग्रन्थ साधु इस मैथुन के संसर्ग का सम्पूर्ण भावपूर्वक परित्याग करते हैं॥१७॥

4. CELIBACY

16, 17. The ascetics who abstain from the discipline destroying activities, never indulge, as the weaklings do, in despicable lascivious activities which are the root cause of illusion.

Sexual intercourse is the root cause of all evil and it is the soil in which vices thrive. Therefore, a *nirgranth* abstains from any indulgence in it through the body or the mind

विशेषार्थ :

श्लोक १७ मेहुण ससग्गि–मैथुन के संसर्ग को–यह मैथुन की ओर प्रेरित करने वाली सभी क्रियाओं की ओर इंगित है। स्त्रियों का एकान्त सान्निध्य, कामोत्तेजक वार्ता, चित्र दर्शन आदि प्रत्येक का निषेध इस निर्देश में सम्मिलित है।

ELABORATION :

(17) *Mehun Samsaggim*—this indicates at abstaining from any and all activity leading to sexual intercourse and includes meeting with opposite sex in solitude, sexually exciting conversation, looking at erotic pictures, etc

५. परिग्रह-वर्जन

१८ : बिडमुब्भेइमं लोणं तेल्लं सप्पिं च फाणिअं।
न ते सन्निहिमिच्छन्ति नायपुत्तवओरया॥

जो मुनि, ज्ञातपुत्र (भगवान महावीर) के प्रवचनों पर दृढ आस्था रखने वाले हैं, वे बिड-लवण, सामुद्रिक-लवण, तेल, घृत तथा फाणित–पतला गुड़ आदि पदार्थों का संग्रह करने की इच्छा नहीं करते॥१८॥

5. NON-POSSESSION

18. Those who have strong faith in the words of Jnataputra do not desire to hoard things like various types of salt, oil, butter, molasses, etc.

विशेषार्थ :

श्लोक १८ सन्निहिं–सन्निधि–सग्रह करना। नमक आदि पदार्थों का सग्रह करना या रात को अपने पास रखना–'सन्निधि' कहलाता है। जो पदार्थ लम्बे समय तक संग्रह किये जा सके उन्हें अविनाशी द्रव्य कहते हैं, जैसे–नमक आदि। जो कुछ काल के बाद नष्ट हो जाते हैं उन्हें विनाशी द्रव्य कहते है। यहाँ अविनाशी द्रव्य के सग्रह को सन्निधि कहा है। निशीथचूर्णि में विनाशी द्रव्य के सग्रह को सन्निधि और अविनाशी द्रव्य के सग्रह को सचय कहा है।

ELABORATION :

(18) ***Sannihim***—to hoard or keep a thing overnight, here this refers to non-perishable things like salt The things that can be stored for a long period are called non-perishable, like salt. Those that perish after some time are called perishable Here storing of non-perishable things is termed as *sannidhi* According to *Nisheeth Churni* this term is used for perishable things and the term used for non-perishable goods is *sanchaya* or collection.

१९ : लोभस्सेस अणुफासे मन्ने अन्नयरामवि।
जे सिया सन्निहिं कामे गिही पव्वइए न से॥

यह लोभ का ही प्रभाव है जो साधु-पद लेकर भी गृहस्थ की भाँति सन्निधि का दोष लगाता है, ऐसा मैं मानता हूँ। जो साधु, अणुमात्र भी सन्निधि की इच्छा रखता है उसे गृहस्थ ही समझना चाहिए, साधु नहीं॥१९॥

19. It is under the influence of greed that even those who have become ascetics indulge in a vice like hoarding, that is what I believe. An ascetic who has even a trace of a desire to collect should be considered a householder not a *shraman*.

मूर्च्छा परिग्रह है

२० : जंपि वत्थं व पायं वा कंबलं पायुपुंछणं।
तं पि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहरंति य॥

२१ : न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इइ वुत्तं महेसिणा॥

मोक्ष की आराधना करने वाला साधु कल्प के अनुसार जो वस्त्र, पात्र, कम्बल तथा रजोहरण आदि आवश्यक वस्तुएँ रखते हैं वे संयम और लज्जा की रक्षा के लिए ही रखते हैं तथा उपयोग में लाते हैं॥२०॥

समस्त जीवों की रक्षा करने वाले ज्ञातपुत्र महावीर ने वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों को परिग्रह नहीं बताया है। उन भगवान महावीर के वचनों को धारण करने वाले महर्षि (गणधरादिकों) ने मूर्च्छा भाव को परिग्रह माना है॥२१॥

ATTACHMENT IS POSSESSION

20, 21. The things like clothing, utensils, blankets, broom, etc, the ascetics pursuing the spiritual path keep, are used only to facilitate their discipline and protect their modesty

Jnataputra Mahavir, the savior of all beings, has not called these essential equipment 'possessions'. The sages who followed his teachings (*Ganadhars* and others) have called attachment as possession

विशेषार्थ :

श्लोक २१ न सो परिग्गहो वुत्तो–इसे परिग्रह नही कहा है (वस्त्रादि को) इस सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण देते हुए व्याख्याकार आचार्य महाप्रज्ञ का कथन है–"मुनि के वस्त्रों के सम्बन्ध मे दो परम्पराएँ है–एक निषेध करती है तो दूसरी उसका विधान करती है। वैसे दिगम्बर तथा श्वेताम्बर ये दोनो शब्द शास्त्रीय नही है किन्तु दोनों परम्पराओं के विचार शास्त्र-सम्मत है। भाषा व रचना-शैली की दृष्टि से यह निर्विवाद स्वीकृत है कि उपलब्ध जैन-साहित्य मे आचाराग (प्रथम श्रुतस्कन्ध) प्राचीनतम आगम है। आचार चूला (५/२) में मुनि को एक वस्त्र सहित, दो वस्त्र सहित आदि कहा है। अन्य आगमो में मुनि की अचेलक और सचेलक दोनो

अवस्थाओं का उल्लेख मिलता है। जिनकल्पी मुनि के लिए शीत-ऋतु बीत जाने पर अचेलक रहने का भी विधान है। वस्तुत. वस्त्र रखना या न रखना विवाद का विषय नहीं है। परिस्थिति भेद से दोनो ही अनुज्ञात हैं। बन्धन की दृष्टि से विचार करने पर परिग्रह की परिभाषा मूर्च्छा है। जीवन-यापन के लिए आवश्यक वस्त्रादि रखना संयम-साधना में उपकारी है। इसलिए इन्हें धर्मोपकरण कहते हैं–ये परिग्रह नहीं हैं। इन्हें रखने के प्रयोजन हैं–संयम और लज्जा। स्थानांग में लज्जा, जुगुप्सा-निवारण और परीषह-निवारण का उल्लेख है। प्रश्नव्याकरण में सयम के उपग्रह तथा वात, आतप, दश और मच्छर से बचने के लिए उपधि रखने का विधान है।"

आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज का कथन है–"वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण ये सब संयम-रक्षा व लोक-लज्जा मे उपकारी होने के कारण इन्हें उपकरण (सहायक) बताया है। इन पर भी यदि ममत्व रखा जायेगा तो ये भी बधन के कारण हो सकते हैं।"

ELABORATION :

(21) *Na so pariggaho vutto*—This (having clothings etc) has not been called possessive attitude In this context Acharya Mahaprajna states, "As regards the dress of a *shraman* there are two traditions—One negates dress and the other provides for it Truly speaking, the popular terms *Digambar* (non-clad) and *Shvetambar* (white-clad) are not of scriptural origin, however, the concepts of both these traditions follow the scriptures. On the basis of its language and style of writing *Acharang* (the first *Shrutskandh)* is undoubtedly accepted as the oldest *Agam* in the available Jain literature In *Achar Chula* (5/2) an ascetic is said to have one or two pieces of cloth In other *Agams* there are mentions of both the states of an acetic—clad and non-clad. For a *jin-kalpi* ascetic there is a code to be non-clad after the lapse of winter season Truly speaking, to keep clothing or not is not a matter of debate As a situational variation both types have been known to exist. From the viewpoint of *karmic* bondage it is attachment that is possession To possess clothing necessary for protection and subsistence is helpful in spiritual practices. That is the reason that these are called *dharmopakaran* or religious equipment and not possessions. The purpose of these possessions is to protect

discipline and modesty. In the *Sthanang* these aims are mentioned as protection of modesty, protection from inspiring repugnance, and protection from afflictions. In the *Prashna Vyakaran* this provision is for protection from air, sun and mosquito and other bites, and thereby facilitating the practice of discipline "

According to Acharyashri Atmaram ji M., clothing, utensils, blanket and broom are helpful in protecting discipline and modesty and so these are called ascetic equipment However, if one gets attached to them they too become the cause of bondage

२२ : सव्वत्थुवहिणा बुद्धा संरक्खणपरिग्गहे।
अवि अप्पणो वि देहम्मि नायरंति ममाइयं॥

जो तत्त्व के पूर्ण ज्ञाता मुनि हैं, वे षट्जीव-कायों की रक्षा हेतु ग्रहण की गई उपधि के विषय में तो क्या अपने शरीर के विषय में भी किसी प्रकार का ममत्वभाव नहीं करते॥२२॥

22. The ascetics who have complete knowledge of the fundamentals do not nurture any feeling of attachment even for their body, what to say of the protective equipment.

६. रात्रि-भोजन-निषेध

२३ : अहो निच्चं तवोकम्मं सव्वबुद्धेहिं वण्णियं।
जा य लज्जासमा वित्ती एगभत्तं च भोयणं॥

अहो ! (आश्चर्य) सम्पूर्ण तत्त्वों के जानने वाले तीर्थंकर देवों ने साधुओं के लिए संयम के अनुकूल देह-रक्षण रूप वृत्ति में केवल एक वार ही भोजन करने का नित्य तपःकर्म के रूप में प्रतिपादन किया है॥२३॥

6. NEGATION OF EATING DURING THE NIGHT

23. Oh! The Tirthankars, the knowers of all fundamentals, have ordained, as an austerity, for the *shramans* just one meal a day being all the subsistence necessary for pursuance of discipline

विशेषार्थ :

श्लोक २३. एगभत्तं च भोयणं–एकभक्त भोजन अथवा एक बार खाना। रात्रि-भोजन का सर्वथा निषेध होने के कारण भोजन केवल दिन में ही करना है। अतः इसका अर्थ दिवस-भोजन भी माना जाता है चाहे वह एक बार हो या अधिक। आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज का कथन है–एक बार भोजन करने से आयुष्यप्राण की रक्षा भी की जा सकती है तथा देह तथा संयम की परिपालना भी। इसलिए एक बार भोजन करने वाले को नित्य तपस्वी बतलाया है। एकभक्त शब्द से तद्दिवस (वह दिन) समझा जा सकता है। विशेष परिस्थिति में एक बार से अधिक भी आहार किया जा सकता है। (दशवै , पृष्ठ ३३८)

इस सम्बन्ध में चूर्णिकार व टीकाकार एक मत हैं–उनके अनुसार दिन में केवल एक बार भोजन करना एकभक्त भोजन है। आचार्य वट्टकेर के अनुसार भी–"सूर्य के उदय और अस्त काल की तीन घडी छोडकर अर्थात् मध्यकाल में एक मुहूर्त्त, दो मुहूर्त्त या तीन मुहूर्त्त काल मे एक बार भोजन करना, यह एकभक्त-मूलगुण है।" (मूलाचार–मूलगुणाधिकार ३५)

अन्य विभिन्न सदर्भो से यह भी ज्ञात होता है कि दिन मे एकाधिक बार भोजन भी किया जाता था तथा प्रातःकाल, सायकाल में भी। लगता है यह बात विशेष परिस्थिति के लिए है। ओघनिर्युक्ति मे विशेष स्थिति में प्रातः, मध्याह्न तथा साय तीनों समयो मे भोजन की अनुज्ञा दी है।

ELABORATION :

(23) ***Egbhattam*** can also mean—that particular day. This may be interpreted as another way of presenting the rule of not eating during the night Then this verse would mean eating only during the day, may be once, may be many times. According to Acharyashri Atmaram ji M one meal a day is enough for subsistence as well as practicing discipline. That is why one who takes just one meal a day is called 'ever austere'. However, in special situation more than one meal can be taken. (*Dashavaikalik Sutra,* page 338)

In this regard the commentators are unanimous. According to them *Egbhattam* means only one meal a day. Acharya Vattaker also says, "Leaving three ghadis (45 minutes) from dawn and from dusk, having just one meal during the remaining three

quarters of the day is called the true *Egbhattam.*" (*Moolachar—Moolgunadhikaar* 35)

In some sources there are mentions that more than one meal a day were taken. According to others, morning and evening meals were also prevalent. It appears that these were exceptions. In the *Ogh Niryukti* morning, noon and evening meals are also allowed under special circumstances.

२४ : संति मे सुहुमा पाणा तसा अदुव थावरा।
जाइं राओ अपासंतो कहमेसणियं चरे? ॥

संसार में जो त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनमें बहुत से अतीव सूक्ष्म प्राणी हैं। जब साधु रात्रि में इन्हें देख ही नहीं सकता तो फिर किस प्रकार इनकी रक्षा करता हुआ एषणीय निर्दोष आहार को भोग सकेगा॥२४॥

24. Of the mobile and immobile beings in this world there are many that are very minute. When it is not possible for an ascetic even to see these during the night how can he eat pure food avoiding harm to these.

विशेषार्थ :

श्लोक २४. आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज इस श्लोक के आशय का विस्तार करते हुए कहते हैं–"जिस प्रकार रात्रि-भोजन विवर्जित है उसी प्रकार दिन में भी जो अन्धकारयुक्त स्थानो पर बैठकर भोजन किया जाता है वह सर्वथा त्याज्य है। क्योंकि जो दूषण रात्रि में लगता है, वह यहाँ पर भी लग सकता है। (दशवैकालिक सूत्र पृष्ठ ३५०)

ELABORATION :

(24) Acharyashri Atmaram ji M. further adds—"As eating during the night is prohibited so is eating during the day sitting at dark and gloomy places and for the same reasons. (*Dashavaikalik Sutra*, page 350)

२५ : उदउल्लं बीयसंसत्तं पाणा निवडिया महिं।
दिआ ताइं विवज्जेज्जा राओ तत्थ कहं चरे? ॥

२६ : एअं च दोसं दट्ठूणं नायपुत्तेण भासिअं।
सव्वाहारं न भुंजंति निग्गंथा राइभोयणं॥

पाप से बचने वाला साधु दिन में तो सचित्त जल से आर्द्र और बीजादि से मिश्रित आहार को छोड सकता है तथा पृथ्वी पर जो अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीव भ्रमण करते रहते हैं, उनकी रक्षा कर सकता है, परन्तु रात्रि में कैसे कर सकता है? यह सम्भव नहीं है॥२५॥

ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ने रात्रि-भोजन के दोषों को सम्यक्रूप से देख-जानकर कहा–स्व-परहित की आकांक्षा रखने वाला मुनि रात्रि में कभी भी किसी प्रकार का भोजन नहीं करते॥२६॥

25, 26. An ascetic desırous of saving himself from sinful actıvities can, during the day, reject food that is mixed with seeds or moist with fresh water; he can also avoid causing any harm to the numerous minute creatures crawling on the ground. But how can he do that during the night? (That is not possible)

Observıng and understandıng properly the faults of eatıng durıng the night, Jnataputra Bhagavan Mahavır said—The ascetics desırous of welfare of the self and others never eat anything durıng the night.

७ पृथ्वीकाय हिंसा-निषेध

२७ : पुढविकायं न हिंसंति मणसा वयसा कायसा।
तिविहेणं करणजोएण संजया सुसमाहिया॥
२८ : पुढविकायं विहिंसंतो हिंसई उ तयस्सिए।
तसे अ विविहे पाणे चक्खुसे अ अचक्खुसे॥

समाधिभाव में स्थिर रहने वाले मुनि मन, वचन और कायरूप तीनों योगों से तथा कृत, कारित और अनुमोदितरूप तीनों करणों से कभी भी पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा नहीं करते॥२७॥

पृथ्वीकाय की हिंसा करने वाला केवल पृथ्वीकाय की ही हिंसा नहीं करता, अपितु उस पर आश्रित नाना प्रकार के जो त्रस और स्थावर दृश्य और अदृश्य प्राणी है, उन सभी की हिंसा करता है॥२८॥

7. NEGATION OF HARMING EARTH BODIED BEINGS

27, 28. A disciplined *shraman* never harms any earth-bodied being through any of the three means—mind, speech or body or any of the three methods—do, induce or approve.

One who does so does not harm earth-bodied beings alone but also puts to harm a variety of visible and invisible mobile and immobile beings that are dependent on earth.

विशेषार्थ :

श्लोक २८. यह इंगित वर्तमान संदर्भ मे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। इसका पर्यावरण मे सीधा और गहरा सम्बन्ध है। किसी जीवन का हनन मात्र ही हिंसा नहीं है, अपितु जीवन जिस पर आश्रित है उसको नष्ट करना भी हिसा है।

ELABORATION :

(28) This statement has acquired important significance in the prevailing circumstances It has a profound but direct bearing on the environment as it states that violence is not only the destroying of life but also the destroying of the ecology that nurtures life

२९ : तम्हा एअं विआणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं।
पुढविकायसमारंभं जावज्जीवाइं वज्जए॥

जीव-हिंसा दुर्गति को बढ़ाने वाला भयंकर दोष है यह अच्छी तरह जानकर साधु जीवन पर्यन्त पृथ्वीकाय के समारंभ का परित्याग कर दे॥२९॥

29. Understanding well that harming life is a terrible fault that leads to bad rebirth, an ascetic should refrain from harming earth-bodied beings throughout his life.

८. अप्काय हिंसा-निषेध

३० : आउकायं न हिंसंति मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएण संजया सुसमाहिया॥

३१ : आउकायं विहिंसंतो हिंसई उ तयस्सिए।
तसे अ विविहे पाणे चक्खुसे य अचक्खुसे॥

३२ : तम्हा एअं वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं।
आउकायसमारंभं जावज्जीवाए वज्जए॥

समाधिभाव में रमण करने वाले साधु, अप्काय के जीवों की भी तीन करण और तीन योग से कभी हिंसा नहीं करते॥३०॥

अप्काय की हिंसा करता हुआ मनुष्य, उसके आश्रित अनेक प्रकार के त्रस और स्थावर, चाक्षुष और अचाक्षुष अन्य प्राणियों की भी हिंसा करता है॥३१॥

इसलिए इसे दुर्गति को बढ़ाने वाला जानकर, साधु को अप्काय के समारम्भ का यावज्जीवन के लिए परित्याग कर देना चाहिए॥३२॥

8. NEGATION OF HARMING WATER-BODIED BEINGS

30, 31, 32. A disciplined *shraman* never harms any water-bodied being through any of the three means—mind, speech or body or any of the three methods—do, induce or approve.

One who does so does not harm water-bodied beings alone but also puts to harm a variety of visible and invisible mobile and immobile beings that are dependent on water.

Understanding well that harming life is a terrible fault that leads to bad rebirth, an ascetic should refrain from harming water-bodied beings throughout his life.

९. अग्निकाय हिंसा-निषेध

३३ : जायतेअं न इच्छंति पावगं जलइत्तए।
तिक्खमन्नयरं सत्थं सव्वओ वि दुरासयं॥

अग्नि जात-तेज–जन्म से ही तेजोमय होती है दयालु-मुनि ऐसी अतीव तीक्ष्ण, सब ओर से धार वाले शस्त्र के समान एवं सर्व प्रकार से दुराश्रय (जिस पर काबू करना कठिन) अग्नि जलाने की कदापि इच्छा नहीं करते॥३३॥

9. NEGATION OF HARMING FIRE-BODIED BEINGS

33. Fire is radiant by nature. It is like an extremely sharp many edged weapon and difficult to contain. The compassionate ascetics never desire to burn such a fire.

विशेषार्थ :

श्लोक ३३. तिक्खमन्नयर सत्थ–अन्य शस्त्रो से अधिक तीखा। परशु, त्रिशूल, तलवार आदि शस्त्र एक, दो, तीन या चार फाल होते हैं। अत उतनी ही धार होती है। किन्तु अग्नि के अगणित फाल व अगणित धार होती है। अतः यह सभी शस्त्रों से अधिक तीखा है।

ELABORATION :

(33) ***Tikkhamannayaram Sattham***—sharper than other weapons; an axe, a double edged sword, a trident are weapons having one, two or three cutting edges But fire has cutting edges all around, therefore, it is a many edged weapon sharper than all other weapons

३४ : पाईणं पडिणं वावि उड्ढं अणुदिसामवि।
अहे दाहिणओ वा वि दहे उत्तरओ वि अ॥

३५ : भूयाणमेसमाघाओ हव्ववाहो न संसओ।
तं पईवपयावट्ठा संजया किंचि नारभे॥

३६ : तम्हा एअं वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं।
तेउकायसमारंभं जावज्जीवाए वज्जए॥

प्रज्वलित हुई अग्नि पूर्व और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण, ऊर्ध्व और अधःदिशाओं मे तथा ईशान आदि विदिशाओं में रहे हुए जीवों को स्पर्श करती हुई उनको भस्मीभूत कर देती है॥३४॥

निस्सन्देह ही यह हव्यवाह-(जीवित प्राणियों के साथ अजीव द्रव्यों का भी विनाश करने वाली) है। प्राणिमात्र को आघात पहुँचाने वाली है, अतएव संयम-पालक मुनि को प्रकाश एवं ताप (उष्णता) के लिए अर्थात् किसी भी कार्य के लिए किंचित्मात्र भी अग्निकाय का आरम्भ नहीं करना चाहिए॥३५॥

अतएव इस दुर्गतिवर्द्धक महादोष को भलीभाँति जानकर जीवों की रक्षा करने वाला संयमी साधु, अग्नि के समारम्भ को यावज्जीवन के लिए त्याग दे॥३६॥

34, 35, 36. A burning fire touches and burns beings present in all directions including the cardinal points, zenith, nadir and quarters.

Undoubtedly it is all consuming. Therefore, a disciplined ascetic should refrain from provoking the fire-bodied beings for any purpose including getting light or warmth.

Understanding well that harming life is a terrible fault that leads to bad rebirth, an ascetic should refrain from disturbing fire-bodied beings throughout his life.

१०. वायुकाय हिंसा-निषेध

३७ : अणिलस्स समारंभं बुद्धा मन्नंति तारिसं।
सावज्जबहुलं चेअं नेयं ताईहिं सेविअं॥

३८ : तालिअंटेण पत्तेण साहाविहुअणेण वा।
न ते वीइउमिच्छंति वीयावेऊण वा परं॥

३९ : जंपि वत्थं व पायं वा कंबलं पायपुंछणं।
न ते वायमुईरंति जयं परिहरंति य॥

४० : तम्हा एयं विआणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं।
वाउकायसमारंभं जावजीवाइं वज्जए॥

तीर्थंकर देवों ने अग्निकाय के समारम्भ के समान ही वायुकाय से समारम्भ को भी प्रचुर पापयुक्त माना है। अतः सभी जीवों की रक्षा करने वाले मुनियों को इस वायुकाय का समारम्भ कदापि नहीं करना चाहिए॥३७॥

इसलिए वे मुनिजन, तालवृंत के पंखे से, पत्र से, वृक्ष की शाखा से न तो स्वयं हवा करना चाहते और न दूसरों से कराना चाहते तथा करने वालों की अनुमोदना भी नहीं करते॥३८॥

संयमी, अपने पास रहे वस्त्र, पात्र, कम्बल तथा पाद-प्रोछन (रजोहरण) आदि उपकरण द्वारा भी अयतना से कभी वायुकाय की उदीरणा (उपयोग) नहीं करते। वे अपने उन उपकरणों को यतनापूर्वक ही काम में लाते हैं॥३९॥

(वायु-समारंभ सावद्य है) यह जानकर साधुओं का कर्त्तव्य है कि वे दुर्गति को बढ़ाने वाले इस हिंसा-दोष को भली प्रकार समझें और जीवन पर्यन्त वायुकाय के समारम्भ का परित्याग कर दें॥४०॥

10. NEGATION OF HARMING AIR BODIED BEINGS

37, 38, 39, 40. Like disturbing the fire-bodied beings, the Tirthankars have accepted disturbing the air-bodied beings also as extremely sinful. Therefore, the ascetics who offer amnesty to all beings should refrain from doing so

So these ascetics do not blow or throw air with the help of a palm-leave-fan, leaf or a branch of a tree; neither do they induce others to do so nor approve of others doing so

The disciplined also never disturb the air-bodied beings with the help of their clothing, utensils, blankets or brooms. They use their equipment with caution.

Understanding well that harming life is a terrible fault that leads to bad rebirth, an ascetic should refrain from disturbing air-bodied beings throughout his life

११. वनस्पति हिंसा-निषेध

४१ : वणस्सई न हिंसंति मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएण संजया सुसमाहिआ॥

४२ : वणस्सइं विहिंसंतो हिंसई उ तयस्सिए।
तसे अ विविहे पाणे चक्खुसे य अचक्खुसे॥

४३ : तम्हा एअं वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं।
वणस्सइसमारंभं जावज्जीवाइ वज्जए॥

जो संयम समाधि में रमण करने वाले मुनि हैं, वे मन, वचन और कायरूप तीन करण और तीन योग से कदापि वनस्पतिकाय की हिंसा नहीं करते॥४१॥

वनस्पति की हिंसा करता हुआ, इसके साथ वनस्पतिकाय के आश्रित जो अन्य त्रस स्थावर, सूक्ष्म-बादर जीव हैं, उन सभी जीवों की हिंसा भी करता है॥४२॥

इसलिये वनस्पतिकाय-समारम्भ को दुर्गति बढ़ाने वाला दोष जाने। साधु वनस्पतिकाय का समारम्भ यावज्जीवन के लिए त्याग दे॥४३॥

11. NEGATION OF HARMING PLANT BODIED BEINGS

41, 42, 43. A disciplined *shraman* never harms any plant-bodied being through any of the three means—mind, speech or body or any of the three methods—do, induce or approve.

One who does so does not harm plant-bodied beings alone but also puts to harm a variety of visible and invisible mobile and immobile beings that are dependent on plant-bodied beings.

Understanding well that harming life is a terrible fault that leads to bad rebirth, an ascetic should refrain from harming plant-bodied beings throughout his life.

४४ : तसकायं न हिंसंति मणसा वयसा कायसा।
तिविहेण करणजोएण संजया सुसमाहिया॥

४५ : तसकायं विहिंसंतो हिंसई उ तयस्सिए।
तसे य विविहे पाणे चक्खुसे अ अचक्खुसे॥

४६ : तम्हा एयं वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं।
तसकायसमारंभं जावज्जीवाइं वज्जए॥

जिनके सब प्रकार के कषायभाव शान्त है, संयम में रत हैं, ऐसे साधु मन, वचन और कायरूप त्रिकरण से एवं कृत, कारित और अनुमोदन त्रिविध योग से कभी भी त्रसकाय की हिंसा नहीं करते॥४४॥

त्रसकाय की हिंसा करता हुआ उसके आश्रित रहने वाले त्रस-स्थावर, सूक्ष्म-बादर आदि अन्य प्राणियों की भी हिंसा करता है॥४५॥

इसलिये त्रसकाय की हिंसा को दुर्गति दोष को बढाने वाला जानकर, साधु को त्रसकाय के समारम्भ का सर्वथा जीवन पर्यन्त परित्याग कर देना चाहिए॥४६॥

12. NEGATION OF HARMING MOBILE BEINGS

44, 45, 46. A disciplined *shraman* never harms any mobile being through any of the three means—mind, speech or body or any of the three methods—do, induce or approve.

One who does so does not harm mobile beings alone but also puts to harm a variety of visible and invisible mobile and immobile beings that are dependent on mobile beings

Understanding well that harming life is a terrible fault that leads to bad rebirth, an ascetic should refrain from harming mobile beings throughout his life.

१३. अकल्प ग्रहण वर्जन

४७ : जाइं चत्तारिऽभोज्जाइं इसिणाऽहारमाईणि।
ताइं तु विवज्जंतो संजमं अणुपालए॥

साधु के लिए जो चार प्रकार के आहार (आगे बताये हुए) आदि पदार्थ अकल्पनीय हैं, उन चारों को छोडता हुआ मुनि अपने संयम की शुद्ध परिपालना करे॥४७॥

13. NEGATION OF ACCEPTING THE PROHIBITED

47. An ascetic should faultlessly follow his discipline by rejecting all the four types of things including food that are prohibited for him (as stated earlier).

विशेषार्थ :

श्लोक ४७. अभोज्जाइ–अकल्पनीय–जो भोजन-पानी, शय्या (ठहरने का स्थान), वस्त्र और पात्र साधु के लिए लेना विधि-सम्मत न हो तथा सयम में हानि पहुँचाता हो उसे अकल्पनीय कहते हैं।

मूलगुणों की रक्षा के लिए उत्तरगुण होते है। यहाँ अकल्प नामक उत्तरगुण की चर्चा है। अकल्प के दो भेद हैं–शैक्ष-स्थापना अकल्प और अकल्प-स्थापना अकल्प। जो शिष्य आहार, शय्या, वस्त्र, पात्र आदि ग्रहण करने की विधि से सम्यक् रूप से परिचित न हो उसके द्वारा लाया आहार आदि शैक्ष-स्थापना अकल्प है तथा दोष सहित वस्तुएँ ग्रहण करना अकल्प-स्थापना अकल्प है।

ELABORATION :

(47) ***Abhojjaim***—prohibited; the things which are not acceptable to an ascetic according to the codes of conduct and which are also detrimental to the observance of discipline.

Those which are helpful in preserving and enhancing basic virtues are called complementary virtues. Rejection of the prohibited is one such complementary virtue. Its two categories are—*shaiksh-sthapana akalp* or the things brought by a disciple

who is not fully conversant with the rules and *akalp-sthapana akalp* or the things that are genuinely faulty

४८ : पिंडं सिज्जं च वत्थं च चउत्थं पायमेव य।
अकप्पिअं न इच्छिज्जा पडिगाहिज्ज कप्पिअं॥

४९ : जे नियागं ममायंति कीअमुद्देसिआहडं।
वहं ते समणुजाणंति इअ उत्तं महेसिणा॥

५० : तम्हा असण-पाणाइं कीअमुद्देसियाहडं।
वज्जयंति ठिअप्पाणो निग्गंथा धम्मजीविणो॥

आहार, शय्या, वस्त्र और पात्र यदि ये चारो पदार्थ दोष सहित हों तो अकल्प्य है, इसे संयमी साधु ग्रहण न करे और यदि निर्दोष हों तो ग्रहण कर ले॥४८॥

महर्षि भगवान महावीर ने बताया है कि जो साधु नित्याग्र (आमंत्रण दिया हुआ) आहार, क्रीत-कृत (खरीदा हुआ) आहार, औद्देशिक आहार तथा आहृत (लाया हुआ) आहार ग्रहण करते हैं वे प्रकट रूप मे षट्जीवनिकाय के वध की अनुमोदना करते है॥४९॥

अतः जिनकी आत्मा संयम-साधना से स्थिर है और जो धर्म मर्यादा के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले है, वे परिग्रह त्यागी साधु नियाग, क्रीत-कृत, औद्देशिक और आहृत अशन-पानादि पदार्थ कदापि ग्रहण नहीं करते॥५०॥

48, 49, 50. If the four things—food, bed, clothing and utensils—have faults they are prohibited A disciplined ascetic should not accept these He should accept only what is without any fault

The great sage Bhagavan Mahavir has stated that the ascetics who accept food that is *nityagra* (served after invitation), *kreet-krit* (bought), *auddeshik* (meant for him), and *ahrit* (brought) are openly approving of harm to the six classes of living beings

Therefore, the detached *nirgranths* who are stable in discipline and lead a life conforming to the codes of conduct never accept the said four types of food.

१४ गृहिभाजन-निषेध

५१ : कंसेसु कंसपाएसु कुंडमोएसु वा पुणो।
भुंजंतो असणपाणाइं आयारा परिभस्सइ॥

५२ : सीओदगसमारंभे मत्तधोअणछड्डणे।
जाइं छन्नंति भूयाइं दिट्ठो तत्थ असंजमो॥

५३ : पच्छाकम्मं पुरेकम्मं सिया तत्थ न कप्पई।
एयमट्ठं न भुंजंति निग्गंथा गिहिभायणे॥

जो मुनि गृहस्थ की कांसे की कटोरी में, कांसी की थाली में तथा कांसे की कूंडी में अशन-पान आदि भोजन करता है, वह अपने साधु-आचार मर्यादा से भ्रष्ट हो जाता है॥५१॥

केवलज्ञानी तीर्थंकर देवों ने बताया है–गृहस्थ के पात्रों में जो भोजन किया जाता है उसमें जीव विराधना रूप असंयम स्पष्टतः दिखाई देता है। जैसे कि एक तो धोने आदि के लिये कच्चे जल का आरम्भ होता है, दूसरे उस जल को अयतना से यत्र-तत्र गिराने से जीवों का घात होता है॥५२॥

गृहस्थ के भाजन में भोजन करने से साधु को पूर्व-कर्म तथा पश्चात्-कर्म की संभावना रहती है। अतः निर्ग्रन्थ के लिए कल्प्य नहीं है। अतएव मुनि किसी भी दशा में गृहस्थ के पात्रों में भोजन नहीं करते॥५३॥

14. NEGATION OF EATING WITH A HOUSE HOLDER

51, 52, 53. The ascetic who eats in a plate, a large or a small bowl made of bronze and belonging to a householder falls from the grace of ascetic conduct.

The *Tirthankars* have told that the indiscipline of harm to beings is clearly evident in the food eaten from the utensils of

householders. For instance the use of fresh water for washing these utensils disturbs the water-bodied beings and also the careless splashing of this water is also harmful to beings.

There are chances of attracting faults like *purva-karma* and *pashchaat-karma* by eating from a householder's utensils. Therefore, such eating is prohibited for a *shraman.* So under no circumstance should ascetics eat from a householder's utensils.

१५. पर्यकं-वर्जन

५४ : आसंदी-पलिअंकेसु मंचमासालएसु वा।
अणायरियमज्जाणं आसइत्तु सइत्तु वा॥

गृहस्थ के वैठने के जो आसन हैं, जैसे–आंसदी–भद्रासन, पलँग, खाट और आसालक–कुर्सी (जिसके पीछे टेकने का सहारा हो) आदि आसनों पर बैठने से तथा सोने से आर्य (श्रेष्ठ आचार-विचार वाले) मुनियों को अनाचरित नामक दोष लगता है॥५४॥

15. NEGATION OF SITTING ON FURNITURE

54. If a disciplined ascetic sits or sleeps on a piece of furniture used by a householder such as a mattress, bed, cot and chair, he is responsible for a fault called *anacharit* (wrong conduct).

अपवाद मार्ग

५५ : नासंदीपलिअंकेसु न निसेज्जा न पीढए।
निग्गंथाऽपडिलेहाए बुद्धवुत्तमहिट्ठगा॥

तीर्थंकर देवों की आज्ञा का पूर्णरूप में पालन करने वाले मुनि आसंदी, पर्यंक, गद्दी और पीठ आदि पर (अपवादस्वरूप या विशेष परिस्थिति में) बिना प्रतिलेखन किये बैठने, उठने और सोने की क्रियाएँ कदापि नहीं करते हैं॥५५॥

EXCEPTION

55. The *shramans* who follow the *Tirthankar's* doctrine, if at all have to use the said furniture under special circumstances, they are still strictly particular never to use it before properly examining the same.

विशेषार्थ :

श्लोक ५५. यह अपवाद नियम है। चूर्णिकार जिनदासमहत्तर तथा टीकाकार के अनुसार राजकुल आदि विशिष्ट स्थानों में धर्म-कथा के समय आसंदी आदि का प्रतिलेखन कर प्रयोग करना आचार विहित है। अगस्त्यसिंहचूर्णि के अनुसार यह श्लोक कुछ परम्पराओं में नहीं है।

आचार्यश्री आत्माराम जी म. के कथनानुसार रोग आदि विशेष परिस्थिति में प्रतिलेखनपूर्वक उनका उपयोग किया जा सकता है। (दशवै., पृष्ठ ३८८)

ELABORATION :

(55) This is a rule for exceptional situations. According to the commentators the code of conduct allows for the use of such furniture at the time of discourse at important places like a king's palace. According to *Agastya Simha Churni* this verse is not accepted in some schools. According to Acharyashri Atmaram ji M. the special circumstances are ailing or emaciated condition of a *shraman* (*Dashavaikalik Sutra*, page 388)

५६ : गंभीरविजया एए पाणा दुप्पडिलेहगा।
आसंदी पलिअंको य एअमट्ठं विवज्जिआ॥

ये आसंदी आदि आसन गम्भीर छिद्र वाले या अप्रकाशमय होते हैं, अतः प्रतिलेखन कर पाना दुष्कर है। इसलिये साधुओं के वास्ते ये आसन सभी प्रकार से वर्जित है॥५६॥

56. Such furniture have deep and dark recesses that are difficult to examine. That is the reason that they are strictly prohibited for ascetics.

१६. गृहान्तर-शय्या-निषेध

५७ : गोअरग्गपविट्ठस्स निसिज्जा जस्स कप्पई।
इमेरिसमणायारं आवज्जइ अबोहिअं॥

५८ : विवत्ती बंभचेरस्स पाणाणं च वहे वहो।
वणीमगपडिग्घाओ पडिकोहो अगारिणं॥

गोचरी के लिए गया हुआ साधु यदि गृहस्थों के घरों मे जाकर बैठता है तो वह निम्नोक्त (आगे बताये गये) अनाचार एवं अबोधिरूप दुष्फल को प्राप्त करता है॥५७॥

गृहस्थों के घरों में बैठने से–(१) ब्रह्मचर्य का नाश, (२) प्राणियों का वध, (३) संयम का घात, (४) भिक्षाचर लोगों को अन्तराय, तथा (५) घर के लोगों को अप्रीति–क्रोध उत्पन्न होता है॥५८॥

16. NEGATION OF RESTING IN A HOUSE

57, 58. If an ascetic out to seek alms goes and sits into the houses of citizens he violates the codes and declines in wisdom as stated below.

Sitting in the house of a citizen results in causing—(1) damage to celibacy, (2) harm to beings, (3) damage to discipline, (4) interference to other alms-seekers, and (5) displeasure and irritation to members of the household.

विशेषार्थ

श्लोक ५८. गृहस्थ के बसते घर मे बैठने से स्त्रियो को बार-बार देखने व बातचीत करने से उनके प्रति अनुराग उत्पन्न होने तथा ब्रह्मचर्य के नष्ट होने की संभावना होती है। घर में बैठने पर मुनि के लिए आहार-पानी की व्यवस्था करने की भावना उत्पन्न होती है जिससे जीव-हिंसा की सभावना रहती है। घर मे साधु बैठा हो उस समय भिक्षाचर आवे तो गृहस्वामी या स्वामिनी साधु की अवहेलना न हो इसलिए भिक्षाचार पर ध्यान नहीं देते इस प्रकार अन्तराय की संभावना है। गृहस्वामिनी जब साधु के रहने पर उसका अधिक ध्यान रखती है तो घर के अन्य सदस्यो के क्रुद्ध होने की संभावना बनती है।

ELABORATION :

(58) When an ascetic sits in a house he happens to see and talk to the women of the household again and again. This increases his chances of being attracted to them and lose his resolve of celibacy. The members of the household continue to offer food as common courtesy, thereby causing harm to beings. If the ascetic feels like accepting these he damages his discipline. While the ascetic is sitting, the members of the household tend to neglect any other alms-seeker. The lady of the house takes special care of a religious person thereby increasing the chances of other members of the household getting annoyed.

५९ : अगुत्ती बंभचेरस्स इत्थीओ वावि संकणं।
कुसीलवड्ढणं ठाणं दूरओ परिवज्जए॥

इस कारण गृहस्थों के घरों में बैठने से-ब्रह्मचर्य मे शिथिलता आने की संभावना रहती है तथा स्त्रियों के देखने से (अन्य लोगों के मन में) ब्रह्मचर्य में शंका उत्पन्न होती है। अतएव कुशील के बढ़ाने वाले इस नीच स्थान को ब्रह्मचर्य व्रतधारी साधु दूर से ही त्याग दे॥५९॥

59. As it weakens the resolve of celibacy and provides opportunity to others to doubt the claimed celibacy, an ascetic observing the vow of celibacy should avoid even remote chances of indulging in this activity

६0 : तिन्हमन्नयरागस्स निसिज्जा जस्स कप्पई।
जराए अभिभूयस्स वाहिअस्स तवस्सिणो॥

यदि कोई वृद्ध हो, रोगी और तपस्वी हो तो इन तीनों व्यक्तियों में से कोई विशेष कारण पड़ने पर गृहस्थ के घर पर (कुछ समय के लिए) बैठ सकता है। क्योंकि इनको पूर्वोक्त दोषों के हो जाने की संभावना नहीं है॥६0॥

60. If the ascetic is old, disabled, sick and weak due to austerities, he can sit in a house for a limited period in case of

dire need. This is because these conditions offset the chances of the above faults.

१७. स्नान-निषेध

६१ : वाहिओ वा अरोगी वा सिणाणं जो उ पत्थए।
वुक्कंतो होइ आयारो जढो हवइ संजमो॥

६२ : संतिमे सुहुमा पाणा घसासु भिलगासु य।
जे अ भिक्खू सिणायंतो वियडेणुप्पिलावए॥

६३ : तम्हा ते न सिणायंति सीएण उसिणेण वा।
जावज्जीवं वयं घोरं असिणाणमहिट्ठगा॥

जो कोई साधु चाहे स्वस्थ हो या अस्वस्थ होने पर भी यदि स्नान की इच्छा करता है, वह अपने साधु आचार (काय-क्लेश आदि बाह्यतप) से एवं संयम (–प्राणि रक्षारूप) से सर्वथा भ्रष्ट हो जाता है॥६१॥

शुषिर (पोली) तथा राजियुक्त (दरारों वाली) भूमि में अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीव रहते हैं, अतः चाहे कोई प्रासुक जल से भी स्नान करे, तो भी उन जीवों के उत्प्लावन (डूबने) से विराधना अवश्य होती ही है॥६२॥

इस कारण साधु ठंडे पानी से अथवा गर्म पानी (प्रासुक पानी से) कदापि स्नान नहीं करते। वे जीवन पर्यन्त इस "अस्नान व्रत" नामक घोर व्रत का पूर्ण रूप मे पालन करते हैं॥६३॥

17. NEGATION OF BATHING

61, 62, 63. An ascetic who desires to take a bath, irrespective of being healthy or ailing, falls from the lofty ideals of his conduct of austerities as well as his discipline of not harming life forms.

The porous earth with numerous cracks is infested with a variety of beings. Therefore, even if one uses *achit* water for

his bath, the water floods these holes and crevices killing living organisms therein. This violates the ascetic discipline.

That is why *shramans* never bathe either with fresh or warm water The disciplined ascetics observe this harsh vow of not bathing strictly throughout their life.

१८. विभूषा-वर्जन

६४ : सिणाणं अदुवा कक्कं लोद्धं पउमगाणि अ।
गायस्सुव्वट्टणट्ठाए नायरंति कया इवि॥

शुद्ध संयम-पालन के इच्छुक साधु को स्नान के समान ही अपने शरीर पर चन्दन, लोध्र, कुंकुम, केसर आदि सुगन्धित द्रव्यों का उबटन कदापि नहीं करना चाहिए॥६४॥

18. NEGATION OF BEAUTIFYING THE BODY

64. Like bathing, an ascetic observing strict discipline should never use cleansing pastes made of fragrant things like Sandal-wood, *lodhra* and saffron to beautify the body.

विशेषार्थ :

श्लोक ६४ सिणाण–स्नान–यहाँ स्नान का अर्थ गन्ध चूर्ण है, अंग प्रक्षालन नहीं। आचार्य उमास्वाति ने इसे घ्राणेन्द्रिय का विषय बतलाया है (प्र प्र ४३)।

कक्कं–कल्क–स्नान द्रव्य; विलेपन द्रव्य; गन्धाट्टक; सुगन्धित उबटन, या गन्ध द्रव्य का आटा। प्राचीन काल में स्नान हेतु सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग किया जाता था। स्नान से पहले तेल मालिश और फिर चिकनाई हटाने के लिए पिसी हुई दाल या आँवले का उबटन लगाया जाता था। इसे चूर्णकषाय भी कहा जाता है (दशवैकालिक, आ. महाप्रज्ञ, पृ. ३२९)

लोद्धं–लोध्र–सुगन्धित वनस्पति विशेष। यह बंगाल, आसाम और हिमालय की पहाडियों में पाया जाता है।

ELABORATION :

(64) ***Sinanam***—to bathe; this also means use of liquid or powdered perfumes. According to Acharya Umaswati this is a subject of the sense of smell. (*Prashamrati Prakaran* 43)

Kakkam—liquids, powders and pastes used as cleansing agents and perfumes During the ancient times numerous preparations of fragrant things were used at the time of bathing. The traditional procedure was—a massage of herbal or ordinary oil followed by rubbing the body with a de-greasing paste made of pulses, citrus fruits like *amala* and aromatic things like sandal-wood and finally washing with perfumed water This is also called *churn-kashaya* (*Dashavaikalik* by Acharya Mahaprajna, page 329)

Loddham—an aromatic herb generally found in the hilly terrain of Bengal, Assam and the Himalayas

६५ : नगिणस्स वावि मुंडस्स दीहरोमनहंसिणो।
मेहुणा उवसंतस्स किं विभूसाए कारिअं॥

जो साधु, मलिन एवं अल्पवस्त्रधारी होने से नग्न हैं, द्रव्य और भाव से (–केशलुंचन करने तथा कषायमुक्त) मुण्डित है, लम्बे रोम और नखों वाला है, मैथुनभाव के विकार मे मर्वथा शान्त है, उसको विभूषा (शोभा–शृंगार) से क्या प्रयोजन है?॥६५॥

65. An ascetic is nude or scantily dressed, bald physically (without hair on the head) and mentally (without passions in the mind), hairy on the body, with long nails and without the vice of lust. What for does he need beautifying his body?

विशेषार्थ .

श्लोक ६५. **नगिणस्स–नग्नस्य**–चूर्णि मे इसका अर्थ नग्न ही किया है। टीका में इसके दो प्रकार बताए है। औपचारिक नग्न–स्थविरकल्पी को कहा है जो वस्त्र पहनते है किन्तु अति सामान्य तथा अल्प होने से वे मलिन वस्त्रधारी या औपचारिक नग्न कहे गए हैं। निरुपचरित नग्न जिनकल्पी को कहा है जो वस्त्र पहनते ही नही।

आचार्यश्री आत्माराम जी म के कथनानुसार पुराने मैले वस्त्र रखना भी अचेलकत्व में माना जाता है। दीर्घ रोम नखो वाला विशेषण केवल जिनकल्पी मुनियो के लिए है। (दशवै. आ आत्मा , पृष्ठ ३७८)

ELABORATION :

(65) ***Naginassa***—nude; in one commentary (*churni*) the meaning of this word is given as nude Another commentary (*teeka*) elaborates it into two classes One without even a semblance of any cover is called a perfect nude. One who is scantily clad in very ordinary clothes is called a formal nude

According to Acharyashri Atmaram ji M. the use of old and unwashed clothes is also accepted as a type of nudity The terms hairy and having long nails is meant for *jin-kalpi* ascetics who are perfect nudes. (*Dashavaikalik Sutra*, page 378)

६६ : विभूसावत्तियं भिक्खू कम्मं बंधइ चिक्कणं।
संसारसायरे घोरे जेण पडइ दुरुत्तरे॥

६७ : विभूसावत्तियं चेयं बुद्धा मन्नंति तारिसं।
सावज्जवहुलं चेयं नेयं ताईहिं सेवियं॥

६८ : खवंति अप्पाणममोहदंसिणो तवे रया संजम अज्जवे गुणे।
धुणंति पावाइं पुरेकडाइं नवाइं पावाइं न ते करेंति॥

६९ : सओवसंता अममा अकिंचणा सविज्जविज्जाणुगया जसंसिणो।
उउप्पसन्ने विमले व चंदिमा सिद्धिं विमाणाइं उवेंति ताइणो॥
त्ति बेमि।

जो मुनि शरीर सुन्दरता की चिन्ता में लगा रहता है, वह ऐसे चिकने (चीढे) कर्म बॉध लेता है, जिनके प्रभाव से वह दुस्तर एवं घोर संसार-सागर में जा गिरता है॥६६॥

तीर्थंकर भगवान ने विभूषा मे आसक्त चित्त को कर्मबंधन का कारण वताया है। अतः विभूषा सावद्य वहुल (पापमय) होने से षट्काय के रक्षक साधुओं द्वारा सेवनीय नहीं है॥६७॥

जो मुनि मोह से रहित सम्यक्-तत्त्व के जानने वाले हैं, विशुद्ध तप में रत रहने वाले हैं, संयम और आर्जव गुणों से युक्त हैं वे पूर्वकृत कर्मों को क्षय करते हैं और नवीन कर्मों को नहीं बाँधते॥६८॥

जो मुनि सदा उपशांत, ममतारहित है, परिग्रह से मुक्त है और आत्म-विद्या से युक्त हैं तथा शरद्कालीन चन्द्रमा के समान विमल (स्वच्छ) हैं, वे समस्त जीवों के रक्षक संयमी मोक्ष में जाते हैं, अन्यथा वैमानिक देवों में तो अवश्य ही उत्पन्न होते हैं॥६९॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

66, 67, 68, 69. A *shraman* who is involved in beautifying his body is drawn into the bondage of such tough and slippery *karmas* that drown him deeper into the endless expanse of the deep ocean that is mundane existence.

The *Tirthankars* have said that the infatuation with beautification is the cause of bondage of *karmas*. As it is extremely sinful it is prohibited for an ascetic who is the protector of the six classes of living beings.

The detached ascetic who know the fundamentals, indulge in strict austerities, are disciplined and guileless, endeavor to shed the *karmas* already acquired and stop the inflow of fresh *karmas*. . . . . So I say

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥

END OF SIXTH CHAPTER

सातवाँ अध्ययन : सुवाक्य शुद्धि

प्राथमिक

छठे महाचार कथा अध्ययन में आचार का वर्णन है। आचार का प्ररूपण करने के लिए वाणी की आवश्यकता होती है। वाणी का प्रयोग भाषासमिति है। भाषासमिति का अर्थ है–विवेकपूर्वक बोलना। निर्युक्तिकार आचार्य ने कहा है–जिसे सावद्य और अनवद्य भाषा का विवेक नही है, उसे बोलना भी उचित नहीं है। उपदेश देने की बात तो बहुत दूर है। भाषा या वाक्य शुद्धि से भाव शुद्धि होती है। अहिंसा की साधना में बोलने से पूर्व तथा बोलते समय बहुत ही सूक्ष्म बुद्धि से विचार किया जाता है। प्रस्तुत वाक्य शुद्धि अध्ययन में अहिंसा दृष्टि को केन्द्र मानकर वाणी विवेक पर बहुत ही सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया गया है।

भाषा के चार प्रकार–(१) सत्य भाषा, (२) असत्य भाषा, (३) मिश्र (सत्यासत्य) भाषा, तथा (४) असत्याऽमृषा (व्यवहार) भाषा, बताकर दो को (२-३) तो सर्वथा त्याज्य और दो में (१-४) विवेकपूर्वक वचन प्रयोग करने का निर्देश प्रस्तुत अध्ययन का विषय है। इसलिए दशवैकालिक की निर्युक्ति में एक महत्त्वपूर्ण निर्देश दिया गया है–

पुव्विं बुद्धीए पेहित्ता, पच्छा वक्कमुदाहरे।
अचक्खुओ व नेतारं बुद्धिमन्नेउ ते गिरा॥ –दशवै. नि २९२

पहले बुद्धि से विचार करो, फिर वचन बोलो। जैसे अंधा अपने नेता (ले जाने वाले) का अनुगमन करता है वैसे ही वाणी बुद्धि का अनुगमन करे।

प्रस्तुत अध्ययन सत्य प्रवाद नामक छठे पूर्व से उद्धृत माना जाता है।

SEVENTH CHAPTER : PURITY OF SPEECH

INTRODUCTION

The sixth chapter discusses conduct Speaking is instrumental in formulation of conduct, and proper speaking is known as regulation of speech, which means disciplined speaking The commentator *acharya* (of *Niryukti*) states—What to say of preaching, it is not even proper for him to speak, who cannot differentiate between correct and incorrect language. With purity of speech comes purity of mind While practicing *ahimsa* it is necessary to think analytically before and during speaking. In this chapter detailed analysis has been presented on the discipline of speech from the standpoint of *ahimsa*

Speech has been divided into four categories—(1) truth, (2) a lie, (3) mixed, and (4) neither truth nor a lie Two of these are prohibited and the other two are to be used with discipline This is the theme of this chapter The commentator has summed up the process in one sentence—First think and then speak, the speech should lean on wisdom as a blind leans on his guide (*Dashavaikalik Niryukti* 292)

This chapter is believed to have been excerpted from *Satya Pravad*, the sixth *Purva*

सत्तमं अज्झयणं : सुवक्कसुद्धीम
सातवाँ अध्ययन : सुवाक्य शुद्धि

SEVENTH CHAPTER : SUVAKKASUDDHI
PURITY OF SPEECH

चार प्रकार की भाषाएं

१ : चउण्हं खलु भासाणं परिसंखाय पन्नवं।
दुण्हं तु विणयं सिक्खे दो न भासिज्ज सव्वसो॥

प्रज्ञावान् साधु भाषा के चतुष्प्रकारी स्वरूप को भली प्रकार जानकर शुद्ध वचन प्रयोग करने के लिये दो (भाषा) को विनयपूर्वक सीखे और दो (अशुद्ध भाषाओं) को बिल्कुल ही छोड़ देवे॥१॥

FOUR CATEGORIES OF SPEECH

1. An intelligent ascetic understands well the four categories of speech, learns two of these correctly for proper use and completely avoids the other two.

विशेषार्थ .

श्लोक १. चउण्हं खलु भासाण–चार प्रकार की भाषाएँ। यह भाषा के गुणात्मक भेद हैं– (१) सत्य भाषा वह है जो वस्तुस्थिति का यथार्थ बोध हो जाने पर विचारपूर्वक बोली जाती है। (२) असत्य भाषा वह है, जो वस्तुस्थिति के पूर्ण ज्ञान के बिना अयथार्थ एवं क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अन्य भावनाओं से प्रेरित होकर बोली जाती है। (३) मिश्र भाषा वह है, जिसमें सत्य एवं असत्य दोनों भाषाओं का संमिश्रण हो। (४) व्यवहार भाषा वह है, जो इच्छित अर्थ को स्पष्ट करती है और सामान्य जन को ग्राह्य होती है। यह सत्य की सहचरी के रूप में प्रयुक्त होती है और हानिकारक नहीं होती। इनमें प्रथम और चतुर्थ भाषा शुद्ध मानी जाती है तथा दूसरी और तीसरी अशुद्ध।

विणयं–जिनदासचूर्णि (पृ २४४) के अनुसार भाषा का वह प्रयोग जिसमें धर्म का अतिक्रमण न हो, विनय कहलाता है। टीकाकार ने भाषा के शुद्ध प्रयोग को विनय कहा है (हारिभद्रीय टी., पृ. २१३)।

ELABORATION :

(1) ***Chaunham khalu bhasanam***—This is the qualitative classification of language—(1) Truth is that which is spoken thoughtfully after the true understanding of the reality. (2) A lie is that which is spoken without the true understanding of the reality and under the influence of passions like anger, conceit, duplicity and greed (3) Mixed speech is that which is a mixture of these two (4) Common man's language (it is neither true nor false intentionally) is that which conveys the desired message and is understood by the common man This generally follows truth and is benign Of these the first and the fourth are considered to be correct and proper and the second and the third wrong and improper

Vinayam—the use of language that does not violate *dharma* is called *vinava* (*Jinadas Churni*, page 244), the correct use of language is *vinaya* (commentary by Acharya Haribhadra Suri, page 213)

२ : जा य सच्चा अवत्तव्वा सच्चामोसा अ जा मुसा।
जा य बुद्धेहिऽणाइन्ना न तं भासेज्ज पन्नवं॥

जो सत्य भाषा (सावद्य होने से) अवक्तव्य है तथा जो सत्यामृषा (मिश्र) भाषा है तथा जो केवल मृषा भाषा है अथवा जो व्यवहार भाषा भी ज्ञानियों के द्वारा अनाचीर्ण हो, अभिप्राय यह है कि जिन-जिन भाषाओं का तीर्थंकर देवों ने आचरण नहीं किया है, प्रज्ञावान् साधु उन सभी भाषाओं का कदापि प्रयोग न करे॥२॥

2. The truth that should not be expressed (as it causes harm), the mixed language, the false language and the usage of the common language that the wise have refrained from should never be used by the intelligent *shraman*. In other

words the types of language that have not been used by Tirthankars should never be used by the intelligent ascetic.

३ : असच्चमोसं सच्चं च अणवज्जमकक्कसं।
समुप्पेहमसंदिद्धं गिरं भासिज्ज पन्नवं॥

४ : एअं च अट्ठमन्नं वा जं तु नामेइ सासयं।
स भासं सच्चमोसं पि तं पि धीरो विवज्जए॥

बुद्धिमान् मुनि, व्यवहार भाषा और सत्य भाषा भी वही बोले जो अनवद्य अर्थात् पाप से दूषित न हो, जो मधुर तथा सन्देहरहित हो तथा वह भी हानि-लाभ का पूर्ण विचार करके बोले॥३॥

वह विचारवान् साधु ऐसी सत्य एवं व्यवहार भाषा भी न बोले जिसका आशय स्पष्ट न हो, अथवा जो अर्थ व परमार्थ के प्रति संदेह उत्पन्न करती हो, जो मोक्ष के प्रतिकूल जाती हो॥४॥

3, 4. A wise ascetic should utter only that common language or truth which is not sinful or doubtful and is sweet. That too should be uttered only after weighing the consequent loss and gain.

He should also not utter such truth as well as common language which is not clear in its meaning, which creates doubt about the ultimate goal and which contradicts liberation.

५ : वितहं पि तहामुत्तिं जं गिरं भासए नरो।
तम्हा सो पुट्ठो पावेणं किं पुण जो मुसं वए॥

जो पुरुष सत्य पदार्थ की आकृति के समान दीखने वाली असत्य पदार्थ की आकृति को भ्रमवश सत्य पदार्थ कहता है, तो वह भी भारी पापकर्म का बंध करता है, तब फिर जो केवल असत्य ही बोलता है, उसके विषय में कहना ही क्या है॥५॥

5. One who calls the illusion of a thing as that thing also attracts great *karmic* bondage, what to say of the one who utters white lies only.

शंकित भाषा-निषेध

६ : तम्हा गच्छामो वक्खामो अमुगं वा णे भविस्सइ।
अहं वा णं करिस्सामि एसो वा णं करिस्सइ॥

७ : एवमाइउ जा भासा एसकालम्मि संकिया।
संपयाइयमट्ठे वा तं पि धीरो विवज्जए॥

पापवंध के कारणों से बचते हुए बुद्धिमान् साधु, "कल हम अवश्य जायेंगे या व्याख्यान देंगे या हमारा अमुक कार्य होगा या मैं अमुक कार्य करूँगा अथवा यह साधु अमुक कार्य करेगा" इत्यादि भाषा जो भविष्य संबंधी होने से फल की दृष्टि से शकायुक्त हो अथवा जिनके वर्तमान काल एवं अतीत काल सम्बन्धी अर्थ के विषय में शंका हो, ऐसी भाषा कदापि न बोले॥६-७॥

NEGATION OF AMBIGUOUS SPEECH

6, 7. To avoid the causes of *karmic* bondage a wise *shraman* does not give statements like—"Tomorrow I will certainly go or will give discourse or this work will be done or I will do this work or that ascetic will do this work" In other words he should not say anything of uncertain future consequences or where there is any doubt about the message conveyed about the present or the past.

विशेषार्थ .

श्लोक ६-७. यहाँ शंकित भाषा बोलने का निषेध है। काल की दृष्टि से शंकित भाषा के तीन प्रकार होते है–प्रथम भविष्यकालीन भाषा का सर्वथा निषेध है क्योंकि वह अनिश्चित होने के कारण सदैव शंकित है। दूसरा वर्तमानकालीन तथा तीसरा भूतकालीन इन दोनों के विषय में भाषण के पूर्व पूर्ण निश्चय किया जाना चाहिए और तब उसके अनुरूप भाषण किया जाना चाहिए। टीकाकार के अनुसार जैसे–जो स्त्री है या पुरुष है ऐसा निश्चय न होने तक किसी को स्त्री अथवा पुरुष कहना वर्तमान शंकित भाषा है। जो देखा था वह गाय थी या बैल याद न होने पर भी यह कहना कि गाय देखी थी अतीतकालीन भाषा का उदाहरण है।

ELABORATION :

(6, 7) This is a negation of giving uncertain statements. With reference to time there are three types of uncertain language—The

first is related to the future. Any statement about the future is completely prohibited because the future is always uncertain. The second and third are the present and the past. Any statement about these should be made only after being certain of the facts. The commentators explain—To call someone you see as man or woman without making sure of the sex is a doubtful statement about the present. To say that it was a cow you saw when you do not remember if it was a cow or a bull is a doubtful statement about the past.

८ : अइअम्मि य कालम्मि पच्चुप्पन्नमणागए।
जमट्ठं तु न जाणिज्जा एवमेअं ति नो वए॥

९ : अइअम्मि य कालम्मि पच्चुप्पन्नमणागए।
जत्थ संका भवे तं तु एवमेयं ति नो वए॥

१० : अइअम्मि य कालम्मि पच्चुप्पन्नमणागए।
निस्संकिअं भवे जं तु एवमेयं ति निद्दिसे॥

अतीत, वर्तमान तथा अनागत (भविष्य) काल सम्बन्धी जिस अर्थ के स्वरूप को भली प्रकार नहीं जानता हो उसके विषय में 'यह ऐसा ही है'–इस प्रकार कथन नहीं करना चाहिए॥८॥

भूत, वर्तमान और भविष्यकाल में जिस तथ्य-कथ्य के विषय के यदि कोई शका हो तो, उसके विषय में भी 'यह इसी प्रकार है' ऐसा निश्चयात्मक वचन न वोले॥९॥

अतीतकाल, वर्तमानकाल तथा आगामीकाल सम्वन्धी अर्थज्ञान यदि निःशंकित हो (संदेहरहित हो) तो साधु उसके विषय को 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार निश्चयात्मक कह सकता है॥१०॥

8, 9, 10. When one does not fully know any facts about the past, the present and the future he should not give a conclusive statement like—It certainly is like this.

When one is doubtful about any facts about the past, the present and the future he should not give a conclusive statement like—It certainly is like this.

Only when there is no doubt about any facts about the past, the present and the future he should give a conclusive statement like—It certainly is like this.

विशेषार्थ

भाषण के संबंध में आचार्यश्री आत्माराम जी म. कहते हैं—"साधु को सर्वदा बोलते समय प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम प्रमाण का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि जिस प्रमाण के आश्रित होकर जो कहा जाता है वह उसी प्रमाण के विषय में निश्चयात्मक है। साधु को सदा हितकारी और परिमित वचन ही बोलना चाहिए। मुख में आया हुआ अप्रासंगिक वचन नहीं कहना चाहिए, इससे साधु की गरिमा नष्ट होती है।

ELABORATION :

About speech Acharyashri Atmaram ji M says—"A *shraman* should know about the reality, surmise, simile and canonical evidence while speaking This is because all authentication is with reference to the context He should always be brief and benevolent in his speech He should avoid making any irrelevant statement He looses his respect if he does not do that

हिंसा एवं प्रद्वेषकारी भाषा न बोले

११ : तहेव फरुसा भासा गुरुभूओवघाइणी।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा जओ पावस्स आगमो॥

इसी प्रकार जो भाषा रूखी (निष्ठुर) हो, बहुत प्राणियों का घात करने वाली हो, यदि वह सत्य भी हो, तो भी नहीं बोलनी चाहिए। क्योंकि यह भाषा बोलने से पापकर्म का बंध होता है॥११॥

AVOID VIOLENT AND PROVOCATIVE LANGUAGE

11. In the same way he should avoid harsh language and also a provocative statement that may cause harm to beings irrespective

of its being true. This is because such utterance or language is the cause of *karmic* bondage.

विशेषार्थ :

श्लोक ११ गुरुभू-ओवघाइणी–गुरु भूतोपघातिनी–अगस्त्यसिंह चूर्णि मे इसके तीन अर्थ किए गए हैं–(१) वृद्ध आदि गुरुजन अथवा सब जीवों को संताप पहुँचाने वाली, (२) गुरु अर्थात् बडे व्यक्तियों का उपघात करने वाली, तथा (३) गुरु अर्थात् विशाल या व्यापक रूप में भूतोपघात करने वाली, जैसे कोई ऐसी बात कहना जिससे हिंसा भडके और अनेक जीवों का घात या सहार हो जाए। ऐसा सत्य भी वर्जनीय है।

ELABORATION :

(11) ***Gurubhoo-ovaghaini***—*Agastya Simha Churni* gives three meanings of this term—(1) That which hurts elders and *gurus*, (2) That which hurts people of high status, and (3) That which causes harm to a large number of beings; just like a statement that provokes war

१२ : तहेव काणं काणे त्ति पंडगं पंडगे त्ति वा।
वाहियं वा वि रोगि त्ति तेणं चोरे त्ति नो वए॥

१३ : एएणन्नेण अट्ठेण परो जेणुवहम्मई।
आयारभावदोसन्नू न तं भासिज्ज पन्नवं॥

इसी प्रकार सबका हित एवं प्रिय चाहने वाले साधु, काणे को काणा, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी एव चोर को चोर भी न कहे॥१२॥

आचार (–वचन सम्बन्धी) तथा भाव (–चित्त के द्वेष या प्रमाद) के दोषों को जानने वाला प्रज्ञावान् पुरुष पूर्वोक्त कोटि की अथवा अन्य कोटि की वैसी भाषा न बोले जिससे किसी अन्य प्राणी को दुःख पहुँचता हो॥१३॥ (देखें चित्र)

12, 13. An ascetic who wishes well for all should not address someone as one-eyed, impotent, sick and thief, even if he is truly so.

The wise man who is aware of the faults of conduct and thought should never use the above detailed prohibited styles of language or any other style that hurts any being.

१४ : तहेव होले गोले त्ति साणे वा वसुले त्ति अ।
दमए दुहए वावि नेवं भासिज्ज पन्नवं॥

१५ : अज्जिए पज्जिए वावि अम्मो माउस्सिअ त्ति य।
पिउस्सिए भाइणिज्ज त्ति धूए नत्तुणिए त्ति य॥

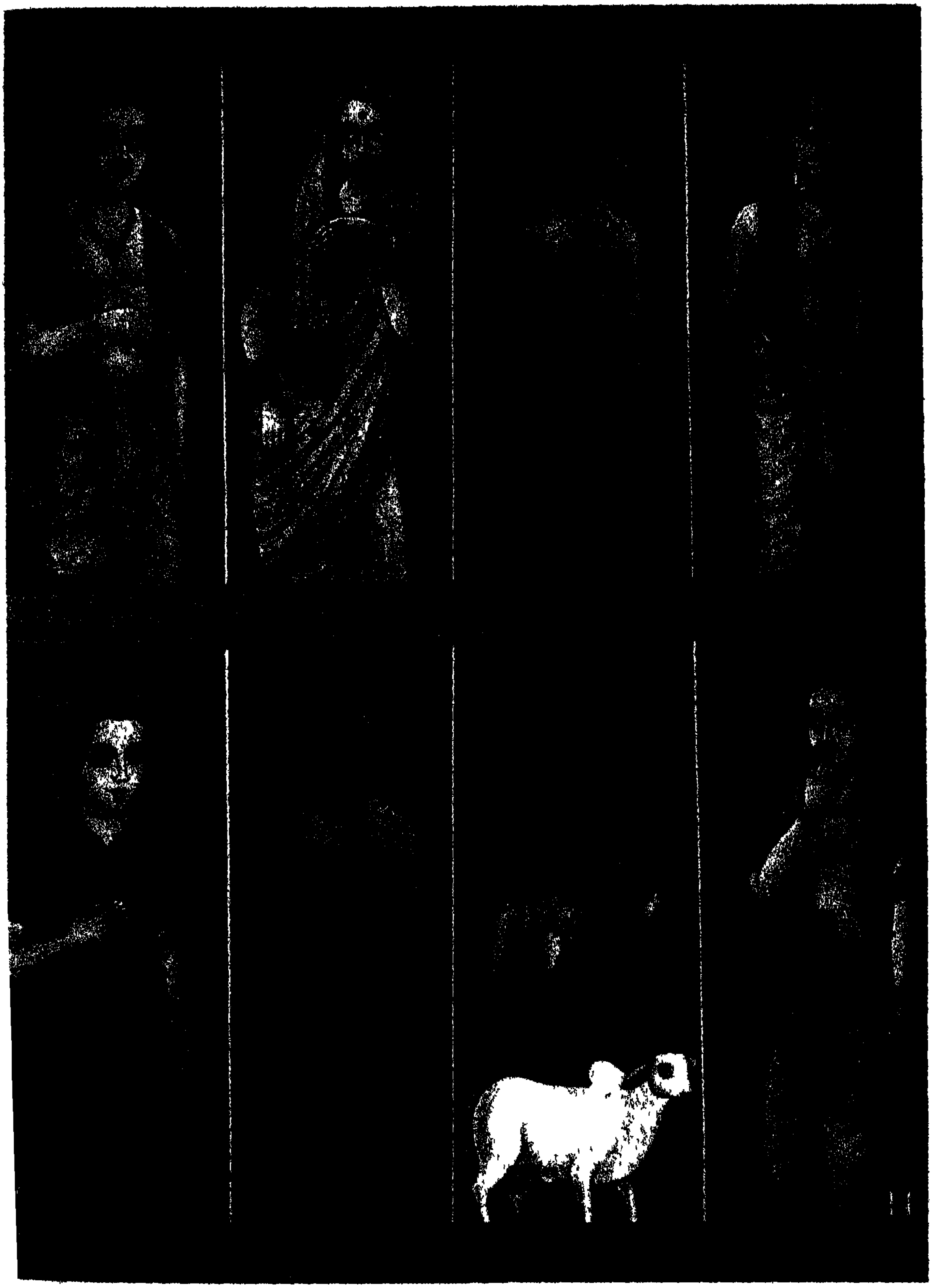
१६ : हले हलि त्ति अन्नि त्ति भट्टे सामिणि गोमिणि।
होले गोले वसुलि त्ति इत्थिअं नेवमालवे॥

इसी प्रकार प्रज्ञाशील मुनि अरे होल ! अरे गोला ! अरे कुक्कर (कुत्ते) ! अरे वसुल (नीच) ! अरे द्रमुक (दरिद्र) ! अरे दुर्भग (भाग्यहीन) ! इत्यादि कठोर वाक्य कभी भी न बोले॥१४॥ (देखें चित्र १३)

स्त्रियों के साथ बातचीत करते समय भी-हे आर्यिके (दादी अथवा नानी) ! हे प्रार्यिके (परदादी) ! हे अम्ब (माँ) ! हे मौसी ! हे बुआ ! हे भाणजी ! हे पुत्री ! हे पौत्री ! हे हले ! हे अन्ने ! हे भट्टे ! हे स्वामिनि ! हे गोमिनि ! हे होले ! हे गोले ! हे वसुले ! इत्यादि स्नेहसिक्त अथवा चाटुकारीपूर्ण तथा निन्दित-गर्हित शब्दों का प्रयोग न करे॥१५-१६॥

14, 15, 16. In the same way a wise *shraman* should never utter such offending words of address as—O fool! O slave! O dog! O rascal! O beggar! or O ill fated! **(illustration 13)**

While talking to women an ascetic should avoid pleasing, flattering or offending terms of address such as—O grand mother! O great grand mother! O mother! O aunt! O niece! O daughter! O grand daughter! O friend! O Hali (a Brahmin woman)! O Anni (a term of address for sister-in-law. At some places it is used for aunt also)! O Bhatte! O Swamini!



अप्रिय कठोर भाषा न बोलें

AVOID USING HARSH AND UNPLEASANT LANGUAGE

तहेव काण काणेत्ति--साधु असत्य और कठोर भाषा तो कदापि न बोले, किन्तु ऐसा अप्रिय सत्य भी न बोले, जिसे सुनने वाले का हृदय दु.खी, अपमानित व हीन-भावना से पीडित हो। (चित्र मे बताये अनुसार) सत्य का आराधक इस प्रकार की भाषा पर प्रतिबन्ध रखे।

काने को काना, नपुसक को नपुसक, रोगी को रोगी, चोर को चोर, अधे को अधा, दरिद्र को दरिद्र, किसी को कुत्ता, गधा, बैल जैसे हीन अपमानजनक सम्बोधन भी न करें। अप्रिय कठोर भाषा न बोले।

(अध्ययन ७, श्लोक १२-१६)

An ascetic should never tell a lie or utter harsh words He should also not say things that, though true, are unpleasant, insulting, or humiliating to others (As shown in the illustrations) One who observes the vow of truth should refrain from using such language

Do not address someone as one-eyed, impotent, sick, a thief, blind, or destitute, even if he is truly so; or also as a dog, donkey, ox; or by using other derogatory terms. Do not use harsh words or unpleasant language.

(Chapter 7, verses 12-16)

O Gomini! (these three are respectful terms of address for women; the like of your lady ship! Her Highness! Lady! Her excellency! etc.) O slave! O witch! O bitch! etc.

१७ : नामधिज्जेण णं बूआ इत्थीगुत्तेण वा पुणो।
जहारिहमभिगिज्झ आलविज्ज लविज्ज वा॥

यदि किसी कारण वश साधु को, स्त्रियों से बोलना पडे तो उसके गुण-दोष का विचार कर उसके प्रसिद्ध नाम से, उसके प्रसिद्ध गोत्र से या यथायोग्य अन्य किसी उपयुक्त शब्द से एक बार अथवा कई बार आमंत्रित करे॥१७॥

17. If at all an ascetic has to address women he should observe her attributes and should call her by her popular name or clan name or any other suitable term of address once or more

विशेषार्थ

श्लोक १७ नामधिज्जेण गोत्तेण–नाम ·· ·· प्राचीन काल मे व्यक्ति के दो नाम होते थे–व्यक्तिगत नाम तथा गोत्रनाम। दोनो का अकेले अथवा सयुक्त रूप से सम्बोधन में प्रयोग किया जाता था। जैसे–भगवान महावीर के लिए **ज्ञातपुत्र वर्द्धमान** शब्द ज्ञातपुत्र उनके गोत्रनाम तथा वर्धमान व्यक्तिगत नाम का सूचन करता है। पाणिनी के अनुसार गोत्र का अर्थ पौत्र आदि अपत्य है। अत· यशस्वी और प्रसिद्ध पुरुष के परपर-वशज गोत्र कहलाते थे। स्थानाग मे काश्यप, गौतम, वत्स, कुत्स, कौशिक, मण्डन तथा वाशिष्ट–ये सात गोत्र बतलाये है। वैदिक साहित्य मे गोत्र शब्द व्यक्ति-विशेष या रक्त-सम्बन्ध से सम्बद्ध जन-समूह के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

इन श्लोको का आशय यह है कि किसी का नाम याद हो तो नाम से, गोत्र याद हो तो गोत्र से या अवस्था, पद आदि दृष्टि से जो उचित व गुणवाचक प्रिय शब्द हो, उसका आमत्रण करे। जैसे–देवानुप्रिय, धर्मप्रिय, धर्मात्मा आदि।

ELABORATION :

(17) ***Namdhijjen***—In the past a person had two names—personal and clan name. Both were used singly or jointly as terms of address. As the name of Bhagavan Mahavir—Jnataputra Vardhaman contains the personal name Vardhaman and the clan

name Jnataputra. According to Panini, the grammarian, *gotra* means progeny and therefore the descendents of a famous or illustrious man use his name as *gotra* or clan name. In the *Sthanang Sutra* there is a mention of seven gotras—*Kashyap, Gautam, Vatsa, Kutsa, Kaushik, Mandan* and *Vashisht* In the Vedic literature *gotra* is defined as a group of people having blood relations with each other and some particular person

If one remembers the name or the clan name of a person he should use that as the term of address If not he should use some term representing the person's virtues or attributes that is proper and not offending For example—Beloved of gods! Revered one! etc

१८ : अज्जए पज्जए वा वि बप्पो चुल्लपिउ त्ति य।
माउलो भाइणिज्ज त्ति पुत्ते नत्तुणिअ त्ति य॥

१९ : हे हो हले त्ति अन्ने त्ति भट्टे सामिय गोमिए।
होल गोल वसुलि त्ति पुरिसं नेवमालवे॥

संसार में लोक व्यवहार को जानने वाले विचारवान मुनि, पुरुष के साथ भी, हे आर्यक (दादा), प्रार्यक (परदादा) पिता, चाचा, मामा, भानजा, पुत्र, पौत्र, हल, अन्न, भट्ट, स्वामिन्, गोमिन्, होल, गोल, वसुल इत्यादि रागवर्द्धक और द्वेषवर्द्धक अयोग्य सम्बोधनो से वार्त्तालाप नहीं करें॥१८-१९॥

18, 19. Those intelligent monks who know the ways of the world do not use derogatory or flattering terms as mentioned above (verse 16) even when they talk to men

उपयुक्त सम्बोधन करे

२० : नामधिज्जेण णं बूया पुरिसगुत्तेण वा पुणो।
जहारिहमभिगिज्झ आलविज्ज लविज्ज वा॥

यदि आवश्यक होने पर कभी किसी पुरुष से बोलना हो तो उसके प्रसिद्ध नाम से या उसके प्रसिद्ध गोत्र से या किसी उपयुक्त सम्बोधन से, गुण-दोषों का विचारकर, एक बार अथवा बारंबार बोला जा सकता है॥२०॥

USE PROPER TERM OF ADDRESS

20. If at all an ascetic has to address men he should observe his attributes and should call him by his popular name or clan name or any other suitable term of address once or more keeping in mind its merits and demerits

२१ : पंचिंदियाण पाणाणं एस इत्थी अयं पुमं।
जाव णं न विजाणिज्जा ताव जाइ त्ति आलवे॥

पंचेन्द्रिय प्राणियों के विषय में, जब तक यह स्त्री है अथवा यह पुरुष है इस प्रकार निश्चय न हो जाय, तब तक भाषा-विवेकी साधु को केवल जाति का आधार लेकर ही बोलना चाहिए, यथा–गाय की जाति, कुत्ते की जाति आदि॥२१॥

21. About a five sensed being, as long as the ascetic, who follows the code of language, is not certain about its sex he should call it by the name of its species For example—a bovine animal instead of cow and a canine instead of dog.

२२ : तहेव माणुसं पसुं, पक्खिं वावि सरीसिवं।
थूले पमेइले वज्झे पायमित्ति य नो वए॥

२३ : परिवुड्ढे त्ति णं बूया बूया उवचिअ त्ति य।
संजाए पीणिए वा वि महाकाय त्ति आलवे॥

इसी प्रकार मनुष्य, पशु, पक्षी एव सर्प आदि को देखकर, ऐसा कभी न कहे कि यह मोटा है, यह पेटू है, यह वध करने योग्य है अथवा यह पकाने योग्य है॥२२॥

उसके विषय में आवश्यकतावश बोलना ही पड़े तो "यह सब प्रकार से पूर्ण है, यह परिपुष्ट है, यह संजात (युवा) है, यह प्रीणित (तृप्त) है, यह महाकाय है" इस प्रकार विचारकर निर्दोष व शालीन भाषा का प्रयोग करना चाहिए॥२३॥

22, 23. In the same way looking at a human being, an animal, a bird and a reptile he should never utter that it is

plump or it is voracious or it is fit to be killed or it is fit to be cooked.

If at all a *shraman* has to comment he should use faultless and sober language such as—it is complete in all respects or it is healthy or it is youthful or it is satiated or it is huge

जीवो की उपघातकारी भाषा न बोले

२४ : तहेव गाओ दुज्झाओ दम्मा गोरहगत्ति य।
वाहिमा रहजोगि त्ति नेवं भासिज्ज पन्नवं॥

२५ : जुवं गवि त्ति णं बूया धेणुं रसदयत्ति य।
रहस्से महल्लए वा वि वए संवहणे त्ति य॥

पूर्वोक्त विवेक के अनुसार ही बुद्धिमान् साधु ऐसा न बोले—ये गायें दोहने योग्य हैं तथा ये बछडे दमन (बधिया) करने योग्य है, भार वहन करने योग्य है, और रथ में जोतने योग्य हैं—क्योंकि ये पर-पीड़ाकारी वचन है॥२४॥

यदि कभी आवश्यक होने पर बोलना हो तो दोह्य गाय को दुग्धदा, दमन करने योग्य वृषभ को युवा, छोटे वृषभ के लिए लघु, वृद्ध वृषभ के लिए वृद्ध एवं रथ योग्य वृषभ के लिए संवहन—(धुरा का वहन करने वाला) आदि शब्द कहा जा सकता है॥२५॥

REFRAIN USING LANGUAGE HARMFUL TO BEINGS

24, 25. Following the same rule a wise *shraman* should avoid such statements—these cows are ready to be milked or this calf is ready to be castrated or to become load bearer or to be yoked to a cart—because they are fore-bearers of pain to other beings.

If at all a *shraman* has to comment he should use faultless and sober language such as—these cows are heavy with milk, this calf is mature (for the one to be castrated) or small or old or agile and strong (for the one to be yoked to a cart).

२६ : तहेव गंतुमुज्जाणं पव्वयाणि वणाणि य।
रुक्खा महल्ल पेहाए नेवं भासिज्ज पन्नवं॥
२७ : अलं पासायखंभाणं तोरणाणि गिहाणि अ।
फलिहग्गलनावाणं अलं उदगदोणिणं॥

प्रज्ञावान् साधु उद्यानों, पहाड़ों एवं वनों मे जाकर, वहाँ विशालकाय वृक्षों को देखकर ये वृक्ष प्रासाद, स्तम्भ, तोरण (नगर-द्वार), गृह, परिघ, अर्गला, नौका एवं पानी की कुण्डी–डोंगी वनाने के योग्य हैं। ऐसी सावद्य हिंसाकारी भाषा न बोले॥२६-२७॥

26, 27. When he is in a jungle and sees giant trees, a wise ascetic should avoid the use of faulty and offensive language such as—these trees are suitable for making mansions, pillars, arches or gates, houses, door-bars, boat and water-tub

२८ : पीढए चंगबेरे य नंगले मइअं सिआ।
जंतलट्ठी व नाभी वा गंडिया व अलं सिया॥
२९ : आसणं सयणं जाणं हुज्जा वा किंचुवस्सए।
भूओवघाइणिं भासं नेवं भासिज्ज पन्नवं॥

ऐसा भी न वोले-ये वृक्ष चौकी के लिए, चंगेरी (काष्ठ-पात्र) के लिए, हल के लिए, मयिक (कृषि उपकरण) के लिए, कोल्हू के लिए, पहिये की नाभि के लिए, सुनार आदि की ऐरण रखने की गण्डिका के लिए काम के हैं॥२८॥

तथा "यह वृक्ष अच्छा है, इसकी आसन, शयन, यान अथवा उपाश्रय योग्य अन्य कोई द्वार आदि वस्तु बहुत सुन्दर बन सकती है" विवेकवान् साधु इस प्रकार की जीवों का घात करने वाली हिंसक भाषा का प्रयोग न करे॥२९॥

28, 29. He should also not say—these trees are suitable for making stools, vessels, ploughs and their accessories, oil crusher, wheel-hubs, tool-stands for gold smiths, etc.

Also a disciplined *shraman* should not utter offending words that cause harm to beings such as—this tree is good

and could be used to make a beautiful stool, bench and palanquin or things like gates for use in the abode of ascetics.

३० : तहेव गंतुमुज्जाणं पव्वयाणि वणाणि अ।
रुक्खा महल्ल पेहाए एवं भासिज्ज पन्नवं॥
३१ : जाइमंता इमे रुक्खा दीहवट्टा महालया।
पयायसाला विडिमा वए दरिसणि त्ति य॥

इसी प्रकार उद्यानो, पर्वतो तथा वनों में गया हुआ साधु वहाँ पर खड़े विशालकाय वृक्षों को देखकर यदि जरूरत हो तो सूत्रोक्त रीति से निरवद्य भाषा का प्रयोग करे॥३०॥

जैसे कि ये वृक्ष उत्तम जाति के हैं, ऊँचे है, गोल है, विस्तार वाले हैं, अनेक शाखा और प्रशाखा वाले हैं और दर्शनीय हैं॥३१॥

30, 31. After seeing large trees in gardens, hills or jungles, if at all he wants to make a comment he should use benign words or language that conforms to the rules laid down in scriptures

For example—These are very good quality trees, these trees are tall, well rounded, well spread, lush with numerous branches and beautiful.

३२ : तहा फलाइं पक्काइं पायखज्जाइं नो वए।
वेलोइयाइं टालाइं वेहिमाइ त्ति नो वए॥
३३ : असंथडा इमे अंबा बहुनिवडिमा फला।
वइज्ज बहुसंभूया भूयरूव त्ति वा पुणो॥

फल आदि के सम्बन्ध में भी साधु ऐसी भाषा न वोले कि फल पके हुए हैं या पकाकर खाने योग्य है, तुरंत तोडने योग्य हैं, इनमें गुठली नहीं है, ये सुकोमल हैं और फॉक करने योग्य हैं॥३२॥

आवश्यक होने पर साधु इस प्रकार बोल सकता है—ये आम्र वृक्ष फल भार सहने में असमर्थ हैं, इनमें गुठलियों वाले फल वहुत अधिक लगे हुए हैं, इनके

वहुत से फल पक गये हैं तथा इनमें ऐसे फल बहुत हैं जिनमें अभी तक गुठली नहीं पडी और कोमल हैं॥३३॥

32, 33. Even about fruits an ascetic should avoid such language—these are ripe fruits; these can be eaten after seasoning; these are ready to be plucked, these are free of kernels, these are soft enough to be sliced.

If at all he wants to make a comment he should say—these trees are heavy with fruits; there are numerous fruits with kernels on this tree, many fruits on this tree have ripened and many others that are soft and without kernels.

३४ : तहेवोसहीओ पक्काओ नीलिआओ छवीइअ।
लाइमा भज्जिमाओ त्ति पिहुखज्ज त्ति नो वए॥

३५ : रूढा बहुसंभूआ थिरा ऊसढा वि अ।
गब्भिआओ पसूआओ संसाराओ त्ति आलवे॥

इसी प्रकार खेतो में खडे धान्यों के विषय में भी ऐसी सावद्य भाषा न बोले–जैसे कि ये धान्य पक गये हैं, ये नीली छाल वाले (कच्चे) हैं, ये काटने योग्य हैं, ये भूनने योग्य है, ये चिड़वा वनाकर खाने योग्य हैं॥३४॥

यदि प्रसगवश बोलना आवश्यक हो तो इस प्रकार वोले–'जैसे कि ये धान्य अंकुर रूप मे उग गये हैं। लगभग पक गये हैं, स्थिर हो गये हैं, वड़े हो गये हैं, अभी भुट्टे निकले नहीं हैं। अभी सिट्टे (वालियाँ) निकल चुके है। अथवा वीज भी पड गये हैं॥३५॥

34, 35. In the same way he should avoid offending language about crops in the field—these ears are ripe; these are still green; these are ready to be harvested; these are ready to be roasted; these are ready to be compressed and cooked.

If at all he wants to make a comment he should say—these seeds have sprouted; they have become plants; they are now

stable; they have now grown; they have not yet flowered; the ears are out now; now they are seed bearing ears.

विशेषार्थ :

श्लोक ३५ इस श्लोक मे धान की सभी अवस्थाओं का उल्लेख है। बीज बोने के पश्चात् जब बीज में से अकुर निकलता है उस अवस्था को 'रूढ़' कहते हैं। धरती फोडकर अकुर बाहर निकलते है और पहली पत्ती बनती हैं उस अवस्था को 'सम्भूत' कहते हैं। बीज मे मे धरती की ओर जब जडे फैलने लगती हैं उस अवस्था को 'स्थिर' कहते है। तना जब तक ऊपर की ओर बढता है उस अवस्था को 'उत्सृत' कहते हैं। तना पूर्ण विकसित हो जाता है पर सिरे पर भुट्टा नही निकलता वह अवस्था 'गर्भित' कहलाती है। भुट्टा निकलने की अवस्था 'प्रसूत' होती है और दाने पड जाने पर उसे 'ससार' कहते हैं।

ELABORATION :

(35) This verse mentions the various stages of growth of a cereal plant. After sowing, when the seed sprouts it is called *roodh* When the sprout emerges out of the soil and turns into first leaf it is called *sambhoot* When the roots spread down from the seed it is called *sthir* When the stalk grows upwards it is called *utsrit*. When the stalk reaches its maximum height but the ear is yet to grow it is called *garbhit* When the ears are out it is called *prasoot* When the ears are full of grains it is called *sansaar*

३६ : तहेव संखडिं नच्चा किच्चं कज्जं तिं नो वए।
तेणगं वा वि वज्झि त्ति सुतित्थ त्ति य आवगा॥

३७ : संखडिं संखडिं बूया पणिअट्ठ त्ति तेणगं।
बहुसमाणि तित्थाणि आवगाणं विआगरे॥

किसी गृहस्थ के घर पर संखडी-जीमनवार होता जानकर "यह पित्रादि निमित्त पुण्य-कार्य गृहस्थ को करना चाहिए" तथा चोर को देखकर यह चोर मारने योग्य है; तथा अच्छे घाट वाली नदी को देखकर "इस नदी का तीर अच्छा है"; इस प्रकार की सावद्य भाषा नहीं बोलनी चाहिए॥३६॥

प्रयोजनवश बोलना पड़े तो विद्वान् साधु जीमनवार को यह संखडि है, चोर को यह धन के लिए संकट सहकर स्वार्थ सिद्ध करने वाला है, नदी को यह नदी समतल तट वाली है, इस प्रकार की निरवद्य भाषा बोले॥३७॥

36, 37. A *shraman* should also not use a language that gives impression of his liking for things or acts that are prohibited for an ascetic. Such as—When he comes to know of a feast at some place he should not say that a householder should indulge in such welfare activities in memory of his ancestors. When he sees a thief he should not say that this thief should be beaten. And when he sees a well made bankment on a river-bank he should not say that how beautiful the bank was.

If at all he wants to make a comment he should say—This is a feast. He earns his living by embracing trouble. This is a level bankment—instead of the above said statements.

३८ : तहा नईओ पुन्नाओ कायतिज्ज त्ति नो वए।
नावाहिं तारिमाउ त्ति पाणिपिज्ज त्ति नो वए॥

३९ : बहुवाहडा अगाहा बहुसलिलुप्पिलोदगा।
बहुवित्थडोदगा आवि एवं भासिज्ज पन्नवं॥

इसी प्रकार नदियों के विषय मे "ये नदियाँ जल से पूरी तरह भरी हुई बह रही है, भुजाओ से तैरकर पार करने योग्य हैं, नौकाओं द्वारा तैरने योग्य हैं, तथा इसके तट पर सभी प्राणी सुखपूर्वक बैठकर जल पी सकते हैं" इस प्रकार नहीं बोलना चाहिए॥३८॥

नदियों को देखकर यदि कुछ कहना ही हो तो इस प्रकार कह सकता है कि "ये नदियाँ प्रायः जल से भरी हुई हैं, गम्भीर हैं (गहरी हैं), अन्य नदियों के जल-प्रवाह को पीछे हटाने वाली हैं, बहुत विस्तृत पानी वाली हैं और चौड़े पाट वाली हैं।"॥३९॥

38, 39. In the same way an ascetic should not say about rivers—These rivers are plentiful of water; this entices one to swim across, this entices one to boating; on its banks any or all beings can sit and drink its water.

If at all he wants to make a comment he should say—These rivers are generally plentiful of water; these rivers are deep; they have a strong current; they have a wide bed.

सावद्य भाषा वर्जन

४० : तहेव सावज्जं जोगं परस्सट्ठाए निट्ठिअं।
कीरमाणं ति वा नच्चा सावज्जं न लवे मुणी॥

४१ : सुकडि त्ति सुपक्कि त्ति सुछिन्ने सुहडे मडे।
सुनिट्ठिए सुलट्ठि त्ति सावज्जं वज्जए मुणी॥

गृहस्थ का ऐसा सावद्य कार्य-जो दूसरे के वास्ते भूतकाल में किया गया हो या वर्तमानकाल में हो रहा हो या भविष्य में होगा उस विषय मे मुनि ऐसी भाषा नहीं बोले जैसे कि-अच्छा किया यह विशाल भवन वना लिया, अच्छा हुआ यह सहस्रपाक तेल आदि पका लिया, अच्छा हुआ यह विकट वन आदि काट लिया, अच्छा हुआ उस नीच के घर चोरी हो गई, अच्छा हुआ वह दुष्ट निन्दक मर गया, अच्छा हुआ जो उस अभिमानी का धन मूल से नष्ट हो गया तथा अच्छा हो यह इस कन्या का विवाह हो जाय क्योंकि यह बड़ी सुन्दर है॥४०-४१॥

NEGATION OF DISCUSSING MUNDANE ACTIVITIES

40, 41. About some mundane activity of a householder done in the past, being done at present or to be done in the future an ascetic should not pass a comment as—It is good that he has constructed this large house. He has done good by cooking this medicated oil. How nice to have cut all the trees of this dense forest. That rogue deserved his wealth being stolen. That villainous slanderer died, a good riddance. That egotist

deserved loosing all his wealth. This is a beautiful girl, how nice if she gets married soon.

विशेषार्थ :

श्लोक ४०, ४१. इस श्लोक में सुकृत आदि सभी शब्द विशेषण हैं और किसी क्रिया विशिष्ट की प्रशंसा हेतु उपयोग मे लाये जाते हैं। इनमें सामान्य क्रियाओं सम्बन्धी उपयोग ऊपर दिये हैं। अनेक विद्वानों का मत है कि यहाँ इनका इंगित केवल भोजन विषयक क्रियाओं से है। आचार्य महाप्रज्ञ जी का मत है कि चूर्णि एव टीकाकार आचार्यों ने इनके उदाहरण भोजन विषयक भी दिये हैं। उत्तराध्ययन की कमलसंयमी टीका में भी सभी उदाहरण भोजन विषयक मिलते हैं। दोनों मत ही उपयुक्त लगते हैं। अत: भोजन विषयक उपयोग के संदर्भ में अर्थ इस प्रकार होगा–"बहुत अच्छा किया है (भोजन), बहुत अच्छा पकाया है (पकवान), बहुत अच्छा छेदा है (पत्ते की सब्जी आदि), बहुत अच्छा हरण किया है (कसैला आदि अरुचिकर स्वाद), बहुत अच्छा मरा है (घी आदि रम जाना), बहुत अच्छा रस बना है, बहुत इष्ट स्वादिष्ट चावल बना है। मुनि ऐसे वचनों का प्रयोग न करे।

सावद्यता क्रिया में होती है, विशेषणों मे नही। इसलिए ये सभी विशेषण निरवद्य क्रियाओं के सदर्भ में उपयोग में लाये जा सकते हैं। जैसे–"इसने बहुत अच्छी सेवा की, इसका ज्ञान परिपक्व है, इसने ग्रन्थियो का भली प्रकार छेदन किया है आदि।

ELABORATION :

(40, 41) The words used in this verse are adjectives used to praise some specific activity. Some common activities have been narrated above. Many scholars are of the opinion that these activities are confined to the subject of food or cooking. Acharya Mahaprajna says that the commentators have also included examples related to food. In the *Kamal-samyami Teeka of Uttaradhyayan Sutra* also, all the examples are related to food. Both the views appear to be logical So we give the food related examples also—Nicely done (food); nicely cooked (food); well pierced (vegetables, etc.); well treated (removal of bitterness); well absorbed (oil); has very good curry; excellent taste.

Any possible harm is in the activity and not in the adjective. Therefore, all these words can be used if they are referring to benign or benevolent activities. For example—He has taken very good care. His knowledge is ripe. He has destroyed well all his vices

४२ : पयत्तपक्कि त्ति व पक्कमालवे पयत्तछिन्न त्ति व छिन्नमालवे।
पयत्तलट्ठि त्ति व कम्महेउअं पहारगाढ त्ति व गाढमालवे॥

यदि आवश्यकता होने पर बोलना पड़े तो साधु ऐसा बोले–जो अच्छा पकाया गया हो, उसे प्रयत्न से पकाया हुआ, जो अच्छा काटा गया हो उसे प्रयत्न से काटा हुआ, जो सुरुचिपूर्ण है उसे प्रयत्न से सम्पन्न किया हुआ ऐसा कहें तथा शृंगारादि को कर्मबंधन का कारण एवं गाढ़ को, गाढ़ प्रहार (गहरा घाव) कह सकता है॥४२॥

42. If at all he wants to make a comment he should say—A lot of effort has been made in cooking (for what is nicely cooked). It has been laboriously sliced (for what is nicely sliced). It has been done with a lot of attention (for what is tastefully done).

४३ : सव्वुक्कसं परग्घं वा अउलं नत्थि एरिसं।
अचक्कियमवत्तव्वं अचिअत्तं चेव नो वए॥

इसी प्रकार क्रय-विक्रय का प्रसंग देखकर सावद्य व्यापार विषयक भाषण कभी नही करना चाहिए। यह वस्तु सबसे उत्तम है, यह बहुत अधिक मूल्य वाली है, यह अनुपम (अनूठी) है, इसके तुल्य दूसरी कोई वस्तु नहीं है, यह बेचने योग्य नहीं है, यह बहुत गुण वाली है, इसकी विशेषता बताई नहीं जा सकती, यह वस्तु घृणाकारक (गन्दी) है इत्यादि॥४३॥

43. In case of witnessing some business dealings an ascetic should never comment about the non-ascetic business activities, such as—This thing is the best; this is very costly; this is unique; this has no parallel; this is not for sale; this has many qualities; it is impossible to tell its qualities; or this is a dirty thing.

विचार पूर्वक बोले

४४ : सव्वमेअं वइस्सामि सव्वमेअं ति नो वए।
अणुवीइ सव्वं सव्वत्थ एवं भासिज्ज पन्नवं॥

(कोई साधु के साथ सन्देश कहलाये तब) ऐसा न कहे–आप निश्चित रहें ये आपकी सब बातें मैं उसको ठीक-ठीक कह दूँगा। (किसी का सन्देश देते समय) मेरी कही हुई ये सब बातें पूर्ण हैं इन्हें ज्यों की त्यों कहना। जब बोलना आवश्यक हो, तब विचारवान साधु सभी स्थानों पर सब बातों को एक-एक करके विवेक की कसौटी पर परख करके बोले॥४४॥

THINK BEFORE SPEAKING

44. When carrying a message an ascetic should not say—"Don't worry, I shall convey exactly as you have said." When sending a message he should not tell to the messenger—"What I say should be exactly conveyed as I have told." When it is necessary to speak, a wise ascetic should, at all places, first examine sagaciously every word and then utter.

४५ : सुक्कीअं वा सुविक्कीअं अकिज्जं किज्जमेव वा।
इमं गेण्ह इमं मुंच पणिअं नो वियागरे॥

४६ : अप्पग्घे वा महग्घे वा कए वा विक्कए वि वा।
पणिअट्ठे समुप्पन्ने अणवज्जं वियागरे॥

श्रमण व्यापार के विषय में ऐसा न बोले "अच्छा किया यह किराना खरीद लिया (बहुत सस्ता मिला) और यह माल बेच दिया (बहुत नफा कमाया) यह माल ले लो (महँगा होने वाला है) और यह बेच दो आदि॥४५॥

अल्प मूल्य वाले तथा बहुमूल्य वाले माल के खरीदने और बेचने के विषय में यदि कभी कोई प्रसंग आ पड़े हो तो साधु को पूर्ण निश्चय से अनवद्य वचन बोलना चाहिए॥४६॥

45, 46. A *shraman* should not pass such comment about trading—You have done a good thing to buy these provisions as they are cheap. Good that you have-sold these goods at sizable profit. Buy this because its prices will rise. Sell this because the prices are going to fall.

If there is some necessity to say anything about purchase of low or high priced goods an ascetic should say only the right thing after properly ascertaining its authenticity.

विशेषार्थ :

श्लोक ४६. इस सम्बन्ध में आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज ने स्पष्ट कहा है कि साधुओं को व्यापार सम्बन्धी वार्त्तालाप करने का कोई अधिकार ही नही है क्योंकि व्यवसाय का उनके लिए अभाव है। यथा–'नाधिकारोऽत्रतपस्विना व्यापाराभावादिति।'

ELABORATION :

(46) In this context Acharyashri Atmaram ji M. has conclusively said—ascetics have no right to say anything about business activities because any commerce is completely prohibited for them.

४७ : तहेवासंजयं धीरो आस एहि करेहि वा।
सय चिट्ठ वयाहि त्ति नेवं भासिज्ज पन्नवं॥

इसी क्रम में आगे–बुद्धिमान् और धृतिवान् साधु असंयत गृहस्थों के लिए ऐसा न वोले–यहाँ बैठो, इधर आओ, अमुक कार्य करो, सो जाओ, खड़े रहो, चले जाओ, इस प्रकार के वचनों का प्रयोग नहीं करना। क्योंकि यह सव सावद्य भाषा है॥४७॥

47. Also, wise and composed ascetics should not say to the householders—Sit here; come here; do this; go to sleep; keep standing; go away; etc. This is faulty language.

४८ : बहवे इमे असाहू लोए वुच्चंति साहुणो।
न लवे असाहुं साहु त्ति साहुं साहु त्ति आलवे॥

४९ : नाणदंसणसंपन्नं संजमे अ तवे रयं।
एवं गुणसमाउत्तं संजयं साहुमालवे॥

संसार में बहुत से ऐसे असाधु हैं, जो जनसाधारण में साधु कहे जाते हैं। किन्तु विवेकशील साधु, असाधु को साधु न कहे, अपितु जो साधु हो उसी को साधु कहे॥४८॥

जो श्रमण ज्ञान, दर्शन और चारित्र गुण से सम्पन्न हो, संयम और तप की आराधना में पूर्ण रूप से संलग्न हो, इस प्रकार जो गुणयुक्त है उसी को साधु कहना चाहिए॥४९॥

48, 49. In this world there are many impostors who are called ascetics by ignorant people. But a disciplined *shraman* should not call an impostor an ascetic. He should call an ascetic only who really is.

Only he should be called an ascetic who has virtues like right knowledge, perception and conduct and who is deeply involved in the practices of discipline and austerities.

उत्तेजक शब्द न बोलें

५० : देवाणं मणुयाणं च तिरियाणं च वुग्गहे।
अमुगाणं जओ होउ मा वा होउ त्ति नो वए॥

देवता, मनुष्यों और तिर्यंच-पशुओं के परस्पर युद्ध होता देखकर अमुक की जीत हो और अमुक की हार हो, ऐसा हिंसा उत्तेजक वचन साधु को नहीं कहना चाहिए॥५०॥

UTTER NO PROVOCATIVE WORD

50. Seeing gods, men and animals at war a *shraman* should not say that this group should win and that should lose.

५१ : वाओ वुट्ठं च सीउण्हं खेमं धायं सिवं ति वा।
कया णु होज्ज एयाणि मा वा होउ त्ति नो वए॥

धूप, गर्मी आदि से पीड़ित साधु को अपनी पीड़ा निवृत्ति के लिए वायु, वर्षा, सर्दी, गर्मी, उष्ण, क्षेम रोगादि की शान्ति सुभिक्ष और कल्याण के विषय में ऐसा नहीं कहना चाहिए-"ये कब होंगे अथवा ये न हों तो अच्छा रहे।"॥५१॥

51. About wind, rain, cold, heat, well being, relief and benefit an ascetic should not say expectantly—"When will this

come to his rescue?" or wishing them away—"It would be good if he does not have to face this."

५२ : तहेव मेहं व नहं व माणवं न देव देव त्ति गिरं वइज्जा।
सम्मुच्छिए उन्नए वा पओए वइज्ज वा वुट्ठ बलाहय त्ति॥

मेघ, आकाश तथा मनुष्य के लिए "यह देवता है" ऐसा वचन न कहे। हाँ मेघ के लिए "यह मेघ चढ़ा हुआ है", "यह बरसने वाला है", "ऊँचा आ रहा है", "बरस गया है" इत्यादि वचन कह सकता है॥५२॥

52. About clouds, sky and man he should not say that this was a god. Instead, he should say—The clouds are hovering. It is going to rain. It is rising high. It has rained.

५३ : अंतलिक्खं त्ति णं बूया गुज्झाणुचरिअ त्ति अ।
रिद्धिमंतं नरं दिस्स रिद्धिमंतं त्ति आलवे॥

आकाश को अन्तरिक्ष एवं गुह्यानुचरित देवों के चलने का मार्ग है ऐसा कहे। इसी प्रकार सम्पत्तिशाली मनुष्य को सम्पत्तिशाली है ऐसा कहे॥५३॥

53. For sky he could say—"It is space and is the path where the celestial bodies or divine things move." In the same way for a richly endowed man he should say—"He is a talented person"

५४ : तहेव सावज्जणुमोयणी गिरा ओहारिणी जा अ परोवघाइणी
से कोह लोह भय हास माणवो न हासमाणो वि गिरं वइज्जा॥

इसी प्रकार विचारशील मुनि ऐसी भाषा न वोले जो पापकर्म की अनुमोदना करने वाली, निश्चयकारिणी दूसरे जीवों को पीड़ा पहुँचाने वाली हो, तथा क्रोध, लोभ, भय एवं परिहास के वश होकर भी कोई वचन न बोले॥५४॥

54. Thus a *shraman* should refrain from using such language that approves of sinful activities, conveys certainty, and is offending to other beings So also he should not utter under influence of anger, greed, fear and mockery.

मृदु–मितभाषी बनें

५५ : सुवक्कसुद्धिं समुपेहिया मुणी गिरं च दुट्ठं परिवज्जए सया।
मियं अदुट्ठं अणुवीइ भासए सयाण मज्झे लहई पसंसणं॥

जो मुनि भाषा की शुद्धि के समस्त भेद-प्रभेदों का पूर्णतया चिन्तन करके निन्दित भाषा को तो छोड़ देता है और बोलने से पहले ही हानि-लाभ का पूर्ण विचार करके फिर दुष्टतारहित हित, मित, भाषा बोलता है। ऐसा मुनि सत्पुरुषों में प्रशंसा प्राप्त करता है॥५५॥

USE PLEASING AND SWEET LANGUAGE

55. The *shraman* who contemplates on all the attributes of pure and pious language, refrains from using bad language, considers the consequences before speaking and then, speaks without viciousness and with brevity and goodwill, draws praise from the sages.

५६ : भासाए दोसे अ गुणे य जाणिआ तीसे अ दुट्ठे परिवज्जए सया।
छसु संजए सामणिए सया जए वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमिअं॥

सदा षट्कायिक जीवों की रक्षा करने वाला तथा संयम में पुरुषार्थ करने वाला सम्यग्ज्ञानी मुनि, पिछले प्रकरण में कहे भाषा के गुण और दोषों को अच्छी प्रकार जानकर, दुष्ट व कठोर भाषा को तो छोड़ दे और काम पड़ने पर केवल स्व-पर हितकारी एवं आनुलोमिक–अनुकूल मधुर भाषा ही बोले॥५६॥

56. A sagacious ascetic who is ever indulgent in discipline and protecting the six classes of beings should learn all the qualities and errors of language and then refrain from using harsh and vicious language. When necessary he should use pleasing and sweet language that benefits self as well as others.

५७ : परिक्खभासी सुसमाहिइंदिए चउक्कसायावगए अणिस्सिए।
स निद्धुणे धुन्नमलं पुरेकडं आराहए लोगमिणं तहा परं॥
त्ति बेमि।

जो गुण-दोष की परीक्षा करके बोलने वाला है, जो समस्त इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला है, जो चार कषायों का पूर्ण निरोध करने वाला है, वही अनिश्रित–तटस्थ वृत्ति वाला साधु, पूर्वजन्मोपार्जित कर्ममल को दूर कर लोक और परलोक दोनों की सम्यक् प्रकार से आराधना करता है॥५७॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

57. Only that impartial ascetic removes the *karmic* dust collected during earlier births and benefits this and the next birth, who speaks only after weighing consequences, has disciplined all his senses and has complete control over the four passions ..... So I say.

उपसहार

वाक्य शुद्धि का यह वर्णन धर्म एव नीति दोनो दृष्टियो से किया गया है।

मुनि ऐसी भाषा नही बोले, जिसमे किसी जीव की हिसा का सम्बन्ध जुडता हो। यह अहिसा धर्म की सूक्ष्म दृष्टि है। तथा विचारपूर्वक बोले, हित, मित प्रिय, मनोहर, अनुलोम-अनुकूल लगने वाला नि:शकित वचन बोले–यह नीति तथा लोक व्यवहार की दृष्टि है। मुनि पहले धर्म की दृष्टि से विचारकर, फिर नीति दृष्टि से और फिर दोनो दृष्टियो का समन्वित विचारकर भाषा का प्रयोग करे–यही प्रस्तुत अध्ययन का प्रतिपाद्य है।

Conclusion

This elaboration of the purity of speech has been done from religious as well as ethical viewpoints An ascetic should not use a language that in any way inspires harm to beings This is the subtle application of religion of *ahimsa* He should use sweet, pleasing and beneficent and unambiguous language This is the ethical and behavioral application. An ascetic should first consider the religious angle and then the ethical angle His use of language should be based on a judicious amalgamation of these two considerations This is the subject discussed in this chapter.

॥ सातवाँ अध्ययन समाप्त ॥

END OF SEVEN CHAPTER

आठवाँ अध्ययन : आचार प्रणिधि

प्राथमिक

श्रमण के आचार का वर्णन तीसरे एवं छठे अध्ययन में किया जा चुका है। फिर सातवें अध्ययन मे आचारवान की भाषासमिति का विशद वर्णन हुआ है। इस आचार-प्रणिधि नामक आठवें अध्ययन में आचार में निष्ठापूर्वक, लक्ष्यबद्ध गति करते हुए राग-द्वेष की वृत्तियों से निर्लिप्त रहने का मार्गदर्शन किया गया है।

आचार-प्रणिधि का एक अर्थ है आचाररूप निधि की रक्षा के उपाय। प्रणिधि का दूसरा अर्थ है-प्रवृत्ति। आचार्य भद्रबाहु ने दूसरे अर्थ को मुख्यता देते हुए कहा है-इस अध्ययन में श्रमण को दुष्प्रणिहित-राग-द्वेष में प्रवृत्त इन्द्रियो पर ज्ञान की लगाम डालने की सूचना दी है क्योंकि जैसे-अनियंत्रित अश्व सारथि को कुमार्ग में ले जाकर पटक देता है उसी प्रकार दुष्प्रणिहित इन्द्रियाँ श्रमण को कुमार्गगामी बना देती हैं-

जस्स खलु दुप्पणिहिआणि इंदिआइ तवं चरंतस्स।
सो हीरइ असहीणेहिं सारही वा तुरंगेहि॥ —*निर्युक्ति* २९९

उन अप्रशस्त इन्द्रियों को प्रशस्त सयममार्ग मे प्रवृत्त करना, कषायों पर नियंत्रण रखना, निद्रा, हास्य, विकथा आदि का वर्जन करना यही इस अध्ययन का मुख्य विषय है जिसे **आचार-प्रणिधि** कहा गया है।

इस अध्ययन की बहुत-सी गाथाएँ संक्षिप्त मे बड़ी भावपूर्ण होने से सुभाषित की तरह हैं। कषायों का उपशमन करने का बहुत ही सुन्दर उपदेश इनमें है।

भद्रबाहु स्वामी के कथनानुसार नवें प्रत्याख्यान प्रवाद नामक पूर्व की तृतीय वस्तु से यह अंश उद्धृत किया गया है।

EIGHTH CHAPTER : CULTIVATING CONDUCT

INTRODUCTION

Details about the conduct proper of an ascetic has been mentioned in chapters third and sixth. In the seventh chapter the discipline of speech has been discussed in details In this eighth chapter titled Achar Pranidhi, directions have been given for remaining unaffected from attachment and aversion while sincerely moving towards the goal

One meaning of the term Achar Pranidhi is—the methods of protecting the wealth that is conduct. Another meaning is—indulgence in conduct, or to sincerely follow the codes of conduct. Laying emphasis on the second meaning Acharya Bhadrabahu has said—"In this chapter the *shraman* is advised to control the leaning of his senses towards attachment and aversion with the rein of knowledge; because as an unbridled horse takes the rider on the wrong path, so do the senses if not disciplined, they push the practicer on the wrong path (*Dashavaikalik Niryukti* 299)

To steer those debased senses on the graceful path of discipline, to keep control over passions and to refrain from activities like slumber, mockery, ill-speech, etc. are the important topics discussed in this chapter.

Many of the verses of this chapter encompass lofty ideals with eloquence, making them aphorisms These contain forceful sermons for disciplining the senses

According to Bhadrabahu Swami this chapter has been excerpted from the third section of *Pratyakhyan Pravad*, the ninth *Purva*

■■

अट्ठमं अज्झयणं : आयारपणिहि
आठवाँ अध्ययन : आचार-प्रणिधि

EIGHTH CHAPTER : AYAR PANIHI
CULTIVATING CONDUCT

आचार-निधि

१ : आयारप्पणिहिं लद्धुं जहा कायव्व भिक्खुणा।
तं भे उदाहरिस्सामि आणुपुव्विं सुणेह मे॥

आचार की उत्कृष्ट निधि प्राप्त करने के बाद साधु का व्यवहार किस प्रकार होना चाहिए इसका वर्णन मैं तुमसे करता हूँ। उसे तुम सावधान होकर यथाक्रम सुनो॥१॥

WEALTH OF CONDUCT

1. Now I will tell you in proper sequence about what should be the behavior of a *shraman* after he acquires the unique wealth of right conduct. Listen attentively.

विशेषार्थ :

श्लोक १. आयारप्पणिहिं–आचार-प्रणिधि–आचार में समाधि अथवा एकाग्रता, सम्पूर्ण समर्पण तथा दृढ़ मानसिक संकल्प को आचार-प्रणिधि कहते हैं। आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज ने आचार-प्रणिधि का अर्थ साधु के उत्तम आचार रूप निधि या खजाना किया है।

ELABORATION :

(1) ***Ayarappanihim***—concentration and indulgence with complete devotion and resolve in following the right conduct. Acharyashri Atmaram ji M. has interpreted it as the unique wealth of good ascetic conduct.

२ : पुढवि-दग-अगणि-मारुअ तणरुक्ख सबीयगा।
तसा य पाणा जीव त्ति इइ वुत्तं महेसिणा॥

३ : तेसिं अच्छणजोएण निच्चं होयव्वयं सिआ।
मणसा कायवक्केण एवं हवइ संजए॥

महर्षि भगवान महावीर ने बताया है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और तृण-वृक्ष-बीज आदि वनस्पति तथा नाना प्रकार के त्रस प्राणी, ये सभी चेतना स्वभाव वाले जीव हैं॥२॥

पूर्वोक्त जीवों के साथ साधु मन, वचन और शरीर के योग से सदा अहिंसक प्रवृत्ति से ही व्यवहार करे। क्योंकि ऐसा करने से ही साधु संयत या सच्चा संयमी हो सकता है॥३॥

NEGATION OF HARMING EARTH-BODIED BEINGS

2, 3. The great sage Bhagavan Mahavir has said—Earth, water, fire, air, plants including grass, trees and seeds and all varieties of mobile beings are all sentient beings.

The interaction of a *shraman* with all these, through mind, body and speech, should be governed by a non-violent clement attitude Because only by doing so a *shraman* can truly become disciplined.

विशेषार्थ :

श्लोक ३. अच्छण जोएण—अक्षणयोगेन—क्षण का अर्थ हिंसा होता है तथा योग का अर्थ सम्बन्ध अथवा व्यापार। अतः जिसका व्यवहार अहिंसक हो उसे अक्षणयोग कहते हैं।

ELABORATION :

(3) ***Acchan joyena***—amalgamation (of behavior) with *ahimsa.*

४ : पुढविं भित्तिं सिलं लेलुं नेव भिंदे न संलिहे।
तिविहेण करणजोएण संजए सुसमाहिए॥

५ : सुद्धपुढवीं न निसीए ससरक्खम्मि य आसणे।
पमज्जित्तु निसीइज्जा जाइत्ता जस्स उग्गहं॥

संयम में शुद्ध समाधिभाव रखने वाला साधु, तीन करण ओर तीन योग से सचित्त पृथ्वी का, दीवार का, शिला का तथा पत्थर ढेले आदि का भेदन (फोड़ना) और घिसना कुरेदना आदि नहीं करें॥४॥

साधु को नैसर्गिक तथा सचित्त पृथ्वी पर तथा सचित्त रज से भरे हुए आसन पर, उठना-बैठना नहीं क्ल्पता। यदि अचित्त भूमि पर बैठना हो तो भूमि के स्वामी से आज्ञा लेकर और भूमि को सावधानी से साफ कर बैठना चाहिए॥५॥

4, 5. A genuinely disciplined ascetic should not, through three means and three methods, indulge in activities like breaking, grinding or scraping of *sachit* earth, wall, rock, stone or a lump of sand.

A *shraman* should not sit or stand on natural and *sachit* sand or a mattress covered by *sachit* dust. If at all he has to sit he should seek permission of the owner, carefully clean the place and then sit.

अप्काय हिंसा-निषेध

६ : सीओदगं न सेविज्जा सिलावुट्ठं हिमाणि अ।
उसिणोदगं तत्तफासुयं पडिगाहिज्ज संजए॥

७ : उदउल्लं अप्पणो कायं नेव पुंछे न संलिहे।
समुप्पेह तहाभूयं नो णं संघट्टए मुणी॥

शीतोदक (कच्चा जल), शिलावृष्ट (ओले), वर्षा का पानी तथा हिम (बर्फ) आदि सचित्त जल का साधु कदापि सेवन न करे। आवश्यकता हो तो, तप्त होने पर प्रासुक बना पानी आदि अचित्त जल ही ग्रहण करे॥६॥

बुद्धिमान् साधु जल से भीगे हुए शरीर को वस्त्र आदि से नहीं पोंछे और न ही हाथ से मले। जल से गीले शरीर को देखकर उसका स्पर्श भी न करे॥७॥

NEGATION OF HARMING WATER-BODIED BEINGS

6, 7. An ascetic should never consume fresh water, hails, rain water, snow or any other *sachit* water. In case of need he should consume *achit* water made so by boiling or otherwise.

A wise *shraman* should not rub his body dry with a piece of cloth or even with his palms. He should not even touch the part of his body that is wet.

अग्निकाय हिंसा-निषेध

८ : इंगालं अगणिं अच्चिं अलायं वा सजोइयं।
न उंजिज्जा न घट्टिज्जा नो णं निव्वावए मुणी॥

सावद्य कामों में मौन रखने वाला मुनि अंगारे की, लोह पिण्ड की, टूटी हुई ज्वाला की, सुलगते हुए काठ आदि की अग्नि को न तो तिनके आदि डालकर प्रज्वलित करे, न उसका स्पर्श करे और न जल आदि डालकर बुझावे॥८॥

NEGATION OF HARMING FIRE-BODIED BEINGS

8. A faultless *shraman* should neither increase by adding fuel, nor touch, nor extinguish by sprinkling water, any fire; may it be of embers, molten iron, broken flames or burning wood.

वायुकाय हिंसा-निषेध

९ : तालिअंटेण पत्तेण साहाए विहुणेण वा।
न वीइज्ज अप्पणो कायं बाहिरं वा वि पुग्गलं॥

साधु अपने शरीर को तथा बाहरी पुद्गलो को ताल वृक्ष के पंखे से, कमल आदि के पत्तों से, वृक्ष की शाखा से तथा अन्य किसी पंखे से हवा नहीं करें॥९॥

NEGATION OF HARMING AIR-BODIED BEINGS

9. An ascetic should not blow air at his body or any outside thing with palm leaves, lotus leaves, a tree branch or any other type of fan.

वनस्पतिकाय हिंसा-निषेध

१० : तणरुक्खं न छिंदिज्जा फलं मूलं व कस्सइ।
आमगं विविहं बीयं मणसा वि न पत्थए॥

११ : गहणेसु न चिट्ठिज्जा बीएसु हरिएसु वा।
उदगम्मि तहा निच्चं उत्तिंग पणगेसु वा॥

साधु किसी भी प्रकार के तिनके, वृक्ष तथा वृक्षों के फल या मूल का छेदन न करे और न ही विविध प्रकार के सचित्त बीजों का सेवन करे। सेवन करना तो दूर रहा, मन में सेवन करने का संकल्प भी न करे॥१०॥

वृक्षों के घने कुंजों में, बीजों पर, दूब आदि हरी घास पर तथा उदक, उत्तिंग और पनक नामक वनस्पतियों पर साधुओं को कभी भी खडा नहीं होना चाहिए॥११॥

NEGATION OF HARMING PLANT-BODIED BEINGS

10, 11. A *shraman* should neither cut or pierce grass, trees, fruits, or roots, nor should he consume various types of *sachit* seeds. What to say of consuming, he should not even think of consuming these.

An ascetic should never stand in dense thickets or on seeds, grass or other vegetation, like plankton, mushrooms, moss, etc

विशेषार्थ :

श्लोक ११. उदगम्मि–उदके–उदक का अर्थ जल भी होता है और अनन्तकायिक वनस्पति भी। यहाँ वनस्पति का प्रसग चल रहा है अतः उसी अर्थ में प्रयुक्त समझना चाहिए।

उत्तिंग–सर्पच्छत्र या कुकुरमुत्ता अथवा चीटियों का बिल।

पणग–पनक–काई।

ELABORATION :

(11) ***Udagammi***—this also means water, but here, as things of plant origin are being discussed, it means plankton or other such rootless and water based vegetation.

Utting—mushrooms or an ant hill.

Panag—fungus; moss.

त्रसकाय हिंसा-निषेध

१२ : तसे पाणे न हिंसिज्जा वाया अदुव कम्मुणा।
उवरओ सव्वभूएसु पासिज्ज विविहं जगं॥

सब जीवों की हिंसा का त्याग करने वाला साधु मन, वचन और काय के योगों से त्रस जीवों की हिंसा न करे। अपितु स्वीकृत अहिंसा व्रतों को प्रतिदिन सुदृढ़ बनाने के लिए नाना प्रकार के जीवों से व्याप्त इस जगत् के स्वरूप को आत्मतुल्य समझे/देखे॥१२॥

NEGATION OF HARMING MOBILE BEINGS

12. A compassionate *shraman* should not cause harm to any mobile being through mind, speech and body. In order to bolster the accepted vow of *ahimsa* he should consider this living world like his ownself.

आठ सूक्ष्म

१३ : अट्ठ सुहुमाइं पेहाए जाइं जाणित्तु संजए।
दयाहिगारी भूएसु आस चिट्ठ सएहि वा॥

साधु उन आठ सूक्ष्मों को पहले अच्छी तरह देखकर/समझकर ही शुद्ध निर्जीव स्थान पर उठने, बैठने, सोने आदि की यथोचित क्रियाएँ करे॥१३॥

EIGHT MICRO-THINGS

13. An ascetic should know and understand about the eight micro-things to enable him to properly examine a place for these, before proceeding to stand, sit or lie down there.

१४ : कयराइं अट्ठ सुहुमाइं जाइं पुच्छिज्ज संजए।
इमाइं ताइं मेहावी आइक्खिज्ज विअक्खणो॥
१५ : सिणेहं पुप्फसुहुमं च पाणुत्तिंगं तहेव य।
पणगं बीय हरियं च अंडसुहुमं च अट्ठमं॥

साधु के लिए जिनका जानना अत्यावश्यक है वे आठ सूक्ष्म कौन-कौन-से हैं? यह प्रश्न पूछे जाने पर गुरु समाधान देते हैं कि हे शिष्य ! वे आठ सूक्ष्म इस प्रकार हैं-स्नेहसूक्ष्म, पुष्पसूक्ष्म, प्राणीसूक्ष्म, उत्तिंगसूक्ष्म, पनकसूक्ष्म, बीजसूक्ष्म, हरितसूक्ष्म और अण्डसूक्ष्म ये आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव हैं॥१४-१५॥

14, 15. "What are these eight micro-things about which an ascetic should know and understand?" On being asked this question the *guru* explains—"These eight micro-things are—micro-moisture, micro-flowers, micro-beings, micro-dwellings, micro-fungi, micro-seeds, micro-vegetation and micro-eggs."

विशेषार्थ

श्लोक १४, १५. सिणेह-स्नेहं-स्नेहसूक्ष्म-जल सम्बन्धी सूक्ष्म-ओस, बरफ, कुहासा, ओला, सीलन आदि।

पुप्फ-पुष्पसूक्ष्म-बड, उडुम्बर आदि के फूल तथा उनके जैसे, समझ मे न आने वाले फूल।

पाण-प्राणसूक्ष्म-कुंथुवा जैसे वे सूक्ष्म जीव जो हिलने-डुलने पर दिखाई देते हैं अन्यथा नहीं।

उत्तिंग-उत्तिंगसूक्ष्म-(कीटिका-नगर) कीडी नगर-दीमक की बांबी जैसे स्थान जहाँ जीवों को वहाँ से देख पाना सम्भव न हो।

पणगं-पनकसूक्ष्म-विभिन्न प्रकार की काई।

बीय-बीजसूक्ष्म-तुष-मुख-सामो, शाल आदि के मुख-अग्रभाग पर रहने वाली कणिका।

हरियं-हरितसूक्ष्म-तत्काल उत्पन्न, पृथ्वी जैसे वर्णवाला सूक्ष्म अंकुर।

अंड सुहुमं-अण्डसूक्ष्म-सूक्ष्म अण्डे, जैसे मधुमक्खी, कीड़ी, मकडी आदि के।

ELABORATION :

(14, 15) ***Micro-moisture***—the wetness or moisture that cannot be seen with naked eye; such as dew, snow, mist, hail stones and dampness.

Micro-flowers—tiny flowers that are camouflaged due to similarity of color and texture with their background, such as flowers of banyan and *udumber* trees.

Micro-beings—living beings that are so small and camouflaged that they are ordinarily invisible to the naked eye unless they move, such as *kunthua* (a micro-worm).

Micro-dwellings—small holes, nests and other such hidden dwellings where the insects are not openly visible, such as anthill

Micro-fungi—fungal growth of different types including moss

Micro-seeds—seeds smaller than sand particles, like those of *Saal* tree.

Micro-vegetation—tiny vegetation or sprouts that are camouflaged due to similarity of color and texture with the surrounding vegetation or earth

Micro-eggs—tiny eggs of honey-bee, bed-bug and other such insects

१६ : एवमेआणि जाणित्ता सव्वभावेण संजए।
अप्पमत्तो जए निच्चं सव्विंदियसमाहिए॥

इन्द्रियों के अनुकूल एवं प्रतिकूल विषयों पर समभाव रखने वाला संयती साधु, पहले कहे गये–आठ प्रकार के सूक्ष्म जीवों को भली प्रकार जानकर सदा अप्रमत्त रहता हुआ इनकी यतना करे॥१६॥

16. A serene *shraman*, who is equanimous to pleasure and pain, should first understand the eight micro-things thoroughly and then remain alert and cautious not to cause any harm to them.

१७ : धुवं च पडिलेहिज्जा जोगसा पायकंबलं।
सिज्जमुच्चारभूमिं च संथारं अदुवासणं॥

नित्य प्रति आगम विधि के अनुसार यथासमय वस्त्र, पात्र, उपाश्रय, स्थंडिल भूमि, संस्तारक और आसन आदि की उचित प्रतिलेखना (देखभाल) करते रहना चाहिए॥१७॥

PROCEDURE OF INSPECTION

17. An ascetic should carefully inspect and examine everyday at the proper time and according to the procedure detailed in the *Agams*, things like clothing, utensils, place of stay, place meant for excretion, place for sleeping, mattress, etc.

विशेषार्थ

श्लोक १७ सेज्जं–शय्या–रहने का स्थान, उपाश्रय।

उच्चारभूमि–एकान्त स्थान जहाँ मल त्याग किया जाता है।

सथारं–सस्तारक–सोने का स्थान।

जोगसा–(योगेन) न कम न अधिक; प्रमाणोपेत; उचित; यथाशक्ति।

पडिलेह–प्रतिलेखन–ध्यान से देखना या जाँच करना।

ELABORATION :

(17) ***Sejjam***—place of stay; *upashraya*

Uchcharbhumi—place meant for excretion.

Samtharam—place to sleep

Jogasa—neither less nor more; standard; proper; to the best of one's capacity.

Padileh—to inspect or examine carefully.

१८ : उच्चारं पासवणं खेलं सिंघाणजल्लिअं।
फासुयं पडिलेहित्ता परिट्ठाविज्ज संजए॥

साधु के लिए उचित है कि वह मल-मूत्र, कफ, नासिकामल, शरीर का मैल आदि अशुचि पदार्थ किसी प्रासुक (निर्जीव) स्थान में प्रथम प्रतिलेखना/देखभाल करके ही त्यागे॥१८॥

18. A *shraman* should throw or discharge, only after finding a place free of living organism and inspecting it properly, any or all types of excreta such as urine, faeces, phlegm, bodily dirt, etc.

यतनापूर्ण जीवनचर्या

१९ : पविसित्तु परागारं पाणट्ठा भोयणस्स वा।
जयं चिट्ठे मियं भासे ण य रूवेसु मणं करे॥

गृहस्थ के घर आहार-पानी के लिए गया हुआ साधु उचित स्थान पर यतनापूर्वक खड़ा होवे, विचारपूर्वक हितकारी थोडा बोले तथा स्त्री आदि के रूप (शब्द, रस, गंध, स्पर्श) को देखकर मन को चंचल न होने दे॥१९॥

CAUTIOUS LIVING

19. An ascetic out to seek alms should stand carefully at the proper place, think before speaking, speak pleasantly with brevity and remain composed when looking at things that captivate senses, such as beauty of a woman.

२० : बहुं सुणेइ कण्णेहिं बहुं अच्छीहिं पिच्छइ।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं भिक्खू अक्खाउमरिहइ॥

गृहस्थों के सम्पर्क में आने पर साधु, कानों से अच्छे-बुरे अनेक प्रकार के शब्द सुनता है और इसी प्रकार आँखों से भी अच्छा-बुरा बहुत कुछ देखता है। किन्तु जो कुछ देखे और सुने वह सब लोगों के सामने प्रकट करना उचित नहीं है॥२०॥

**२१ : सुयं वा जइ वा दिट्ठं न लवेज्जोवघाइयं।
न य केणइ उवाएणं गिहिजोगं समायरे॥**

किसी से सुनी हुई तथा स्वयं देखी हुई, कोई भी औपघातिक (हिंसाकारी) बात साधु को किसी के सामने नहीं कहनी चाहिए और किसी के अनुरोध आदि से प्रेरित हो गृहस्थों जैसा आचरण भी नहीं करना चाहिए॥२१॥

20, 21. A *shraman* listens and sees many good or bad things with his ears and eyes when he comes in contact with householders. It is not proper for him to express before others all what he has heard or seen.

An ascetic should not convey before others anything he has seen or heard and which is damaging in nature. He should also not act like a householder on someone's request or persuasion.

विशेषार्थ :

श्लोक २१. सुयं-सुना हुआ-किसी के विषय में दूसरों से सुनकर यह कहना कि "तू चोर है"-यह सुना हुआ औपघातिक वचन है।

दिट्ठ-देखा हुआ-किसी को चोरी करते हुए देखकर यह कहना कि "इसे चोरी करते देखा है।" यह देखा हुआ औपघातिक वचन है।

ELABORATION :

(21) ***Suyam***—heard; (in this context) to give damaging comment after hearing something. For example, to call someone a thief after getting such information from others.

Dittham—seen; (in this context) to give damaging comment after seeing something. For example, to call someone a thief after seeing him committing the act.

लाभऽलाभ में संतोष

**२२ : निट्ठाणं रसनिज्जूढं भद्दगं पावगं ति वा।
पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा लाभालाभं न निद्दिसे॥**

चाहे कोई साधु से पूछे या कोई न पूछे, किन्तु कभी भी (आसक्तिपूर्वक) सरस आहार को सरस और नीरस आहार को नीरस नहीं कहना चाहिए। और आहार मिलने-न मिलने के विषय में भी कुछ नहीं कहना चाहिए॥२२॥

EQUANIMITY IN GAIN OR LOSS

22. Irrespective of being asked or not, an ascetic should never call a tasty food tasty with fondness and plain food plain with dislike. He should also make no comments about getting food or not.

२३ : न य भोयणम्मि गिद्धो चरे उंछं अयंपिरो।
अफासुयं न भुंजिज्जा कीयमुद्देसिआहडं॥

साधु को स्वादिष्ट भोजन की लालसा से विशिष्ट व परिचित घरों में भिक्षार्थ नहीं जाना चाहिए। किन्तु व्यर्थ की वाचालतारहित हो अनेक स्थानों से समभावपूर्वक थोड़ा-थोड़ा आहार लेना चाहिए। तथा वहाँ से भी औद्देशिक, क्रीतकृत, आहृत तथा अप्रासुक आहार लाकर नहीं खाना चाहिए॥२३॥

23. Driven by the desire to get tasty food a *shraman* should not go to known or chosen houses to seek alms. Without being very vocal he should collect food from many houses with equanimity. And from there also he should not bring and eat any *kreet-krit* (bought), *auddeshik* (meant for him), and *ahrit* (brought) or faulty food.

विशेषार्थ :

श्लोक २३. उञ्छं–उञ्छ–यह शब्द मूलतः कृषि से सम्बन्धित है। सिट्टो को काटने को शिल कहते है और नीचे गिरे हुए धान को चुनकर एकत्र करने को उञ्छ कहते हैं। धीरे-धीरे शिलोञ्छ शब्द भिक्षा से जुड़ गया और इस संदर्भ में इसका अर्थ हो गया–खाने के बाद शेष बच रहा भोजन लेना या घर-घर जाकर थोडा-थोडा भोजन एकत्र करना। (आचार्य महाप्रज्ञ)

ELABORATION :

(23) ***Unchham***—this is basically an agricultural term. Harvesting is called *shil* and picking up the grains fallen on the

ground during harvesting is called *unchha*. Somehow this word acquired the meaning of collecting alms. In this context its meaning is to take the remaining food after everyone has eaten or to collect a little each from many houses (Acharya Mahaprajna)

२४ : संनिहिं च न कुव्विज्जा अणुमायं पि संजए।
मुहाजीवी असंबद्धे हविज्ज जगनिस्सिए॥

साधु अशनादि पदार्थ का स्वल्प मात्र भी संग्रह न करे और रात्रि में न रखे। मुधाजीवी होकर अर्थात् सावद्य व्यापाररहित अनासक्त जीवन व्यतीत करे। गृहस्थों से बँधा हुआ न रहे तथा जगत् के सब जीवों की रक्षा करे॥२४॥

24. An ascetic should not store even a small quantity of any eatable or keep it with him during the night He should lead the life of a detached alms-seeker. He should not be tied to householders and should protect all beings.

सन्तुष्ट रहे क्रोध न करे

२५ : लूहवित्ती सुसंतुट्ठे अप्पिच्छे सुहरे सिया।
आसुरत्तं न गच्छिज्जा सोच्चाणं जिणसासणं॥

रूखे-सूखे भोजन में सन्तुष्ट रहने वाला, अल्प इच्छा वाला एवं अल्पाहार से तृप्त होने वाला साधु, जिन-प्रवचनों के श्रवण व ग्रहण से क्रोध के कटुफल को जान कर कभी किसी पर क्रोध न करे॥२५॥

BE CONTENT : AVOID ANGER

25. An ascetic who is content with dry or plain food, who has contained his desires and who is satisfied with meager food, should know about the bitter consequences of anger by listening to the preaching of the *Jina* and should avoid being angry with anyone.

विशेषार्थ :

श्लोक २५. लूहवित्ती–रूक्ष वृत्ति–रुखे या उदासीन स्वभाव वाला अथवा रूखा-सूखा भोजन लेने वाला।

सुहरे–सुभरः–अल्पाहार से तृप्त होने वाला। यहाँ रूक्ष वृत्ति, सुसतुष्ट, अल्पेच्छा और सुभर शब्दों में परस्पर कारणभाव–फलभाव है। रूक्ष वृत्ति का फल सुसंतोष, सुसंतोष का फल अल्पेच्छा और अल्पेच्छा का फल सुभरता है।

सोच्चाणं–श्रुत्वा–सुनकर–आचार्य हरिभद्रसूरि ने श्रावक-प्रज्ञप्ति की टीका में श्रावक के सदर्भ में श्रवण क्रिया के अर्थ का विस्तार करके बताया है–तदनुसार श्रवण का अर्थ सुनकर, समझकर जीवन मे उतारना है। ऐसी श्रवण क्रिया करने वाला ही श्रावक होता है। अत यहाँ जिनशासन सुनने का अर्थ उसे सुनना, समझना और जीवन मे उतारना तीनो ही है।

ELABORATION :

(25) ***Loohavatti*** to ***Suhare***—these four terms have a cause and effect relationship. A person who is contented with dry or plain food is able to contain his desires and, in turn, is satisfied with meager food.

Socchanam—to listen; in his commentary on *Shravak Prajnapti*, Acharya Haribhadra Suri has expanded the meaning of the verb *shravan* in context with the popular word for Jain laity, *shravak*. He says that only he is a *shravak* who listens, understands and applies in life the preaching of the *Jina*

२६ : कन्नसुक्खेहिं सद्देहिं पेमं नाभिनिवेसए।
दारुणं कक्कसं फासं काएण अहिआसए॥

कानों को प्रिय सुखकारी लगने वाले शब्दों में प्रेमभाव नहीं करना चाहिए तथा कठोर और कर्कश स्पर्श को काया से समभावपूर्वक सहन करना चाहिए॥२६॥

26. One should not have fondness for the words that are pleasing to the ears. He should tolerate the harsh and unpleasant touch to the body with equanimity.

विशेषार्थ

श्लोक २६. श्लोक के प्रथम दो चरण मे श्रोत्रेन्द्रिय तथा अन्तिम दो चरण मे स्पर्शेन्द्रिय के निग्रह सबधी निर्देश है। इसमें बीच की तीनों इन्द्रियो के निग्रह का इंगित भी समझना

चाहिए। सारांशतः, पाँचों इन्द्रियों के अनुकूल विषयों में राग न करे और प्रतिकूल विषयों पर द्वेष न करे।

ELABORATION :

(26) The first half of the verse refers to the sense of hearing and the second to the sense of touch. This is indicative of disciplining the other three senses as well. The theme being—one should be equanimous towards pleasure and pain

२७ : खुहं पिवासं दुस्सिज्जं सीउण्हं अरई भयं।
अहिअसे अव्वहिओ देहदुक्खं महाफलं॥

साधु को चाहिए कि वह भूख, प्यास, कष्टपूर्ण शय्या, शीत, उष्ण, अरति एवं भय आदि कष्ट उत्पन्न होने पर कभी व्यथित नहीं हो अपितु पूर्ण दृढ़तापूर्वक इन आये हुए दुःखों को सहन करे। क्योंकि शरीर से सम्बन्ध रखने वाले कष्टों को समभावपूर्वक सहने से ही मोक्षरूप महाफल की प्राप्ति होती है॥२७॥

27. A *shraman* should not be moved by afflictions like hunger, thirst, uncomfortable bed, cold, heat, austerities, fear, etc.; instead, he should tolerate these with determination. This is because tolerance of physical pain with equanimity leads to the lofty attainment that is liberation

२८ : अत्थंगयम्मि आइच्चे पुरच्छा य अणुग्गए।
आहारमाइअं सव्वं मणसा वि न पत्थए॥

सूर्यास्त होने से लेकर प्रातःकाल जब तक सूर्योदय न हो तब तक साधु को सभी प्रकार के आहाररूप पदार्थों की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए॥२८॥

28. From dusk to dawn an ascetic should not even desire for anything to eat.

२९ : अतिंतिणे अचवले अप्पभासी मिआसणे।
हविज्ज उयरे दंते थोवं लध्दुं न खिंसए॥

गृहस्थ के घर से आहार न मिलने या अरस आहार मिलने पर प्रलाप नहीं करे, किसी प्रकार की चंचलता नहीं दिखाये और कम बोले, कम खाये तथा अपने उदर को पूरी तरह से अपने वश में रखे। जो थोड़ा आहार मिलने पर दातार की एवं पदार्थ की किसी प्रकार भी निन्दा नहीं करता वही वास्तव में साधु है॥२९॥

29. If he does not get alms or gets tasteless food from a householder, an ascetic should not grumble. He should not express any displeasure, speak little, eat little and keep his desire to eat under control. Only he is a true ascetic who does not slander the donor or criticize the food if he gets only a little

विशेषार्थ :

श्लोक २९. **अतिंतिणे-अतिंतिण**-लकडी जलते समय चिगारी निकलने के साथ जो ध्वनि होती है उसे तिंतिण कहते हैं। उसी प्रकार इच्छानुकूल कार्य न होने पर बडबडाने को तिंतिण-प्रलाप कहा है।

ELABORATION :

Atintine—The crackling round of sparks when a piece of wood is burnt is called *tintin* This term is used here for grumbling when the desired does not happen

३० : न बाहिरं परिभवे अत्ताणं न समुक्कसे।
सुअलाभे न मज्जिज्जा जच्चा तवस्सिबुद्धिए॥

दूसरों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए तथा अपने आप को महान् नहीं समझना चाहिए और तो क्या, अपने ज्ञान, उपलब्धियाँ, जाति, तप एवं बुद्धि आदि गुणों के प्रकर्ष पर भी अहभाव नहीं करना चाहिए॥३०॥

30. One should not insult others and neither should consider himself to be great. One should not even be proud of his knowledge, achievements, status, austerities, intelligence and other such qualities

३१ : से जाणमजाणं वा कट्टु आहम्मियं पयं।
संवरे खिप्पमप्पाणं बीयं तं न समायरे॥

जाने या अनजाने में भी यदि कभी कोई अधार्मिक कार्य हो जाये, तो साधु को योग्य है कि शीघ्र ही उस पाप से अपनी आत्मा को दूर हटा ले, खींच ले और भविष्य में फिर वह कार्य दुबारा कभी नहीं करे॥३१॥

31. Knowingly or unknowingly if an ascetic commits some irreligious act, it is proper for him to withdraw himself from that sin without any delay and make sure that never in future he indulges in any such activity.

३२ : अणायारं परक्कम्म नेव गूहे न निन्हवे।
सुई सया वियडभावे असंसत्ते जिइंदिए॥

पवित्र बुद्धि वाला, कभी कोई पाप नहीं छुपाने वाला, किसी प्रकार का प्रतिबंध न रखने वाला तथा चंचल इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने वाला साधु, संयम में किसी प्रकार का दोष लगने पर गुरुदेव के समक्ष पाप की आलोचना करे और आलोचना करते समय दोष को थोड़ा-बहुत स्थूल रूप से गोलमाल भाषा में न कहे तथा सर्वथा ही छिपाने का प्रयास न करे॥३२॥

32. If a pious, transparent, frank and disciplined ascetic finds some shortcoming in his conduct, he should critically review that fault before his *guru*. During this review he should try neither to reduce nor conceal the gravity of the fault by clever use of language.

३३ : अमोहं वयणं कुज्जा आयरियस्स महप्पणो।
तं परिगिज्झ वायाए कम्मुणा उववायए॥

विनयशील साधु का कर्त्तव्य है कि वह महान् आत्मा आचार्यों की आज्ञा व आदेश वचन को व्यर्थ न जाने दे अर्थात् आदरपूर्वक स्वीकार करे और तत्पश्चात् शीघ्र ही कर्म द्वारा उसका आचरण कर सफल करे॥३३॥

33. It is the duty of a gracious *shraman* that he should accept the instructions and directions of the great *acharyas* with reverence and then execute them successfully.

३४ : अधुवं जीवियं नच्चा सिद्धिमग्गं वियाणिया।
विणियट्टिज्ज भोगेसु आउं परिमियमप्पणो॥

इस जीवन को अध्रुव (अस्थिर) और मोक्षमार्ग को स्थिर-सत्य एवं अपनी आयु को स्वल्प (परिमित) जानकर, साधु हमेशा काम-भोगों से निवृत्त रहे॥३४॥

34. Realizing the ephemeral nature of life and knowing the illustrious path of liberation an ascetic should desist from indulging in mundane pleasures during this short life-span.

क्षेत्रकाल का ज्ञान रखे

३५ : बलं थामं च पेहाए सद्धामारुग्गमप्पणो।
खेत्तं कालं च विन्नाय तहप्पाणं निजुंजए॥

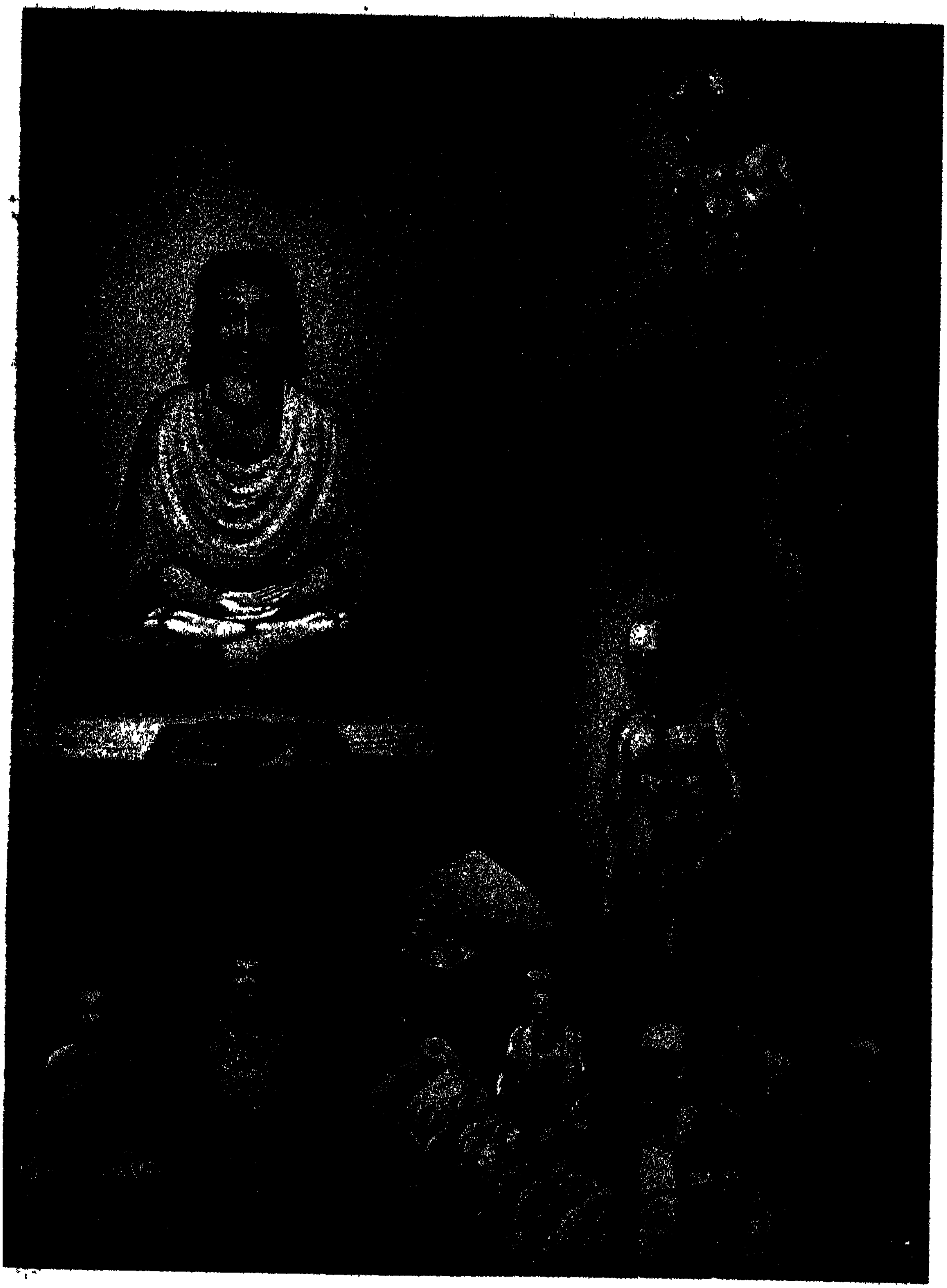
अपने मनोबल, शरीरबल, श्रद्धा, आरोग्य तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव आदि का उपयुक्त विचार करके साधु अपनी आत्मा को यथाशक्ति धर्मकार्य में नियुक्त करे॥३५॥

KNOW THE TIME AND THE PLACE

35. Judging his own strength and endurance, faith and health, matter and its state and place and time, an ascetic should indulge in religious activities to the best of his abilities.

३६ : जरा जाव न पीडेइ वाही जाव न वड्ढई।
जाविंदिया न हायंति ताव धम्मं समायरे॥

जब तक शरीर जरा-बुढापे से पीड़ित नहीं होता, जब तक शरीर पर रोगों का जमघट नहीं लगता है, जब तक श्रोत्र चक्षु आदि इन्द्रियाँ शक्तिहीन होकर काम करने में असमर्थ नहीं होती हैं तब तक सावधान होकर धर्म का आचरण कर लेना चाहिए॥३६॥ (देखें चित्र क्रमांक १५)



तब तक धर्माचरण कर लो

FOLLOW THE CODE OF CONDUCT AS LONG AS. .

जरा जाव न पीलेइ–धर्म साधना करने के इच्छुक को सम्बोधित करके कहा गया है–जब तक बुढ़ापा (जरा) शरीर को जर्जर नहीं करे, रोग व्याधि शरीर को दुर्बल व शक्तिहीन न कर दे, जब तक चक्षु श्रोत्र, हाथ पाँव आदि इन्द्रियाँ हीन (कार्य करने में असमर्थ) न हो तब तक धर्म का आचरण कर लो। अर्थात् स्वाध्याय, ध्यान, सेवा, दान, परोपकार आदि सुकृत कार्य कर लो।

(अध्ययन ८, श्लोक ३५)

Addressing one with a desire to follow the spiritual path, it is stated Follow the code of conduct as long as age does not atrophy the body, disease does not weaken or emaciate the body, and the sense organs like eyes, ears, nose, and limbs are not disabled In other words—engage in study, meditation, service to others, charity, and other such good deeds without any delay

(Chapter 8, verse 35)

कषायों का दुष्परिणाम

BAD CONSEQUENCES OF PASSIONS

१. कोहो पीइं पणासेइ–क्रोध अग्नि का प्रतीक है। क्रोध का धुआँ उठता है तो प्रीति, प्रेम का वातावरण धुँधला पड़ने लगता है।

1 Anger is like fire When the fire of anger emits smoke it clouds the atmosphere of love and goodwill.

२ माणो विणयनासणो–अहंकारी स्तंभ की तरह कभी झुकता नहीं। अहंकार की कलुषित भावनाओं से विनय, नम्रता का नाश होने लगता है।

2 Conceit makes one unyielding like a pillar. The tarnishing feeling of conceit diminishes the purity of courtesy and humility. A conceited person displays a stubborn expression on his face

३ माया मित्ताणि नासेइ–माया कपट मे पर्दे की तरह दुराव-छिपाव रहता है। जहाँ कपट की कलुषता का धुआँ पहुँचता है वहाँ मित्रता या परस्पर मे विश्वास का नाना क्षीण होने लगता है।

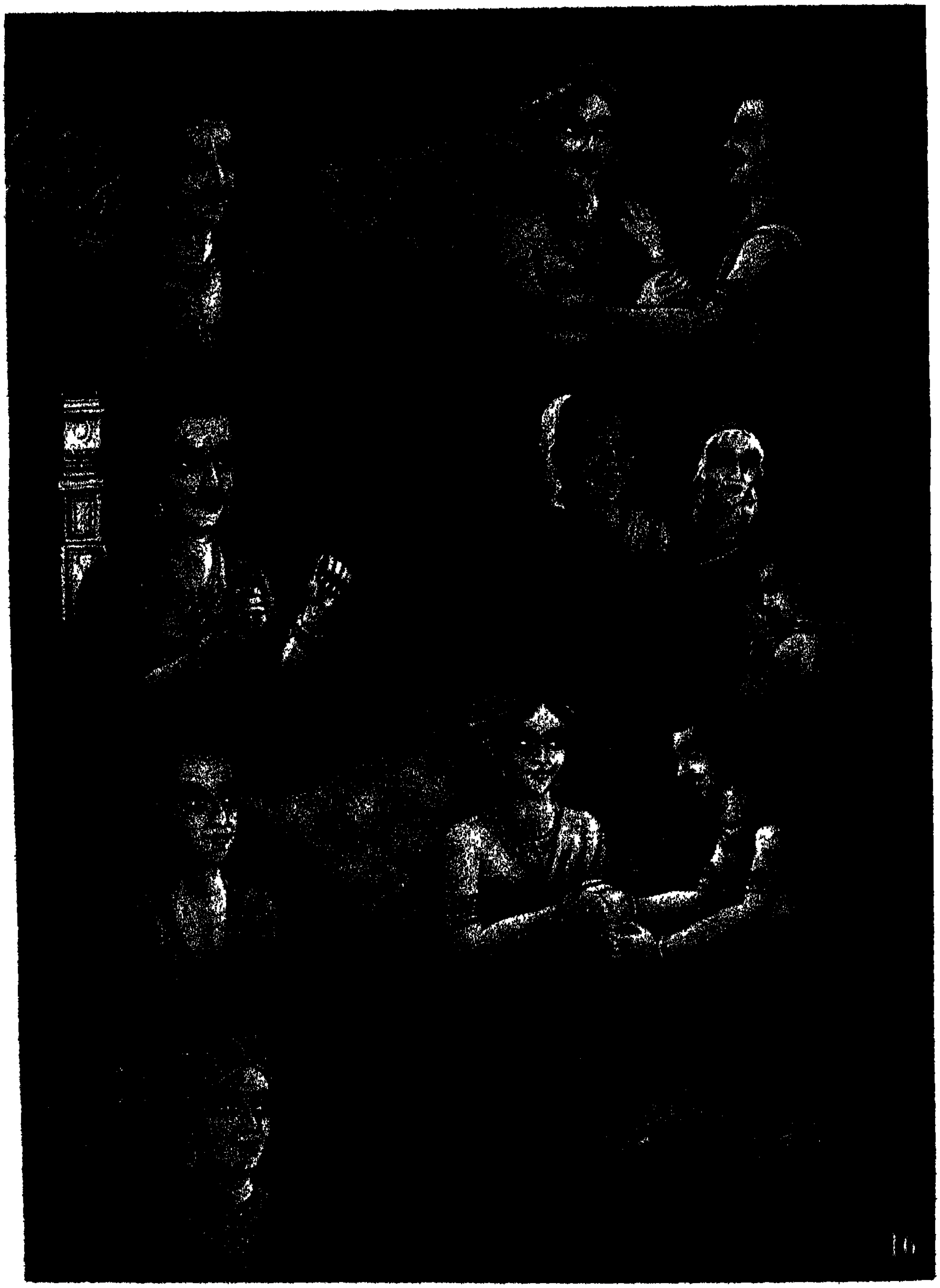
3 Deceit and guile are like a screen hiding antipathy within. The acid of guile eats into the fabric of friendship and mutual faith.

४. लोहो सव्व विणासणो–लोभी की आत्मा तिजोरी में वद रहती है। इस लोकोक्ति के अनुसार लोभ भाव का प्रतीक तिजोरी व श्रेष्ठी दर्शाया है। लोभ की आग मनुष्य के नीति, सन्तोष, स्वाध्याय का प्रतीक पुस्तके आदि सभी सद्गुणो को जला डालती है।

(अध्ययन ८, श्लोक ३७)

4. The soul of a greedy person is locked into his vault. Greed is shown as a merchant and his vault. The fire of greed consumes morality, contentment, knowledge, and other virtues symbolized by books in the illustration

(Chapter 8, verse 37)


16

36. As long as the old age has not atrophied the body, ailments have not overwhelmed it and as long as his faculties are not disabled, an ascetic should promptly indulge in religious activities. **(illustration No. 15)**

कषायो का कटु फल

३७ : कोहं माणं च मायं च लोभं च पाववड्ढणं।
वमे चत्तारि दोसे उ इच्छंतो हियमप्पणो॥

जो अपनी आत्मा का हित चाहता है, उसे क्रोध, मान, माया तथा लोभ इन चार महादोषों से पूर्ण रूप से बचना चाहिए। ये चारों दोष पाप को बढ़ाने वाले हैं॥३७॥

BITTER FRUITS OF PASSIONS

37. He who desires to benefit his soul should avoid the four great faults that are the sources of all sins—anger, conceit, deceit and greed.

३८ : कोहो पीइं पणासेइ माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ लोहो सव्वविणासणो॥

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करने वाला है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सभी सद्गुणों का नाश करने वाला है॥३८॥ (देखें चित्र क्रमांक १६)

38. Anger destroys love and goodwill, conceit destroys humbleness, deceit destroys friendship and greed destroys all virtues. **(illustration No. 16)**

विशेषार्थ :

श्लोक ३८. लोहो सव्वविणासणो–लोभ· सर्व विनाशनः–लोभ सर्वनाशी है। जिनदासचूर्णि में इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। लोभवश पुत्र अपने शान्त स्वभाव वाले उपकारी पिता से भी विमुख हो जाता है, यह प्रीति का नाश है। इच्छित प्राप्त न होने पर वह अपना

पक्ष प्रस्तुत करता है कि वह अपना भाग लेकर रहेगा, यह विनय का नाश है। धन न मिलने पर वह कपटपूर्वक धन हथियाने का षड्यंत्र रचता है और पूछे जाने पर स्वीकार नहीं करता, यह मित्रभाव का नाश है। इसी कारण लोभ को सर्वगुण नाशक कहा है।

ELABORATION :

(38) ***Loho savvavinasano***—greed destroys all, this has been explained in *Jinadas Churni* by giving an example Greed drives a son against his loving and well wishing father, love is lost When the son does not get what he wants, he assertively puts forth his claim saying that he will use force if necessary, humbleness is lost When he does not get the wealth, he conspires to get it deceitfully; friendship is lost That is why greed is said to be the destroyer of all virtues

कषाय-शमन उपाय

३९ : उवसमेण हणे कोहं माणं मद्दवया जिणे।
मायं च अज्जवभावेण लोभं संतोसओ जिणे॥

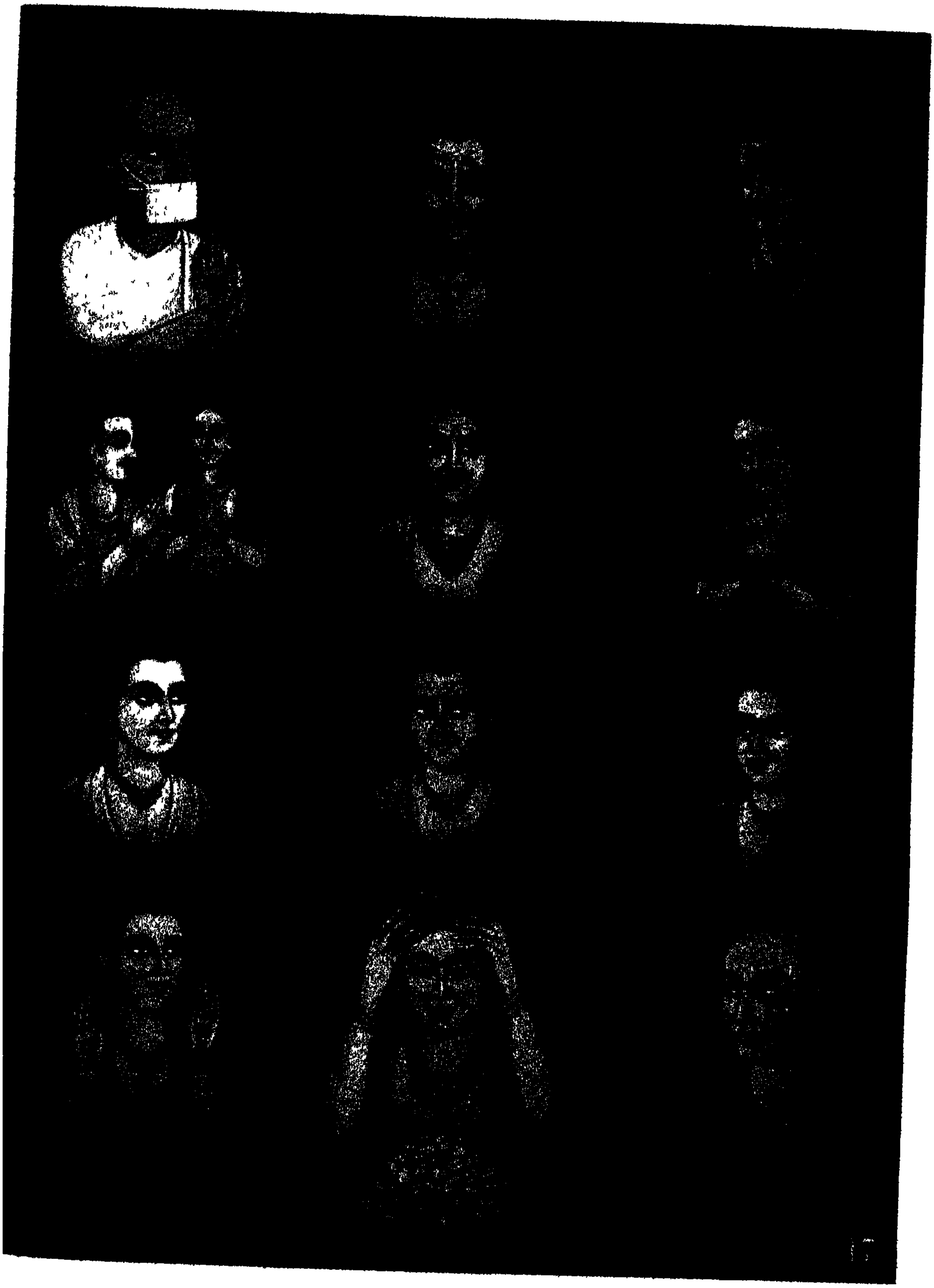
उपशमभाव (शान्ति) से क्रोध का हनन करो, मार्दव (नम्रता) मे मान को जीतो, ऋजुता (सरलता) से माया को एवं सन्तोष मे लोभ को जीतना चाहिए॥३९॥ (देखें चित्र क्रमांक १७)

WAYS TO SUBDUE PASSIONS

39. One should subdue anger with tranquillity, conceit with humbleness, deceit with simplicity and greed with contentment. **(illustration No. 17)**

विशेषार्थ

श्लोक ३९ आचार्य श्री आत्माराम जी म इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–"कल्याणकारी जीव को प्रथम तो इन कषायो के उदय होने का कोई कारण ही उपस्थित नही करना चाहिए तथापि यदि कभी इनके उदय होने के कारण बन ही जावें तो उपर्युक्त उपशमभाव, विनय, ऋजुता आदि उपायों का अवलंबन करके इनके उदय का निरोध और उदय प्राप्त को विफल कर देना चाहिए।"



कषाय शान्ति के उपाय

METHODS OF PACIFYING PASSIONS

१ उवसमेण हणे कोहं–उपशम भाव का प्रतीक मुनि क्रोधी को क्षमा द्वारा क्रोध विजय का मार्ग बताता है। क्रोध शान्ति मे परिणत हो जाता है।

1 A shraman, being the embodiment of pacification, is shown advising the use of forgiveness to win over anger. Anger turns into tranquility

२ माणं मद्दवया जिणे–मृदुता और नम्रता द्वारा मान को जीतो। विनय भाव की जागृति होगी।

2 Attain victory over conceit with the help of sweetness and humility Modesty is gained

३. मायामज्जव भावेण–माया, कपट को जीतने के लिए सरल भाव की जरूरत है।

3 Simplicity is the tool for vanquishing deceit and guile

४ लोभ सतोसओ जिणे–जिसका मन सन्तुष्ट है जिसे कुछ नही चाहिए, वह लोभ को सन्तोष द्वारा जीतकर परम सुखी रहता है। लोभी धन होते हुए भी चिताग्रस्त रहता है।

(अध्ययन ८, श्लोक ३८)

4 One who reduces his needs subdues greed with the help of contentment and becomes happy A greedy person accumulates wealth that is accompanied by worries

(Chapter 8, verse 38)

ELABORATION :

(39) Acharyashri Atmaram ji M. further explains—"A benevolent soul should first of all avoid any chances of rise of these passions. If at all he faces some such situation, he should check and pacify the rise of these passions with the help of tranquility, humbleness, simplicity and contentment."

४० : कोहो अ माणो अ अणिग्गहीया माया अ लोभो अ पवड्ढमाणा।
चत्तारि ए ए कसिणा कसाया सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स॥

अनिगृहीत (जिस पर नियंत्रण नहीं लगाया हो) क्रोध और मान तथा बढ़ता हुआ माया और लोभ ये चारों ही कठिन उग्र कषाय पुनर्जन्म रूप विष-वृक्ष की जड़ों का सिंचन करने वाले हैं॥४०॥

40. Unbridled anger and conceit and ever growing deceit and greed, these four tough and intense passions are the nutrients for the poison-tree that is the rebirth-cycle.

विशेषार्थ :

श्लोक ४०. कसाया–कषाय–'कष' का अर्थ है संसार। जिस वृत्ति से संसार की अर्थात् जन्म-मरण की वृद्धि हो; आय हो, उस वृत्ति को कष + आय = कषाय कहा जाता है। कषाय शब्द क्रोध, मान आदि भावों से सम्बन्धित है। शब्दशास्त्र के अनुसार 'कषाय' शब्द से चार अर्थ सूचित होते हैं–गेरुआ रंग, लेप, गोंद और भावावेश। क्रोधादि भाव रंग है, इनसे आत्मा रंजित या मलिन होती है। ये लेप हैं, आत्मा पर कर्म-रज का लेप चढ़ता है। इन भावों में ग्रहणशीलता संपृक्तता है, इनके कारण आत्मा पर कर्म-परमाणु चिपकते हैं। ये भावावेश हैं इनके उदय से मन का स्वाभाविक संतुलन बिगड़ जाता है। इस प्रकार कषाय शब्द के चारों ही अर्थ आत्मा व कर्म के सम्बन्ध को बनाने वाले हैं।

ELABORATION :

(40) ***Kasaya—Kash*** means this world or the mundane life and *aaya* means income or addition. The attitude or the activities that multiply or supplement the cycles of rebirth is called *kashaya*. Popularly it means passions and covers anger, conceit, etc. The literal meanings of *kashaya* are—ochre color, unguent or ointment,

adhesive and excitement. Passions are colors that tarnish the soul. They are unguents that create layers of *karmic* dust on the soul. They have an adhesive capacity and make the *karmic* particles stick to the soul. They manifest as excitement and make the soul lose its natural balance. Thus, all the four meanings of *kashaya* or passion convey the relationship of soul and *karma*.

विनय एवं स्वाध्याय का उपदेश

४१ : रायणिएसु विणयं पउंजे धुवसीलयं सययं न हावइज्जा।
कुम्मुव्व अल्लीण-पलीणगुत्तो परक्कमिज्जा तवसंजमम्मि॥

मोक्ष के लिए साधनारत साधु को अपने से दीक्षा ज्येष्ठ एवं ज्ञान आदि में वृद्ध आचार्य, उपाध्याय की विनयपूर्वक भक्ति करनी चाहिए तथा शील (आचार) सम्बन्धी दृढ़ता में कभी हानि नहीं करनी चाहिए। कछुवे के समान अपनी इन्द्रियों तथा अंगोपांगों को गुप्त रखकर तप-संयम की क्रियाओं में तत्परता के साथ पुरुषार्थ करते रहना चाहिए॥४१॥

HUMBLENESS AND SELF-STUDY

41. A *shraman* indulging in spiritual practices should humbly worship the *acharyas* and *upadhyayas* who are his senior and are superior in knowledge. He should never relinquish the strength of his moral character and ascetic conduct. He should conceal his senses and limbs like a tortoise and continue the practice of discipline and austerity sincerely.

विशेषार्थ :

श्लोक ४१. राइणिएसु-रात्निकेषु-जो भी आचार्य, उपाध्याय, साधु दीक्षा-पर्याय में तथा ज्ञान आदि भाव-रत्नों में ज्येष्ठ हो वे रात्निक कहलाते हैं।

धुवसीलयं-ध्रुवशीलता-शील में दृढ़ता-शील शब्द को चूर्णि तथा टीका में विस्तार से परिभाषित किया है तथा उसके १८,००० भेद-प्रभेद बताए हैं जिसे शीलांगरथ के रूप में निरूपित किया गया है। (देखें-दसवेआलियं-आचार्य महाप्रज्ञ, पृष्ठ ४०४ टी १०७)।

कुम्मुव्व अल्लीण-पल्लीण गुत्तो–कछुए के समान शरीर की चेष्टाओं को समेटने को आलीन-गुप्त कहते हैं और आवश्यकता पड़ने पर सावधानी से शारीरिक चेष्टा करने को प्रलीन-गुप्त कहते हैं।

ELABORATION :

(41) ***Raainiessu***—those who possess the gems; here it means the gems of seniority of ascetic-age and superiority of knowledge etc.

Dhuvaseeliyam—resoluteness in *sheel* or moral character and ascetic conduct. The word *sheel* has been defined in much detail in the commentaries. So much so that 18,000 different classes and categories have been listed (*Dashavaikalik* by Acharya Mahaprajna, page 404)

Kummuvva allin-pallin gutto—the tortoise like activity of drawing in the limbs and to use them carefully only when needed

४२ : निद्दं च न बहुमन्निज्जा सप्पहासं विवज्जए।
मिहो कहाहिं न रमे सज्झायम्मि रओ सया॥

निद्रा को बहुमान अर्थात् बढ़ावा न दे, परस्पर हँसि-परिहास भी न करे तथा विकथा रूप बातों में (अथवा मैथुन की कथा में) तल्लीनता नहीं रखे अपितु सर्वदा स्वाध्याय में पूर्णतया लगा रहे॥४२॥

42. He should not encourage slumber, should not indulge in merriment and hilarity and should show disinterest in evil or erotic conversation. Instead, he should always be busy in his studies and contemplations.

विशेषार्थ :

श्लोक ४२. मिहोकहाहिं–मिथःकथासु–स्त्री-सम्बन्धी रहस्य कथा; अन्य विषयों सम्बन्धी कथा; विकथा या बुरी बात।

सज्झायम्मि–स्वाध्याय में–स्वाध्याय का अर्थ है विधिपूर्वक अध्ययन। स्वाध्याय के पाँच अंग हैं–वाचना या पढ़ना, प्रच्छना या प्रश्न करना, परिवर्तना या दोहराना, अनुप्रेक्षा या अर्थ-चिन्तन करना तथा धर्मकथा–व्याख्या न करना।

ELABORATION :

(42) ***Mihokahatim***—erotic or evil conversation; irrelevant conversation.

Sajjhayammi—self-study; study according to the prescribed process. In this prescribed process study is divided into five stages—to read, to question, to repeat or memorize, to contemplate and to elaborate.

४३ : जोगं च समणधम्मम्मि जुंजे अनलसो धुवं।
जुत्तो अ समणधम्मम्मि अट्ठं लहइ अणुत्तरं॥

मुनि आलस्य एवं प्रमाद का सर्वथा परित्याग करके श्रमणधर्म में मन-वचन-काय के तीनों योगों का यथोचित प्रयोग करे क्योंकि श्रमणधर्म में युक्त साधु ही अनुत्तर फलरूप मोक्ष को प्राप्त करता है॥४३॥

43. A *shraman* should avoid being lazy and hesitant. He should follow the ascetic path with his mind, speech and body because only the follower of the ascetic path acquires the unique fruit of liberation.

४४ : इहलोगपारत्तहिअं जेणं गच्छइ सुग्गइं।
बहुस्सुयं पज्जुवासिज्जा पुच्छिज्जत्थविणिच्छयं॥

जिस आचरण से लोक-परलोक दोनों में हित होता है तथा मृत्यु के पश्चात् सद्‌गति की प्राप्ति होती है, ऐसे सम्यग्ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये साधु को बहुश्रुत मुनि की सेवा पर्युपासना करनी चाहिए। तत्त्व के सम्यक् अर्थ की जिज्ञासा करनी चाहिए॥४४॥

44. In order to acquire the right knowledge that is beneficial for this life as well as the next and leads to a good rebirth, an ascetic should serve and worship a learned *shraman* and seek the right meaning of the fundamentals.

गुरु की विनय मर्यादा

४५ : हत्थं पायं च कायं च पणिहाय जिइंदिए।
अल्लीणगुत्तो निसिए सगासे गुरुणो मुणी॥

इन्द्रियों को जीतने वाला साधु गुरुदेव के न अति दूर, न अति निकट किन्तु यथोचित उपयोगपूर्वक अपने हाथ, पैर और शरीर को मर्यादित रूप में संयमित करके बैठे॥४५॥

४६ : न पक्खओ न पुरओ नेव किच्चाण पिट्ठओ।
न य ऊरुं समासिज्जा चिट्ठिज्जा गुरुणंतिए॥

आचार्य आदि गुरुजनों के बराबर न बैठे; आगे, पीठ करके या पीछे तथा जाँघ से जाँघ सटाकर नहीं बैठना चाहिए॥४६॥

THE RESPECT OF THE *GURU*

45, 46. A disciplined ascetic should sit neither very near nor too far from the *guru* but at a comfortable distance after properly composing and disciplining his body and limbs.

An ascetic should not sit in front (showing his back) or at the flanks or at the back of the *guru*. He should also not sit touching his thighs with those of the guru.

भाषा-विवेक

४७ : अपुच्छिओ न भासिज्जा भासमाणस्स अंतरा।
पिट्ठिमंसं न खाइज्जा मायामोसं विवज्जए॥

विनयवान साधु गुरुजनों के बिना पूछे नहीं बोले। बीच-बीच में नहीं बोले। पीठ पीछे चुगली नहीं खाए और कपटपूर्वक असत्य का थोड़ा भी सहारा न लेवे॥४७॥

DISCIPLINE OF SPEECH

47. A disciplined *shraman* should not speak without the permission of his *guru*. He should also not intervene in a

conversation. An ascetic should not criticize his *guru* in his absence. He should also not resort to lies or duplicity.

विशेषार्थ :

श्लोक ४७. पिट्ठिमंसं–पृष्टमांस–इस शब्द का सीधा अर्थ होता है पीठ का माँस न खाना। किन्तु यहाँ पर शब्द का लाक्षणिक अर्थ है–पीठ पीछे चुगली या निंदा नहीं करना। निंदा को अत्यन्त घृणित कर्म बताने के लिये यहाँ उसके लिए 'पृष्टमांस' शब्द का प्रयोग हुआ है। (आचार्यश्री आत्माराम जी म.)

ELABORATION :

(47) ***Pitthimans***—the literal meaning of this word is flesh of the back. But here it means to criticize behind the back. This metaphoric term has been used to lay stress on the abjectness of the act. (Acharyashri Atmaram ji M.)

४८ : अप्पत्तिअं जेण सिया आसु कुप्पिज्ज वा परो।
सव्वसो तं न भासिज्जा भासं अहियगामिणिं॥

जिस भाषा व शब्द के बोलने से मन में अप्रीति–द्वेष उत्पन्न होता हो एवं जिसे सुनकर कोई शीघ्र ही रुष्ट होता हो, ऐसी अहितकारिणी भाषा का प्रयोग सभी प्रकार से वर्जनीय है॥४८॥

48. It is prohibited for an ascetic to use such damaging language that inspires aversion and provokes immediate anger.

४९ : दिट्ठं मियं असंदिद्धं पडिपुन्नं वियं जियं।
अयंपिरमणुव्विग्गं भासं निसिर अत्तवं॥

आत्मवान अर्थात् आत्मा के केन्द्र में रहने वाला साधु वही भाषा बोले जो स्वयं अनुभव में आई हुई हो, जो सन्देहरहित हो अर्थात् जिसमें किसी प्रकार की शंका न हो, जो प्रतिपूर्ण हो, जो स्पष्ट हो तथा जो परिमित, वाचालतारहित, भयरहित स्वाभाविक स्वर में बोली जाये॥४९॥

49. An introvert ascetic should only use that language which he has perfected with experience, which is not ambiguous, which is correct and candid, and which can be spoken fearlessly without stammering and with brevity in normal voice.

विशेषार्थ :

श्लोक ४९. पडिपुन्नं-प्रतिपूर्ण-जो भाषा स्वर, व्यंजन, पद आदि भाषा गुणों से परिपूर्ण हो। व्याकरण के आधार पर सही हो। इससे यह सूचित होता है कि प्रवचन करने वाला मुनि भाषा की शुद्धाशुद्धि एवं लोक-व्यवहार आदि का ज्ञाता होना चाहिए।

ELABORATION :

(49) ***Padipunnam***—complete; here it means phonetically and grammatically complete or correct. This also indicates that discourses are to be given by an ascetic who knows his language and grammar as well as the social etiquette.

उपहास न करें

५० : आयारपन्नत्तिधरं दिट्ठिवायमहिज्जगं।
वायविक्खलियं नच्चा न तं उवहसे मुणी॥

आचार-प्रज्ञप्ति (आचार के महान् ग्रन्थ) के धारक (अथवा आचारांग एवं भगवतीसूत्र के पाठी) एवं दृष्टिवाद नामक पूर्व के पढ़ने वाले बहुश्रुत मुनि भी यदि कभी बोलते समय प्रमादवश वचन से स्खलित हो जाये और अशुद्ध शब्द का प्रयोग कर ले तो उन महापुरुषों का उपहास नहीं करना चाहिए॥५०॥

NEGATION OF MOCKERY

50. If by chance even a highly learned *acharya*, who is a scholar of the book of conduct, *Acharang Sutra* and *Bhagavati Sutra*, and *Drishtivad* (a *Purva*), uses a wrong word no ascetic should make fun of him.

५१ : नक्खत्तं सुमिणं जोगं निमित्तं मंत भेसजं।
गिहिणो तं न आइक्खे भूयाहिगरणं पयं॥

साधु को नक्षत्र, स्वप्न, योग, निमित्त, मंत्र और औषधि आदि के विषय में (फलाफल सम्बन्धी) चर्चा गृहस्थों के साथ नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इनके विषय में कथन करना षट्कायिक जीवों की हिंसा का कारण है॥५१॥

51. A *shraman* should not indulge in discussions with householders on subjects like astrology, dream-divining, esoteric concoctions, reading omens, mantra, medicines, etc. because such discussions may cause harm to beings of all the six classes.

विशेषार्थ :

श्लोक ५१. नक्खत्तं–नक्षत्र–ज्योतिष या पचांग आदि की सूचनाएँ।

सुमिणं–स्वप्नं–स्वप्न-फल।

जोगं–योगं–औषधि अथवा खाद्य पदार्थों की संयोग विधि; वशीकरण।

निमित्तं–अतीत, वर्तमान और भविष्य संबंधी शुभाशुभ फल बताना।

ELABORATION :

(51) *Nakkhattam*—astrology.

Suminam—dream divining.

Jogam—esoteric concoctions of eatables and medicines; mesmerizing.

Nimittam—reading omens.

शय्या-विवेक

५२ : अन्नट्ठं पगडं लयणं भइज्ज सयणासणं।
उच्चारभूमिसंपन्नं इत्थी-पसु-विवज्जिअं॥

साधु ऐसे स्थान या भवन में ठहरे जो गृहस्थ के रहने के लिए हो अर्थात् जो साधु के निमित्त न बनाया गया हो तथा जो उच्चार-प्रस्रवण भूमि से युक्त हो, जहाँ स्त्री, पशु आदि नहीं रहते हों। इसी प्रकार शय्या तथा आसनादि भी जो दूसरों के लिए बने हों वे ही अपने उपयोग में लेवे॥५२॥

PLACE OF STAY

52. An ascetic should stay at a place or house that has been constructed for a householder and not for ascetics. There should be a proper place to attend to calls of nature in the premises and there should be no woman or animal living there. He should use only those things (bed, mattress, etc.) which were made for others.

५३ : विवित्ता अ भवे सिज्जा नारीणं न लवे कहं।
गिहिसंथवं न कुज्जा कुज्जा साहूहिं संथवं॥

उपाश्रय आदि में यदि अन्य साधु न हो, वह अकेला ही हो तो केवल स्त्रियों के बीच धर्मकथा प्रवचन आदि न करे। गृहस्थों के साथ परिचय या वार्त्तालाप भी न करे। साथी साधुओं के या सत्पुरुषों के साथ ही परिचय या वार्त्तालाप करना चाहिए॥५३॥

53. At the place of stay if there are no other ascetics and he is alone, he should avoid discussions and discourses with women He should not be friendly with householders and should not even talk to them. He should talk and be friendly with ascetics or pious people only.

ब्रह्मचर्य-रक्षा के उपाय

५४ : जहा कुक्कुडपोअस्स निच्चं कुललओ भयं।
एवं खु बंभयारिस्स इत्थी-विग्गहओ भयं॥

ब्रह्मचारी पुरुष को स्त्री के शरीर से उसी प्रकार भय की संभावना बनी रहती है जिस प्रकार मुर्गी के बच्चे को बिल्ली से सदा भय बना रहता है॥५४॥ (देखें चित्र क्रमांक १८)

PROTECTING CELIBACY

54. A female body is always a menace to a celibate person as is a cat to chicken. **(illustration No. 18)**

५५ : चित्तभित्तिं न निज्झाए नारिं वा सुअलंकियं।
भक्खरं पिव दट्ठूणं दिट्ठिं पडिसमाहरे॥

भले ही कोई स्त्री वस्त्राभूषण से विभूषित हो अथवा फटे-पुराने वस्त्र पहनी हो, ब्रह्मचारी पुरुष उस ओर टकटकी लगाकर नहीं देखे। यहाँ तक कि दीवार पर चित्रित स्त्री के चित्र को भी न देखे। यदि कभी स्त्री पर दृष्टि पड़ जाय तो तत्काल अपनी दृष्टि को उसी तरह हटा ले जैसे मध्यान्ह काल के सूर्य पर दृष्टि पडने पर स्वतः खिंच जाती है॥५५॥

55. Irrespective of her being dressed in rags or adorned with beautiful dress and ornaments, a celibate person should never stare at a woman He should not even look at a fresco or a picture of a woman. If ever he chances to look at a woman he should at once shift his eyes as one does by reflex when he happens to look at the midday-sun.

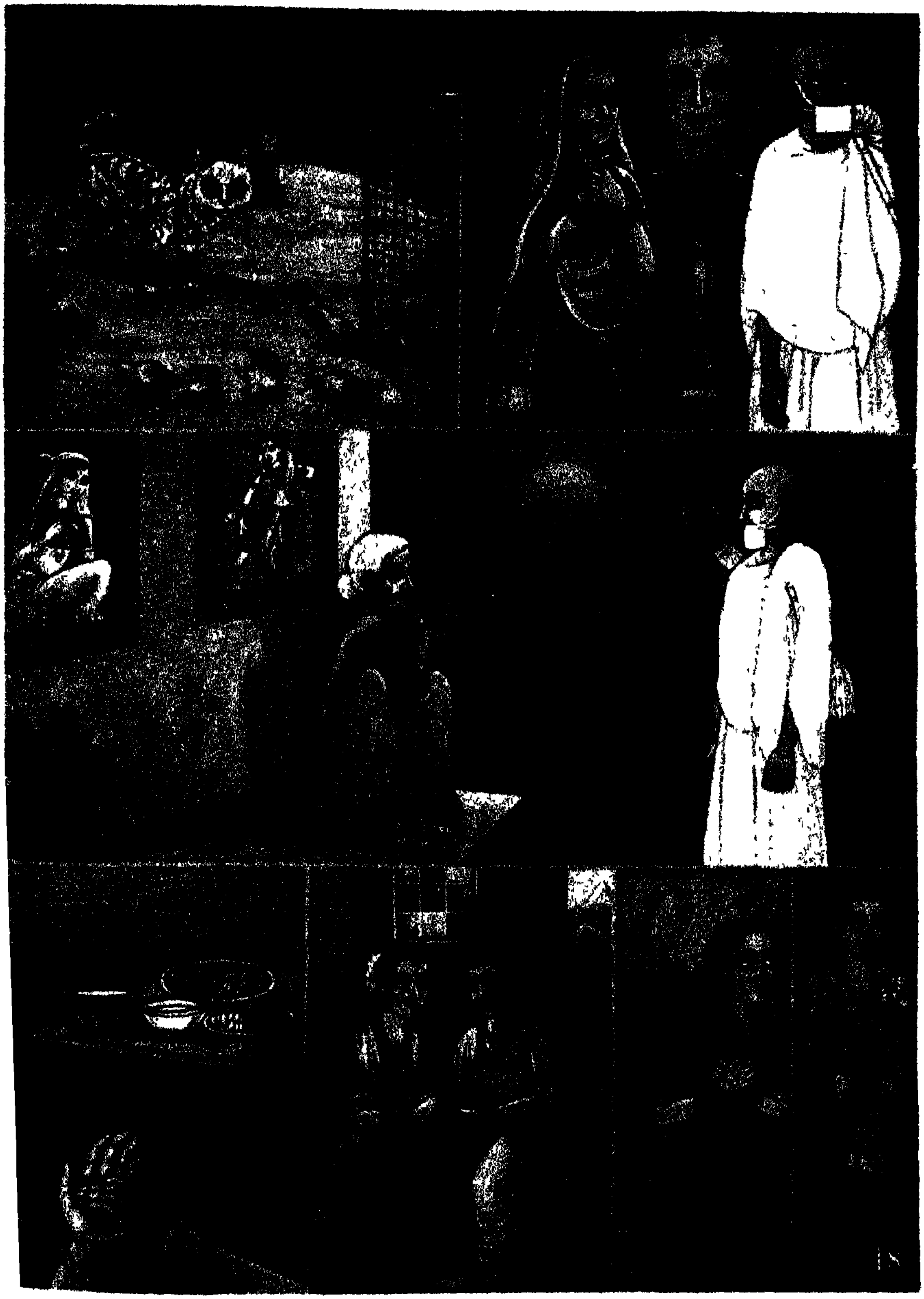
५६ : हत्थपायपलिच्छिन्नं कन्ननासविगप्पियं।
अवि वाससयं नारिं बंभयारी विवज्जए॥

जिस स्त्री के हाथ-पैर कटे हुए हों एवं कान-नाक विकृत हों तथा जो चाहे सौ वर्ष की बुढ़िया हो, ऐसी विकृतांग स्त्री के संसर्ग से भी ब्रह्मचारी बचता रहे॥५६॥

56. Even if a woman is ugly, with amputated limbs, disfigured ears and nose, or hundred years old, a celibate person should avoid her company.

५७ : विभूसा इत्थिसंसग्गो पणीअं रसभोअणं।
नरस्सत्तगवेसिस्स विसं तालउडं जहा॥

आत्मा की साधना में लगे ब्रह्मचारी के लिये शरीर की विभूषा, स्त्री का संसर्ग और पौष्टिक-विकारवर्धक भोजन तालपुट नामक जहर के समान है॥५७॥



ब्रह्मचर्य के विघातक तत्त्व

FACTORS THAT NEGATE CELIBACY

१. जहा कुक्कुडपोयस्स–जिस प्रकार मुर्गी के बच्चों को बिल्ली से भय बना रहता है, इसलिए वे उससे दूर ही रहते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मचारी स्त्री के शरीर से सदा दूर रहे।

1. Just as chickens keep away from a cat out of fear, so should a celibate person, driven by fear, keep his distance from a female body

२. चित्तभित्तिं न निज्झाए–स्त्री के भित्ति चित्र को अथवा आभूषणों से सज्जित स्त्री को ब्रह्मचारी नहीं देखे। *(श्लोक ५५)*

2 A person who has taken the vow of celibacy should never look at the pictures of women or women adorned with ornaments.

(verse 55)

३. हत्थ-पाय पडिच्छिन्न–जिसके हाथ-पैर कटे हुए हो, कान-नाक आदि विकृत हो, वैसी सौ वर्ष की बूढ़ी स्त्री हो तब भी ब्रह्मचारी उससे दूर रहे और उस पर दृष्टि पड़ने पर तुरन्त दृष्टि नीची झुका ले, जैसा कि मध्याह्न के सूर्य पर दृष्टि पड़ते ही स्वयं नीची झुक जाती है।

(श्लोक ५६)

3 Even if a woman is ugly, disfigured or aged, a celibate person should not go near her If he chances to look at such woman he should at once shift his glance as one does when he happens to look at the midday-sun. *(verse 56)*

४ विभूसा इत्थी संसग्गी–आत्म-गवेषणा करने वाले ब्रह्मचारी के लिए विभूषा, शृंगार, स्त्री-संसर्ग, दूध, मेवा, मिठाई मधुर-स्निग्ध प्रणीत भोजन आदि ताल-पुट विष (हथेली पर रखा हुआ तीव्र विष) की तरह घातक होते हैं। *(श्लोक ५७)*

4 For a celibate devoted to exploration of the self, make-up, embellishing, the company of the opposite sex, consuming rich food including milk, dry-fruits, sweets, etc , is as deadly as a fatal poison in his palm. *(verse 57)*

57. To a celibate, indulging in spiritual practices, beautifying his body, company of woman and richly nutritious food are like a fatal poison.

५८ : अंगपच्चंगसंठाणं चारुल्लविअपेहिअं।
इत्थीणं तं न निज्झाए कामरागविवड्ढणं॥

ब्रह्मचारी स्त्रियों के अंग, प्रत्यंग, संस्थान, मीठी वोली, कटाक्ष आदि कदापि न देखे, क्योंकि ये सव काम-राग के वढ़ाने वाले और ब्रह्मचर्य का नाश करने वाले है॥५८॥

58. Those who are celibate should never look with interest at parts of the body, figure, sweet voice, gestures etc. of women because all these inspire lust and ruin celibacy.

५९ : विसएसु मणुन्नेसु पेमं नाभिनिवेसए।
अणिच्चं तेसिं विन्नाय परिणामं पुग्गलाण उ॥

तत्त्वज्ञ मुनि पुद्गलों के परिणमन को अनित्य जानकर मनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गंध स्पर्श आदि विषयों में रागभाव न करे॥५९॥

59. A *shraman*, having knowledge of the fundamentals, should consider the manifestations of matter to be transitory and avoid attachment with things with pleasing sound, form, taste, smell and touch.

६० : पोग्गलाणं परीणामं तेसिं नच्चा जहा तहा।
विणीअतण्हो विहरे सीईभूएण अप्पणा॥

तत्त्वज्ञ मुनि इन्द्रियों के विषयभूत पुद्गलों के परिणमन की वास्तविकता जानकर तृष्णा से सर्वथा मुक्त होकर, क्षमारूप अमृत जल से आत्मा को उपशान्त बनाकर स्वतंत्र भाव से विचरण करे॥६०॥

60. Knowing about the reality of the continuos transformation of matter which is the subject of the physical

senses, he should free himself of the desires, pacify his soul with the water of magnanimity and move with complete freedom.

६१ : जाइ सद्धाइ निक्खंतो परिआयट्ठाणमुत्तमं।
तमेव अणुपालिज्जा गुणे आयरियसम्मए॥

साधु को चाहिए कि जिस श्रद्धा के साथ संसार का त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण की है उसी आचार्य-सम्मत (तीर्थंकर कथित) गुणों में रही हुई श्रद्धा का पूर्ण दृढ़ता के साथ पालन करे॥६१॥

61. It is befitting an ascetic to maintain the faith in the virtues conveyed by the acharya (propagated by the Tirthankar), the faith with which he renounced the world and got initiated to begin with.

अध्ययन उपसहार

६२ : तवं चिमं संजमजोगं च सज्झायजोगं च सया अहिट्ठिए।
सूरे व सेणाइ समत्तमाउहे अलमप्पणो होइ अलं परेसिं॥

तप की आराधना करने वाला संयम योग पालक एवं स्वाध्याय-योगनिष्ठ मुनि, इन्द्रिय और कषाय से अपनी और दूसरों की रक्षा करने में उसी प्रकार समर्थ हो, जिस प्रकार सेना से घिर जाने पर एक शस्त्रधारी वीर योद्धा अपनी एवं पर की रक्षा करने के लिए समर्थ होता है॥६२॥

CONCLUSION OF THE CHAPTER

62. The *shramans* who practice austerities, follow the ascetic discipline, and remain meticulous in studies, are able to protect themselves and others from the onslaught of senses and passions as a brave warrior equipped with weapons is able to save himself and others from the surrounding army.

६३ : सज्झाय सज्झाणरयस्स ताइणो अपावभावस्स तवे रयस्स।
विसुज्झई जं सि मलं पुरेकडं समीरियं रुप्पमलं व जोइणा॥

स्वाध्याय और शुभ ध्यान में लीन जगज्जीवों का त्राता एवं पाप की कालिमारहित विशुद्धभाव वाले साधु का पूर्वजन्म-संचित कर्ममल उसी प्रकार दूर हो जाता है, जिस प्रकार अग्नि द्वारा तपाये जाने पर सोने एवं चाँदी का मल दूर हो जाता है॥६३॥

63. A *shraman* who is lost into studies and pious meditation, who is the savior of all beings, who is free of the shadow of sin, and who has gained the lofty heights of purity of attitude, gets free of the *karmic* dirt exactly as the precious metals become free of impurities when heated.

६४ : से तारिसे दुक्खसहे जिइंदिए सुएण जुत्ते अममे अकिंचणे।
विरायई कम्मघणम्मि अवगए कसिणब्भपुडावगमे व चंदिमा॥
त्ति बेमि।

पूर्व में बताये हुए सद्गुणों वाला, परीषहों (दुःखों) को समभाव से सहन करने वाला, चचल इन्द्रियों को जीतने वाला, श्रुतज्ञान को धारण करने वाला, किसी प्रकार की भी ममता नहीं रखने वाला, परिग्रह के भार से हलका, अकिंचन, पूर्ण संयमी साधु, कर्म रूप बादलों के हट जाने पर उसी तरह सुशोभित होता है, जैसे सम्पूर्ण बादलों के पटल से पृथक् होने पर चन्द्रमा शोभित होता है॥६४॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

64. An ascetic who possesses the virtues mentioned earlier, who tolerates afflictions with equanimity, who is the conqueror of the senses, who has acquired the knowledge of scriptures, who is devoid of any fondness, who is free of the load of possessions, who is absolutely disciplined, gains a radiant glory when the dark shadow of *karmas* is removed. It is exactly like the moon gaining its radiant glory when the cloud cover drifts. . . . . So I say.

उपसंहार

आठवें अध्ययन में इन्द्रिय एव मन को अशुभ प्रवृत्तियो से हटाकर शुभ प्रवृत्ति में नियोजित करने की अनेक सुन्दर विधियाँ बताई गई हैं। इन विधियों में अध्यात्म के साथ-साथ नीति व व्यवहार की भी उत्तम प्रेरणा दी है। आचार्य भद्रबाहु ने कहा है–

तम्हा उ अप्पसत्थं पणिहाणं उज्झिऊण समणेणं।
पणिहाणंमि पसत्थं भणिओ आयारपणिहिं त्ति।

–निर्युक्ति गाथा ३०८

इन कषाय-विजय, इन्द्रिय-विजय, निद्रा-विजय, हास्य-विजय आदि आगम निर्देशो पर चिन्तन करता हुआ श्रमण अप्रशस्त-प्रणिधान का त्यागकर प्रशस्त-प्रणिधान मे स्थिर रहे इसी का नाम आचार-प्रणिधि है।

Conclusion

This eighth chapter gives many effective methods for shifting the senses and the mind from indulging in the evil activities to that in the pious activities. These methods are also helpful in refining the social and ethical behavior. *Acharya Bhadrabahu* has said—"The process of contemplating on these directions about winning over passions, senses, sleep, laughter etc. from the *Agams* and consequently rejecting the evil and accepting the pious is called *Achar Pranidhi* or cultivating conduct.

॥ आठवाँ अध्ययन समाप्त ॥

END OF EIGHTH CHAPTER

नवम अध्ययन : विनय समाधि

प्राथमिक

इस अध्ययन का विनय समाधि नाम अनेक दृष्टियों से अर्थपूर्ण है। आठवें अध्ययन में आचार का वर्णन करने के पश्चात् गुरुजनों के साथ शिष्ट व अनुशासित व्यवहार की शिक्षा देने के लिए इस अध्ययन में बहुत ही सुन्दर उदाहरणों द्वारा विनय का वर्णन किया है। विनय शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। आगमो में आचार की विविध धाराओं के अर्थ में विनय शब्द का प्रयोग हुआ है।

प्रश्नव्याकरणसूत्र में बताया है-विनय तप है, तप धर्म है, इसलिए विनय की आराधना सतत करनी चाहिए।

ज्ञातासूत्र में जिनधर्म का मूल विनय बताकर उसके दो भेद बताये हैं-आगार-विनयरूप श्रावकधर्म तथा अणगार-विनयरूप पंचमहाव्रतधर्म। यहाँ विनय शब्द सम्पूर्ण आचारधर्म का प्रतिनिधित्व करता है। इसी अध्ययन मे धर्म का मूल विनय बताया है और उसका परम फल मोक्ष।

औपपातिकसूत्र में विनय के सात भेद बताये हैं उनमें एक भेद है उपचार विनय। उपचार का अर्थ है व्यवहार। जैसे-गुरु आने पर खड़ा होना, हाथ जोडना, उनकी सेवा करना, बुलाने पर आसन से उठकर खडे होकर बोलना आदि। व्यवहार मे विनम्रता, गुरुजनों के प्रति आदर, बहुमान भाव रखना विनय का व्यवहार पक्ष है।

इस नवम अध्ययन में अधिकतर उपचार विनय के विविध रूपों पर प्रकाश डाला गया है।

इस अध्ययन के चार उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में आचार्य (गुरु) के साथ शिष्य किस प्रकार व्यवहार करे इस विषय पर विशद प्रकाश डाला है।

दूसरे उद्देशक मे विनय-अविनय का अन्तर बताकर विनीत को सुखी एवं सम्पदा का भागी बताया है और अविनीत विपदा को प्राप्त होता है।

तीसरे उद्देशक में बताया है–विनय युक्त जीवन व्यवहार रखने वाला पूज्य है। अनेक गुणों द्वारा उसकी पूज्यता का प्रगटीकरण किया गया है।

चौथे उद्देशक में चार प्रकार की समाधियों का वर्णन है। समाधि का अर्थ किया है–शान्ति, आरोग्य, मनःप्रसन्नता एवं हित-सिद्धि। इस प्रकार की समाधि-प्राप्ति के लिए विनय सीखना चाहिए। यह चतुर्थ उद्देशक का विषय है।

यह विनय अध्ययन गुरु-शिष्य के मधुर सम्बन्धों पर बहुत ही सुन्दर प्रकाश डालता है। आज की शिक्षा प्रणाली के सन्दर्भ में गुरु-शिष्य के सम्बन्धों पर यह एक मार्गदर्शक निरूपण है।

NINTH CHAPTER : THE BLISS OF HUMBLENESS

INTRODUCTION

The title of this chapter, Vinaya Samadhi is meaningful from numerous angles Various aspects of the ascetic conduct have been discussed in details in the eighth and the earlier chapters. Now in this ninth chapter, making use of some pertinent examples, humbleness has been explained in order to teach the disciples how to behave with their elders in a courteous and disciplined manner The word *vinaya* has a very wide meaning In the *Agams* it has been used to represent various aspects of the ascetic conduct.

Prashna Vyakaran states that *vinaya* is an austerity and austerity is *dharma*, so it should always be practiced

Jnata Sutra has gone a step further and said that the root of *dharma* is *vinaya* and its ultimate fruit is liberation. It then divides *vinaya* into two categories—*agaar vinaya* or the duties of the laity and *anagaar vinaya* or the duties of the ascetic based on the five vows Thus, here *vinaya* envelopes the complete codes of conduct

Aupapatik Sutra divides *vinaya* into seven categories. One of these is called *upachaar vinaya* which means politeness in behavior This includes—standing up when the *guru* comes, offer him salutations by joining palms, to serve him obediently, etc. The behavioral aspect of *vinaya* is to show respect, reverence and humbleness to the seniors.

In this chapter mainly this behavioral aspect has been explained in its different applications.

The chapter has four sections The first section discusses in details how a disciple should behave with his *guru*

The second section shows the difference between humbleness and rudeness and their respective fruits.

The third section shows the virtues of one who is humble and concludes that he should be respected

The fourth section discusses the four blissful goals like peace, health, happiness and accomplishments and shows humbleness as the means to achieve these

The chapter throws a revealing light on the teacher-student relationship and can serve as a guide even in the prevailing education system.

नवमं अज्झयणं : विणय समाही : पढमो उद्देसो
नवम अध्ययन : विनय समाधि : प्रथम उद्देशक

NINTH CHAPTER (FIRST SECTION) : VINAYA SAMAHI
THE BLISS OF HUMBLENESS

अविनय का फल

१ : थंभा व कोहा व मयप्पमाया गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो फलं व कीयस्स वहाय होइ॥

जो साधु अहंकार, क्रोध, मद तथा प्रमाद के कारण गुरुओं के समीप विनय धर्म की शिक्षा ग्रहण नहीं करता है, तो वे अहकार आदि दुर्गुण उसके ज्ञान आदि सद्गुणो का उसी प्रकार नाश कर देते हैं, जिस प्रकार बाँस का फल स्वयं बाँस का नाश करने वाला होता है॥१॥

FRUITS OF RUDENESS

1. If under the influence of conceit, anger, intoxication and inactivity an ascetic does not take lessons of *vinaya* these same vices destroy all his virtues including knowledge just as the bamboo is destroyed by its own fruit.

विशेषार्थ

श्लोक १. पमायं–यहाँ प्रमाद का अर्थ इन्द्रियों की आसक्ति, नींद, मद्यपान, विकथा ... है।

विणय–विनय का अर्थ अनुशासन, नम्रता और आचारविधि है। विनय के भेद हैं–ग्रहण-विनय अथवा शिक्षा-विनय–अर्थात् विनय के अन्तर्गत आने वाले उपरोक्त विषयो का ज्ञान। आसेवन-विनय–अर्थात् उक्त ज्ञान का अनुपालन तथा अभ्यास करना।

कीयस्स–कीचकस्य–बाँस का–यह उदाहरण इस कारण दिया है कि बाँस फल लगने पर सूख जाता है।

ELABORATION :

(1) ***Pamayam***—inactivity caused by various reasons including indulgence in mundane pleasures, slumber, alcoholism and purposeless conversation

Vinayam—discipline, humbleness and proper conduct. It has two stages—learning and applying these in ones life

Keeyassa—bamboo tree; it has been used as an example because a bamboo tree dries naturally when it bears fruit.

२ : जे आवि मंदि त्ति गुरुं विइत्ता डहरे इमे अप्पसुअ त्ति नच्चा।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा करंति आसायण ते गुरूणं॥

जो साधु अपने गुरुओं को मन्दबुद्धि या अल्पज्ञानी, अल्पवयस्क एवं अल्पश्रुत जानकर उनकी अवहेलना करते हैं तथा उनके उपदेश को मिथ्या मानते हैं वे अपने गुरुओं की आशातना करने वाले हैं॥२॥

2. Considering their teachers to be dull wit, immature and having little knowledge of the scriptures, the ascetics who neglect their teachers and take their teaching to be false are in fact doing great dishonor to their teachers.

विशेषार्थ

श्लोक २ आसायण–आशातना–विनाश करना या दुर्व्यवहार करना। गुरु की अवमानना करने का प्रयत्न अथवा सम्यग्दर्शन का लोप जिस क्रिया से हो वह आशातना कहलाती है। अन्य सदर्भों में इसके अर्थ होते है–प्रतिकूल व्यवहार, विनयहीनता, विरोधभाव विपरीत कथन आदि।

ELABORATION :

(2) ***Asayan***—misbehavior; indiscipline; misconduct; impropriety; insubordination, to neglect the teacher; to indulge in any activity that is detrimental to right perception.

गुरु-हीलना विनाशकारी है

३ : पगईइ मंदा वि भवंति एगे डहरा वि जे सुअबुद्धोववेआ।
आयारमंतो गुणसुट्ठिअप्पा जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा॥

कई आचार्य आयु से वृद्ध होते हुए भी स्वभाव से मन्दबुद्धि होते हैं तथा बहुत-से छोटी अवस्था वाले नवयुवक भी श्रुतधर एवं बुद्धि-सम्पन्न होते हैं। अतः सदाचारी और सद्गुणी गुरुजनों की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए भले ही वे ज्ञान में न्यूनाधिक कैसे ही हों, क्योंकि इनकी अवज्ञा सभी सद्गुणों को भस्मीभूत कर देती है जैसे अग्नि ईंधन राशि को॥३॥

४ : जे आवि नागं डहरं ति नच्चा आसायए से अहिआय होइ।
एवायरियं पि हु हीलयंतो निअच्छई जाइपहं खु मंदो॥

जिस प्रकार यह सर्प तो बहुत छोटा है, इस विचार से कोई उसकी कदर्थना–आशातना करता है तो वह लघु सर्प भी अहितकारक होता है। उसी प्रकार अल्पवयस्क आचार्य की अवहेलना करने वाला मन्दबुद्धि साधु जन्म-मरण के पथ का पथिक वनता है अर्थात् संसार में परिभ्रमण करता है॥४॥

INSULT OF *GURU* INVITES DESTRUCTION

3, 4. Some *acharyas*, although senior in age, are not profound in knowledge and others, although young in age, are intelligent and scholarly. Therefore, one should never neglect disciplined and virtuous seniors irrespective of the comparative depth of their knowledge. Because such neglect consumes all virtues exactly as fire consumes fuel.

It is harmful to ignore a little snake thinking that it is very small. In the same way an ignorant ascetic who neglects a young *acharya* is caught in the cycles of life and death.

५ : आसीविसो वावि परं सुरुट्ठो किं जीवनासाउ परं नु कुज्जा।
आयरियपाया पुण अप्पसन्ना अबोहिआसायण नत्थि मोक्खो॥

आशीविष सर्प भी क्रुद्ध होने पर प्राण नाश से अधिक और क्या अहित कर सकता है? परन्तु पूज्यपाद आचार्य तो अप्रसन्न होने पर अबोधि के कारण बनते हैं। अतः आचार्य की आशातना करने से कभी मोक्ष नहीं मिल सकता है॥५॥

5. The maximum harm that a highly poisonous snake can do is to kill someone by its venom But if an *acharya* becomes angry he deprives one of knowledge or enlightenment, the only means of liberation

६ : जो पावगं जलिअमवक्कमिज्जा आसीविसं वा वि हु कोवइज्जा।
जो वा विसं खायइ जीविअट्ठी एसोवमासायणया गुरूणं॥

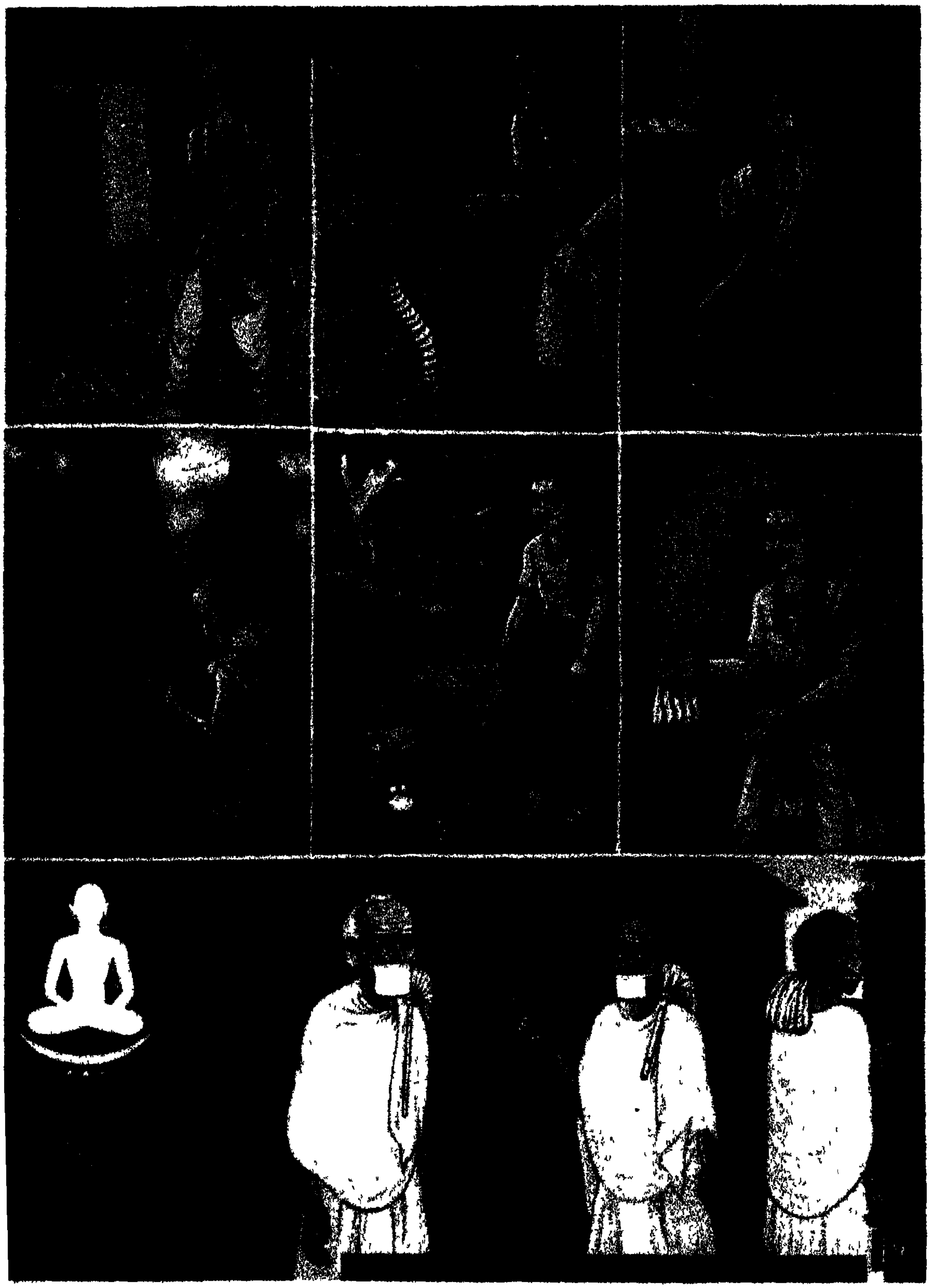
७ : सिआ हु से पावय नो डहिज्जा आसीविसो वा कुविओ न भक्खे।
सिआ विसं हालहलं न मारे न आवि मुक्खो गुरुहीलणाए॥

जो साधु आचार्य की आशातना करता है, वह मानो जलती हुई अग्नि को लाँघने, जहरीले सर्प को क्रुद्ध करने तथा जीने की इच्छा से तत्काल प्राणहारी हलाहल नामक विष को खाने जैसी मूर्खता करता है॥६॥

संभव है कदाचित् धधकती हुई प्रचण्ड अग्नि भी भस्म न करे, छेडा हुआ क्रुद्ध सर्प भी न काटे तथा खाया हुआ हलाहल विष भी न मारे, परन्तु गुरु की आशातना करने वाले शिष्य को मोक्ष मिलना संभव नहीं है॥७॥

6, 7. An ascetic who indulges in the act of insubordination of his teacher is in fact committing a mistake like crossing through leaping flames or disturbing a poisonous snake or consuming a fatal poison with a hope that he would still survive.

There are chances that the leaping flames may not turn him to ashes, a disturbed snake may not bite and a fatal poison may not kill, but neglect of the teacher will certainly harm the cause of liberation.



अविनय का कटु फल

BITTER CONSEQUENCES OF MISBEHAVIOR

१. जो पावग जलिय–जो मूर्ख या अभिमानी व्यक्ति जलती हुई अग्नि को नगे पॉवो से लॉघता है, आशीर्विष सर्प (जिसकी दाढ़ो मे तीक्ष्ण जहर हो) को कुपित करता है. जीवित रहने की इच्छा से जहर खाता है तो ये सब उसके लिए अनिष्टकारी होते हैं, किन्तु अगर इनके दुष्परिणाम से कोई बच भी जाये तब भी गुरु का अनादर/अवहेलना करने वाला उसके दुष्परिणाम से नही बच सकता।

(अध्ययन ९/१, श्लोक ८)

1 If an ignorant or conceited person tries to cross a bed of burning coal with bare feet, goads a highly venomous snake, or consumes poison, he is sure to come to grave harm However, there is still a possibility that he remains unhurt But it is impossible to remain untouched by the grave consequences of showing disrespect or disregard to one's guru

(Chapter 9/1, verse 8)

२ जो पव्वय सिरसा मित्तुमिच्छे–कोई पर्वत से सिर फोड़ने की चेष्टा करता है या सोये हुए केसरी सिह को छेडछाड करके जगाता है तथा तीक्ष्ण भालो की नोक पर हाथ से प्रहार करता है वह उसके लिए अनिष्टकारी है। कदाचित् उसके दुष्परिणामो से वह बच भी जाये, परन्तु जो अपने गुरुजनो की अवज्ञा/अवहेलना करता है, उसको मुक्ति नही मिल सकती।

(अध्ययन ९/१, श्लोक ९)

2 It is harmful to hit one's head on a rock, disturb a sleeping lion, or push at the sharp points of a bunch of lances with one's bare palm. However, there still is a possibility that one might remain unhurt But it is impossible to remain untouched by the grave consequences of showing disrespect or disregard to one's seniors and elders

(Chapter 9/1, verse 9)

८ : जो पव्वयं सिरसा भित्तुमिच्छे सुत्तं व सीहं पडिबोहइज्जा।
जो वा दए सत्तिअग्गे पहारं एसोवमाऽऽसायणया गुरूणं॥

कठिन पर्वत को मस्तक की टक्कर से फोड़ने, सोते हुए सिंह को जगाने तथा भाले की तीक्ष्ण धार पर अपने हाथ का प्रहार करने की इच्छा के समान है गुरुजनों की आशातना करना॥८॥

९ : सिआ हु सीसेण गिरिं पि भिंदे, सिआ हु सीहो कुविओ न भक्खे।
सिआ न भिंदिज्ज व सत्तिअग्गं न आवि मुक्खो गुरुहीलणाए॥

कदाचित् कोई सिर की टक्कर से पर्वत को भी फोड दे, क्रुद्ध हुआ सिंह भी कदाचित् न मारे, भाले की धार भी न काटे किन्तु गुरु की अवहेलना करने वाला शिष्य कभी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता॥९॥ (देखें चित्र क्रमांक १९)

8, 9. Insubordination to the teacher is like the desire to hammer ones head at a rock on the hill, disturb a sleeping lion and slap at the edge of a sharp lance

It is possible that someone may shatter a rock by hammering with his head. an angry lion may not kill and the sharp edge of a lance may not cut, but neglect of the teacher will certainly harm the cause of liberation. **(illustration No. 19)**

१० : आयरिअपाया पुण अप्पसन्ना अबोहिआसायण नत्थि मोक्खो।
तम्हा अणाबाहसुहाभिकंखी गुरुप्पसायाभिमुहो रमिज्जा॥

पूज्य आचार्यों को अप्रसन्न करने वाला व्यक्ति बोधि-लाभ प्राप्त नहीं कर सकता तथा वह मोक्ष के सुख को भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए मोक्ष-सुख की इच्छा करने वाले मुनि का कर्त्तव्य है कि वह अपने गुरुओं की कृपा प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे॥१०॥

10. A person who displeases revered *acharyas* can never gain enlightenment and so the bliss of liberation is beyond

him. That is why it is the duty of a disciple desirous of liberation to work for the blessings of his teachers.

ज्ञानी होने पर भी गुरु का विनय करे

११ : जहाहिअग्गी जलणं नमंसे नाणाहुई-मंतपयाभिसित्तं।
एवायरियं उवचिट्ठइज्जा अणंतनाणोवगओ वि संतो॥

जिस प्रकार अग्निहोत्री ब्राह्मण, मधु-घृतादि की विविध आहुतियों एवं मंत्र पदों से अभिषिक्त अग्नि को नमस्कार करता है वैसे ही शिष्य अनन्तज्ञान सम्पन्न हो जाने पर भी आचार्य की विनयपूर्वक उपासना/सेवा करे॥११॥

१२ : जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे तस्संतिए वेणइयं पउंजे।
सक्कारए सिरसा पंजलीओ कायग्गिरा भो मणसा अ निच्चं॥

जिस गुरु के पास आत्म-ज्ञान देने वाले धर्मशास्त्रों के गूढ़ पदों की शिक्षा ग्रहण की है, उनकी पूर्ण रूप से विनय-भक्ति करे। हाथ जोडकर सिर झुकाकर वन्दन करे और मन, वचन, काय के योग से सदैव यथोचित सत्कार करे यह शिष्य का कर्त्तव्य है॥१२॥

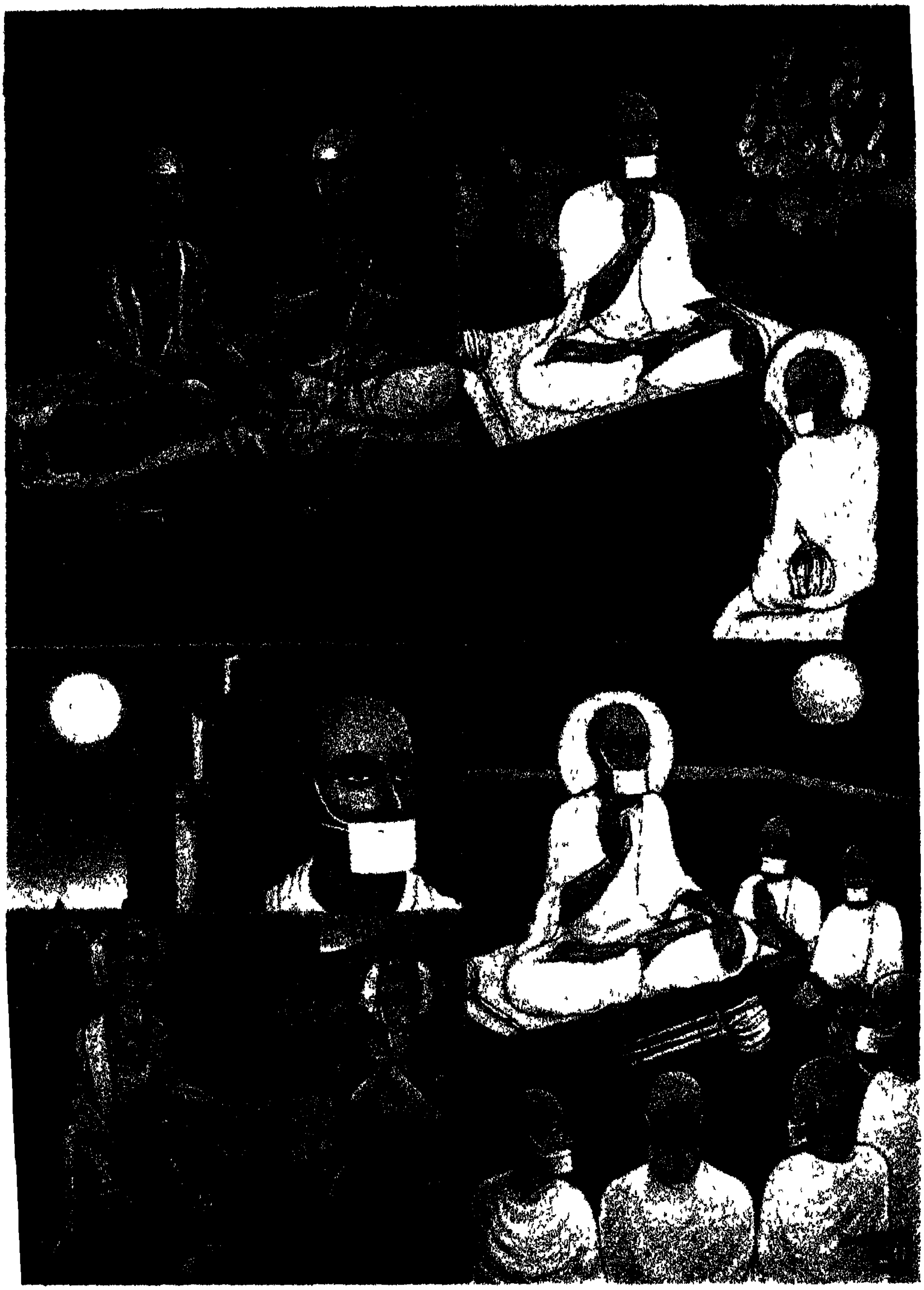
THE LEARNED SHOULD ALSO REVERE HIS *GURU*

11, 12. As a learned *Brahmin* while offering oblations and chanting mantras bows before the pious fire, a disciple should also humbly serve his teacher even after he has acquired unlimited knowledge

He should humbly worship the teacher from whom he has learned the meaningful texts of the scriptures that contain spiritual knowledge. Joining his palms he should bow his head in reverence before the teacher. He should always offer greetings with mind, speech and body to the teacher

विशेषार्थ ·

श्लोक १२. सिरसा पजलीओ–शिरसा प्राजलिक–सिर झुकाकर, हाथों को जोडकर।



चित्र परिचय : २०

Illustration No. 20

गुरुसेवा की महिमा

THE IMPORTANCE OF SERVING THE GURU

१ जहाहिअग्गि —जैसे अग्नि का देवता मानकर पूजा करने वाला ब्राह्मण घी आदि की आहुतियो से तथा वेद मत्रो से उसकी उपासना करता है, वैसे ही शिष्य चाहे अनन्त ज्ञान सम्पन्न हो जाय, देवताओं द्वारा पूज्य हो जाय तथापि वह विनयपूर्वक गुरु की सेवा करता रहे।

(अध्ययन ९/१, श्लोक ११)

1 A Brahmin worships fire considering it to be divine He offers butter and other oblations as well as Vedic chants In the same way, a disciple should serve his guru, irrespective of his becoming a great scholar or being revered by gods.

(Chapter 9/1, verse 11)

२ जहा निसते तवणच्चिमाली ...–जैसे दिन मे प्रदीप्त होता हुआ सूर्य सम्पूर्ण भरत क्षेत्र को प्रकाशित करता है। इन्द्र देवताओ द्वारा सेवित होकर शोभा पाता है। रात के समय बादलों से मुक्त आकाश में तारओ से घिरा शरद् पूर्णिमा का चन्द्र सुशोभित होता है, वैसे ही विनीत शिष्य परिवार मे परिवृत आचार्य शोभित होते है।

(अध्ययन ९/१, श्लोक १४-१५)

2 During the day the sun lights the whole hemisphere Indra's glory becomes evident when there are many gods in attendance. The glory of the full moon is displayed when it is surrounded by stars on a cloudless night In the same way a guru appears glorious when surrounded by a group of humble disciples.

(Chapter 9/1, verses 14-15)

यह पंचांग (दो पैर, दो हाथ, एक सिर) वंदन है। इसकी विधि है–दोनों घुटनों को भूमि पर टिकाकर, झुककर दोनों हथेली को धरती पर रखकर उन पर अपना मस्तक रखना।

ELABORATION :

(12) ***Sirasa panjalio***—join palms and bow head. This is known as the homage by five parts of the body (two feet, two hands and the head). The procedure is—putting both knees on ground bowing and putting both palms ahead on the ground and finally touching the palms with the head.

१३ : लज्जा दया संजम बंभचेरं कल्लाणभागिस्स विसोहिठाणं।
जे मे गुरू सययमणुसासयंति ते हिं गुरू सययं पूअयामि॥

कल्याणभागी साधु के लिए आत्मा को विशुद्ध करने वाले ये चार मुख्य स्थान हैं–लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य। शिष्य को सदैव यही भावना रखनी चाहिए कि जो गुरु मुझे शिक्षा देते रहते हैं, मैं उन गुरुओं की निरन्तर पूजा करता रहूँ॥१३॥

13. There are four things that help an ascetic seeking uplift cleanse his soul—modesty, clemency, discipline and celibacy. A disciple should always think that he should continue to worship the teacher who is imparting knowledge to him.

१४ : जहा निसंते तवणच्चिमाली पभासई केवलभारहं तु।
एवायरिओ सुय-सीलबुद्धिए विरायई सुरमज्झे व इंदो॥

जैसे रात बीत जाने पर देदीप्यमान सूर्य समस्त भरतक्षेत्र को अपनी किरणों से प्रकाशित करता है, वैसे ही आचार्य भी श्रुत, शील और बुद्धि से युक्त उपदेश द्वारा विश्व को प्रकाशित करते हैं तथा जिस प्रकार देव-सभा के मध्य विराजित इन्द्र शोभा पाता है, उसी प्रकार साधु-सभा में गणी-आचार्य शोभित होते हैं॥१४॥ **(देखें चित्र क्रमांक २०)**

14. When the night comes to an end the sun lights the whole hemisphere with its rays. In the same way an *acharya* enlightens the world with his preaching enriched by scriptural knowledge, modesty and wisdom *Indra's* (king of gods) glory becomes evident when there are many gods in attendance. In the same way a *gani* appears glorious when surrounded by a group of disciples. **(illustration No. 20)**

१५ : जहा ससी कोमुइजोगजुत्तो नक्खत्त-तारागणपरिवुडप्पा।
खे सोहई विमले अब्भमुक्के एवं गणी सोहइ भिक्खुमज्झे॥

जिस प्रकार नक्षत्र और ताराओं के समूह से घिरा चन्द्रमा, बादलों से रहित कार्तिक पूर्णिमा की रात में स्वच्छ आकाश में शोभित होता है, उसी प्रकार साधु समूह के बीच आचार्य शोभित होते है॥१५॥

15. The glory of the full moon is displayed when it is surrounded by stars on a cloudless night. In the same way a *gani (guru)* appears glorious when surrounded by a group of disciples. **(illustration No. 20)**

१६ : महागरा आयरिआ महेसी समाहिजोगे सुय-सीलबुद्धिए।
संपाविउकामे अणुत्तराइं आराहए तोसइ धम्मकामी॥

अनुत्तर ज्ञान आदि गुण रत्नों को पाने की इच्छा करने वाले निर्जरार्थी साधुओं को उचित है कि वे समाधियोग, श्रुत, शील और बुद्धि के महान् आकर (भंडार) मोक्ष की एषणा करने वाले आचार्य की आराधना करें और उन्हे सदा प्रसन्न रखें॥१६॥

16. An ascetic desirous of shedding *karmas* and obtaining virtues like knowledge should always worship and please the liberation seeking *acharya* who is a great storehouse of scriptural knowledge and embodiment of modesty, wisdom and serenity.

१७ : सुच्चाण मेहावी सुभासिआइं सुस्सूसए आयरियप्पमत्तो।
आराहइत्ता ण गुणे अणेगे से पावई सिद्धिमणुत्तरं॥
त्ति बेमि।

मेधावी मुनि इन सुभाषित वचनों को सुनकर अप्रमत्त रहता हुआ आचार्य की सेवा करे। इस प्रकार वह अनेक सद्‌गुणों की आराधना करता हुआ अनुत्तर सिद्धिस्थान को पा लेता है॥१७॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

17. After hearing these aphorisms an intelligent ascetic should zealously serve the *acharya*. This is the way he can acquire many virtues and proceed towards the unique accomplishment known as liberation. . . . . . So I say.

॥ नवम अध्ययन प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

END OF NINTH CHAPTER (FIRST SECTION)

नवमं अज्झयणं : विणय समाही : बीओ उद्देसो
नवम अध्ययन : विनय समाधि : दूसरा उद्देशक

NINTH CHAPTER (SECOND SECTION) : VINAYA SAMAHI
THE BLISS OF HUMBLENESS

विनय का परम फल

१ : मूलाउ खंधप्पभवो दुमस्स खंधाउ पच्छा समुवेंति साहा।
साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता तओ सि पुप्फं च फलं रसो य॥

२ : एवं धम्मस्स विणओ मूलं परमो अ से मुक्खो।
जेण कित्तिं सुअं सिग्घं निस्सेसं चाभिगच्छई॥

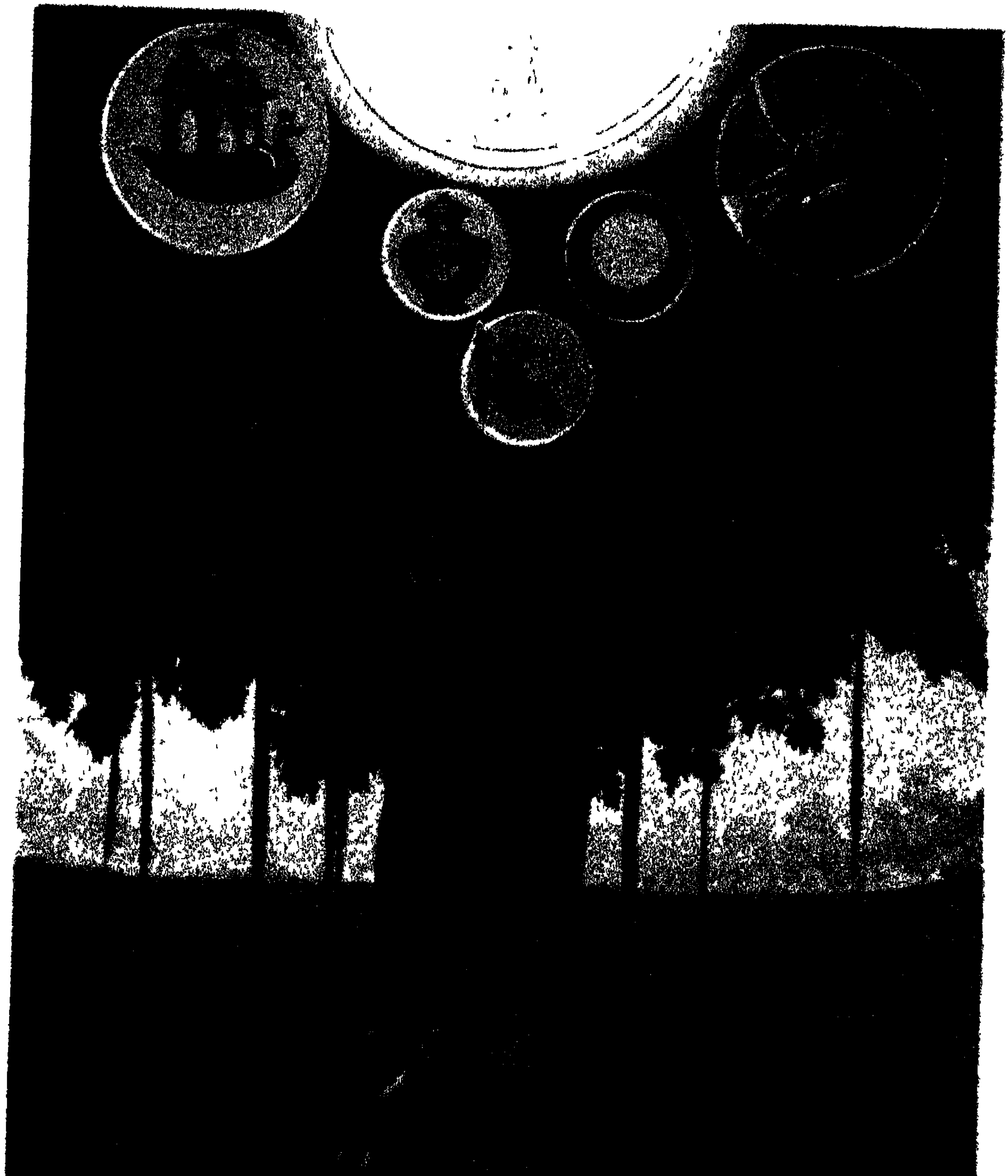
सर्वप्रथम वृक्ष के मूल से स्कन्ध उत्पन्न होता है। स्कन्ध के पश्चात् शाखाएँ, शाखाओं से प्रशाखाएँ, प्रशाखाओं से पत्र, पत्रों के बाद पुष्प और पुष्पों के अनन्तर फल एवं फिर अनुक्रम से फलों में रस निष्पन्न होता है॥१॥

उसी प्रकार धर्मरूप वृक्ष का मूल है विनय और परम फल है मोक्ष। क्योंकि विनय से ही यश-कीर्ति, श्लाघनीय श्रुत आदि इष्ट तत्त्व पूर्ण रूप से प्राप्त किये जाते हैं॥२॥

THE ULTIMATE FRUIT OF VINAYA

1, 2. From the trunk, a tree gradually expands into branches and sub-branches, then it produces leaves, flowers, and fruits and at last juice is formed in the fruits thereof.

In the same way, the trunk of the tree of *dharma* is *vinaya* (humbleness) and its ultimate fruit is the blissful state of



गुरुओं द्वारा विनय धर्म में प्रेरित किये जाने पर जो पुरुष उन पर क्रोध करता है, वह मूर्ख सम्मुख आती हुई दिव्य लक्ष्मी को डंडे से रोकता है॥४॥

4. When inspired and taught by the elders, if a disciple does not learn to be humble and, instead, reacts angrily, he is as foolish as a person who is bent upon blocking the incoming *Laxmi* (goddess of wealth) with the help of a stick. **(illustration No. 22)**

५ : तहेव अविणीअप्पा उववज्झा हया गया।
दीसंति दुहमेहंता आभिओगमुवट्ठिया॥

६ : तहेव सुविणीअप्पा उववज्झा हया गया।
दीसंति सुहमेहंता इड्ढिंपत्ता महायसा॥

औपबाह्य (वाहन योग्य) हाथी और घोड़े आदि पशु भी अविनीतता के कारण प्रत्यक्ष में दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं॥५॥

वही औपबाह्य हाथी और घोड़े सुविनीत होने के कारण ऋद्धि और महान् यश प्राप्त कर सुख भोगते हुए देखे जाते हैं॥६॥

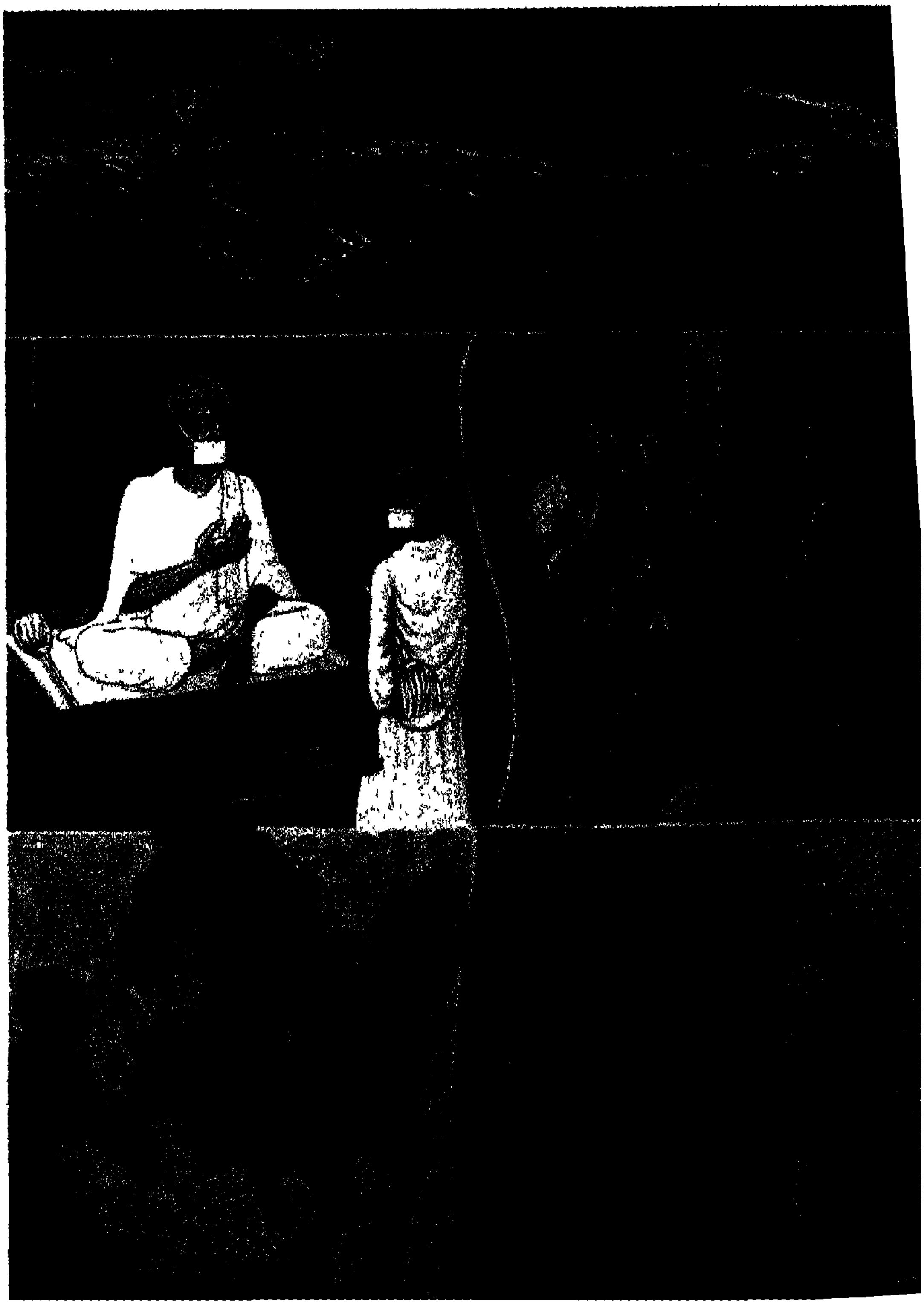
5, 6. It is a common experience that stubborn riding elephants, horses and other such domesticated animals undergo grave suffering while the humble ones get love, comfort and popularity.

विशेषार्थ :

श्लोक ५. उववज्झा–औपबाह्य–सवारी के काम में आने वाले या राजा आदि की सवारी के योग्य। कारण या अकारण सभी अवस्थाओं मे जिसे वाहन बनाया जाए ऐसे हाथी, घोडे। (देखें चित्र क्रमाक २२)

ELABORATION :

(5, 6) ***Uvavajjha***—meant for riding for a commoner, king, etc; elephants, horses etc. that are used for riding with or without some reason. **(illustration No. 22)**



अविनीत की स्थिति

THE CONSEQUENCES OF LACK OF HUMILITY

१ कट्ठ सोयगय जहा–जैसे स्रोत (प्रवाह) मे पड़ी हुई लकड़ियाँ नदी मे इधर-उधर बहती रहती है, वैसे ही गुरुजनों का अविनय करने वाला मृग के समान अज्ञानी शिष्य संसार प्रवाह मे बहता रहता है।

(अध्ययन ९/२, श्लोक ३)

1 As a log drifts directionless in a river, so does a deer-like ignorant disciple who shows lack of humility before the elders continues to drift in the river-like flow of life

(Chapter 9/2, verse 3)

२ दिव्व सो सिरिमिज्जति–गुरुजनों द्वारा प्रेरणा व शिक्षा देने पर भी जो शिष्य विनय नहीं सीखकर उलटा उन पर कुपित होता है वह वैसा मूर्ख है जैसा कोई घर मे आती हुई लक्ष्मी को डंडा मारकर भगाने की चेष्टा करता है।

(अध्ययन ९/२, श्लोक ४)

2 Even when inspired and taught by the elders, if a disciple does not learn to be humble and, instead, reacts angrily, he is as foolish as a person who is bent upon hitting out at the incoming goddess of wealth with a stick

(Chapter 9/2, verse 4)

३ तहेव अविणीयप्पा–जैसे सवारी मे काम आने वाला घोड़ा अविनीत अड़ियल होता है तो चाबुक आदि से प्रताड़ित किया जाता है और जो घोड़ा विनीत होता है, वह सभी प्रकार से सुख व सम्मान का भागी होता है। इसी प्रकार अविनीत को अनेक प्रकार के कठोर वचन यातनाएँ आदि सहने पड़ते है और सुविनीत को संसार मे यश तथा ऋद्धि-वैभव प्राप्त होता है।

(अध्ययन ९/२, श्लोक ५-९)

3 A stubborn riding horse is hit with a whip and a broken and humble horse gets love and good treatment In the same way an ill-mannered disciple has to suffer harsh words and other pain, whereas a humble one begets attainments followed by fame and glory

(Chapter 9/2, verses 5-9)

७ : तहेव अविणीअप्पा लोगंसि नरनारिओ।
दीसंति दुहमेहंता छाया ते विगलिंदिआ॥

८ : दंड-सत्थपरिजुण्णा असब्भवयणेहि अ।
कलुणा विवन्नछंदा खुप्पिवासाइ परिगया॥

लोक में जो पुरुष व स्त्री अविनीत होते हैं, वे नाना प्रकार के कष्टों को भोगते हुए क्षत-विक्षत, दुर्बल और इन्द्रिय-विकल होकर दुःख भोगते दिखाई पड़ते हैं॥७॥

वे दण्ड और शस्त्र से जर्जर शरीर वाले, असभ्य वचनों द्वारा सर्वत्र तिरस्कार पाने वाले, दयनीय, पराधीन जीवन बिताने वाले एवं भूख-प्यास की असह्य वेदना प्राप्त करते देखे जाते हैं॥८॥

7, 8. The rude and ill-mannered men and women of this world can be seen suffering grave miseries by getting painfully wounded, weak and disabled.

They can be seen with their bodies maimed by punishment with weapons, leading a pitiable life of slavery, being insulted everywhere by abusive words and suffering intolerable pangs of hunger and thirst.

विशेषार्थ :

श्लोक ७-८ छाया–छाता–क्षत-विक्षत अथवा दुर्वल। चूर्णियो तथा टीकाओं में पाठान्तरो के आधार पर छाया ते विगलिंदिया के विभिन्न अर्थ है–शोभारहित; अपने विषय को ग्रहण करने मे असमर्थ, इन्द्रियविकल, काने, अंधे, गूंगे, बहरे आदि, भूख से दुर्बल व असमर्थ; कृशकाय, चावुक की मार के निशान से भरे शरीर वाले, अपूर्ण इन्द्रियो वाले आदि।

ELABORATION :

(7, 8) ***Chhaya-vigalitendiya***—maimed or weak and disabled; in the commentaries this term has been interpreted differently according to different readings—repulsive, disabled, one eyed, blind, deaf, dumb, weak and emaciated by hunger; cadaverous, filled with laceration marks, deformed, etc

९ : तहेव सुविणीअप्पा लोगंसि नरनारिओ।
दीसंति सुहमेहंता इड्ढिंपत्ता महायसा॥

लोक में जो पुरुष और स्त्रियाँ सुविनीत होते हैं, वे समृद्धि को प्राप्त हुए तथा यश, कीर्तियुक्त सुख भोगते हुए देखे जाते हैं॥९॥

9. Those men and women who are humble and polite can be seen enjoying acquisitions like wealth, comforts, great fame and glory.

१० : तहेव अविणीअप्पा देवा जक्खा य गुज्झगा।
दीसंति दुहमेहंता आभिओगमुवट्ठिआ॥

इसी प्रकार जो देव, यक्ष और गुह्यक (भवनवासी देव) अविनीत होते हैं वे भी निरन्तर दुःख भोगते हुए तथा पराधीनपूर्वक सेवा वृत्ति में लगे हुए देखे जाते हैं॥१०॥

११ : तहेव सुविणीअप्पा देवा जक्खा य गुज्झगा।
दीसंति सुहमेहंता इड्ढिंपत्ता महायसा॥

इसके विपरीत विनयवान देव, यक्ष और गुह्यक उत्कृष्ट समृद्धि को प्राप्त हुए सभी सुखों को भोगते हुए, महायशस्वी देखे जाते है॥११॥

10, 11. In the same way the gods, *yakshas* and *guhyaks* (different types of gods) who are rude can be seen suffering and serving others like slaves

On the other hand the humble gods are seen enjoying acquisitions like enormous wealth, comforts, great fame and glory.

• १२ : जे आयरिअउवज्झायाणं सुस्सूसा वयणं करे।
तेसिं सिक्खा पवड्ढंति जलसित्ता इव पायवा॥

जो मुनि आचार्यों एवं उपाध्यायों की सेवा-शुश्रूषा करने वाले, उनकी आज्ञा-पालन करने वाले होते हैं, उनका ज्ञान (शिक्षा) अच्छी तरह जल से सींचे हुए वृक्षों की तरह क्रमशः बढ़ता ही जाता है॥१२॥

12. The ascetics who serve and obey the *acharyas* and *upadhyayas* are blessed with ever increasing knowledge like a well watered tree.

विशेषार्थ :

श्लोक १२. आयरिय उवज्झायाण–संघ व्यवस्था की दृष्टि से तो पाँच पदों में आचार्य तृतीय पद के धारक तथा उपाध्याय चतुर्थ पद धारक होते हैं। ज्ञान-दान की दृष्टि से यहाँ प्रसंगोपात्त आचार्य और उपाध्याय की व्याख्या इस प्रकार की जाती है–जो अर्थ की वाचना दे वह आचार्य तथा सूत्र की वाचना देने वाले उपाध्याय–अत्थं वाएइ आयरिओ सुत्तं वाएइ उवज्झाओ (ओघनिर्युक्ति) चूर्णि एवं टीका के अनुसार जो सूत्र और अर्थ से सम्पन्न तथा अपने गुरु द्वारा गुरु-पद पर स्थापित होते हैं, वह आचार्य कहलाते हैं। (देखें दसवेआलियं आचार्य महाप्रज्ञ, पृष्ठ ४४३)

ELABORATION :

(12) *Ayariya uvajjhayanam*—of the five organizational positions in Jain religious order an *acharya* occupies the third and an *upadhyaya* the second In context of teaching they are defined as follows—*acharya* is the one who teaches the meaning and *upadhyaya* is the one who teaches text (*Ogha Niryukti*) According to the commentaries an *acharya* is the one who knows both text and the meaning and is assigned to teaching by his *guru*. (*Dashavaikalik Sutra* by Acharya Mahaprajna, page 443)

लौकिक विद्या के लिए भी गुरु की तर्जना सहते है

१३ : अप्पणट्ठा परट्ठा वा सिप्पा णेउणिआणि अ।
गिहिणो उवभोगट्ठा इह लोगस्स कारणा॥

१४ : जेण बंधं वहं घोरं परिआवं च दारुणं।
सिक्खमाणा निअच्छंति जुत्ता ते ललिइंदिया॥

जो गृहस्थ इहलौकिक सुखोपभोगों के लिये, अपनी आजीविका के लिए अथवा दूसरों के हित के लिए शिल्प आदि विविध कलाओं में निपुणता प्राप्त करना चाहते हैं वे कोमल शरीर वाले होने पर भी शिक्षा काल में बन्धन, ताड़न एवं परितापन के घोर तथा दारुण कष्ट सहन करते हैं॥१३-१४॥

TOLERATING PUNISHMENT BY GURU FOR WORLDLY KNOWLEDGE

13, 14. The householders, who want to acquire expertise in various arts and crafts in order to earn their living or to serve others, willingly tolerate extreme hardship and discomfort of pain and confinement during the period of learning, in spite of having delicate physique.

विशेषार्थ :

श्लोक १३-१४. सिप्पा–शिल्प–कारीगरी, यथा कुम्हार, सुनार, लुहार आदि के काम।

णेउणियाणि–नैपुण्य–कौशल, वाण-विद्या, लौकिक कला, चित्रकला आदि।

सिक्खमाणा–शिक्षा काल मे अथवा शिक्षक के द्वारा कष्ट आदि प्राप्त करते हैं।

ELABORATION :

(13, 14) ***Sippa***—crafts like those of a potter, gold-smith, black-smith etc.

Nehuniyani—expertize like that in archery, painting and other mundane skills and arts.

Sikkhaman—during student life; get punished by the teacher during studies.

१५ : तेऽवि तं गुरुं पूयंति तस्स सिप्पस्स कारणा।
सक्कारंति नमंसंति तुट्ठा निद्देसवत्तिणो॥

फिर भी वे ताड़न करने पर भी सन्तुष्ट हो उस शिल्प-शिक्षा के लिए शिल्पाचार्य को पूजते हैं, सत्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं और उसकी आज्ञा का पालन करते हैं॥१५॥

१६ : किं पुण जे सुयग्गाही अणंतहिअकामए।
आयरिआ जं वए भिक्खू तम्हा तं नाइवत्तए॥

जब (लौकिकविद्या प्रेमी ऐसा करते हैं) तब श्रुत-ग्रहण करने वाले एवं अनन्त आत्म-कल्याण की इच्छा रखने वालों का तो कहना ही क्या? इसलिए उन्हें तो विशेष रूप से धर्माचार्य की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए॥१६॥

15, 16. In spite of being thrashed by their teacher they worship, honor, obey and salute him for the knowledge he has imparted.

When people desirous of mundane knowledge do so, what to say of those who are desirous of spiritual uplift? Therefore they should be more particular about not going against the dictates of their religious teacher.

गुरु के समीप उठने-बैठने की मर्यादा

१७ : नीयं सिज्जं गइं ठाणं नीअं च आसणाणि य।
नीअं च पाए वंदिज्जा नीअं कुज्जा य अंजलिं॥

शिष्य का कर्त्तव्य है कि शय्या, गति, स्थान और आसन आदि सब गुरु से नीचे ही रखे। विनयपूर्वक नीचे झुककर हाथ जोड़े। गुरुओं के चरणों में नतमस्तक होकर विधियुक्त वन्दना करे॥१७॥

THE DISCIPLINE OF SITTING AND STANDING NEAR THE *GURU*

17. It is the duty of the disciple to keep his bed, movement, place and seat at a lower level then his *guru*. He should offer salutations to the *guru* in the prescribed manner by joining palms and bowing his head.

विशेषार्थ :

श्लोक १७ नीअं गइं–नीचे चले। इसके विकल्प हैं–आगे नहीं, पीछे चलना; अति समीप और अति दूर नहीं चलना। ठाणं–नीचे खडा रहे अर्थात् गुरु के खड़े होने के स्थान से नीचे

स्थान पर खडा हो, आगे तथा बगल में खडा न हो। पाए वदिज्जा–चरण छूने के संदर्भ में नीयं का अर्थ झुकना है। नीअं कुज्जा य अंजलि–झुककर अंजली करे या हाथ जोड़े।

ELABORATION :

(17) ***Neeyam***—at a lower level; with humbleness. In different contexts the meanings are—while moving one should not be in front but at the rear of the *guru* and neither too far nor too near, while standing or sitting he should not sit at a higher level or ahead of the *guru* but at a lower level or behind him; in context of touching feet of the *guru* it means to bend; and in context of offering salutations it means to bow.

१८ : संघट्टइत्ता काएणं तहा उवहिणामवि।
खमेह अवराहं मे वइज्ज न पुणु त्ति य॥

यदि कभी असावधानीवश आचार्य के शरीर का अपने उपकरणों से या शरीर से स्पर्श हो जाय, तो उसी समय शिष्य नम्रतापूर्वक कहे–आप मेरा यह अपराध क्षमा करें, फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा॥१८॥

18. If he happens to inadvertently touch the body of the *guru* with any part of his body or his equipment, he should at once beg his pardon with all humility and assure that this will not be repeated.

१९ : दुग्गओ वा पओएणं चोइओ वहई रहं।
एवं दुबुद्धि किच्चाणं वुत्तो वुत्तो पकुव्वई॥

जिस प्रकार दुष्ट बैल लकड़ी आदि से बार-बार हॉकने पर रथ को वहन करता है, ठीक इसी प्रकार दुर्बुद्धि शिष्य भी आचार्य के बार-बार कहने पर ही उनका काम करता है॥१९॥

19. A stubborn ox pulls the cart only after being repeatedly goaded by a stick, in the same way a stupid disciple does any work only after being repeatedly told by his *guru*.

२० : आलवंते वा लवंते वा न निसिज्जाए पडिस्सुणे।
मुत्तूणं आसणं धीरो सुस्सूसाए पडिस्सुणे॥

गुरुदेव के एक बार या बार-बार बुलाने पर बुद्धिमान् शिष्य अपने आसन पर से ही आज्ञा सुनकर उत्तर नहीं देवे, किन्तु आसन छोड़कर विनयभावपूर्वक गुरु की आज्ञा को सुने और फिर तदनुसार समुचित उत्तर देवे॥२०॥

20. When a *guru* calls a disciple, once or many times, an able disciple should not reply from where he is sitting. Instead, he should get up, go near the *guru*, listen to what the *guru* wants to say, and then only should give a suitable reply.

२१ : कालं छंदोवयारं च पडिलेहित्ताण हेउहिं।
तेण तेण उवाएण तं तं संपडिवायए॥

शिष्य का कर्त्तव्य है कि विभिन्न विविध हेतुओं से द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि भावों को तथा गुरुओं के मनोगत अभिप्रायों को एवं सेवा-आराधना करने के समुचित साधनों और विधियों को भली प्रकार जान करके उन उपायों से उन प्रयोजनों को पूरा करे॥२१॥

21. It is the duty of a disciple to evaluate from various different angles the parameters of matter, space and time, understand the expectations and commands of the *gurus*, know all the means and methods of serving available to him and integrating all this information he should proceed to accomplish the expected.

विशेषार्थ :

श्लोक २१. कालं–काल–यहाँ काल में समय, पदार्थ व क्षेत्र आदि भावों का समावेश है। जैसे–ऋतु के अनुरूप भोजन, शय्या, आसन आदि लाना।

छंदं–आचार्य का अभिप्राय या इच्छा।

उवयारं–अगस्त्यचूर्णि में इसका अर्थ 'आज्ञा' किया है। जिनदासचूर्णि में विधि तथा टीका में आराधना का प्रकार बताया है।

ELABORATION :

(21) ***Kalam***—time; here it includes matter and space as well.

For example, food (matter) available in a particular area (space) and suitable for a particular season (time)

Chhandam—expectations and commands of the *guru*.

Uvayaram—command (*Agastya Simha Churni*); a type of worship (commentary by Acharya Haribhadra Suri); ritual process (*Jinadas Churni*).

विनीत संपदा भागी होता है

२२ : विवत्ती अविणीअस्स संपत्ती विणिअस्स य।
जस्सेय दुहओ नायं सिक्खं से अभिगच्छइ॥

२३ : जे आवि चंडे मइ-इड्ढिगारवे पिसुणे नरे साहस हीणपेसणे।
अदिट्ठधम्मे विणए अकोविए असंविभागी न हु तस्स मुक्खो॥

अविनीत पुरुष के गुण नष्ट होते हैं और विनयी पुरुष के गुणों में विकास होता है अथवा अविनीत विपत्ति का भागी होता है सुविनीत संपत्ति का। ये दोनों बातें जिसको ज्ञात हैं वह शिक्षा को सुखपूर्वक प्राप्त करता है॥२२॥

जो पुरुष क्रोधी, अपनी बुद्धि और ऋद्धि का अभिमान करने वाला, चुगलखोर और दुस्साहसी है; जो आज्ञा की अवहेलना करने वाला, धर्म से अपरिचित तथा विनय से अनभिज्ञ एवं असंविभागी होता है, वह कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता॥२३॥

HUMBLE ONE BEGETS WEALTH

22, 23. A rude person begets troubles and a polite one gets wealth. He who knows these facts gets education conveniently.

A *shraman* who is short tempered, proud of his wisdom and wealth, backbiter, foolhardy, disobedient, irreligious, ignorant of humility and who does not share his alms with fellow ascetics can never attain liberation.

विशेषार्थ :

श्लोक २३. साहस–प्राचीन साहित्य में इस शब्द का प्रयोग अकृत्य कार्य में प्रवृत्त व्यक्ति के लिए होता था, जैसे दुस्साहसी।

हीणपेसणे-हीनप्रेषण-प्रेषण का अर्थ है नियोजन अथवा काम में संलग्न होना। जो ऐसा न करे वह हीनप्रेषण अर्थात् गुरु की आज्ञा का यथासमय पालन न करने वाले हीनप्रेषण है।

असंविभागी-जो अपने द्वारा लाई हुई वस्तु अन्य साधर्मिकों में नहीं बाँटता।

ELABORATION :

(23) ***Sahas***—courage; originally it was used in the derogatory sense like foolhardiness.

Heenapesane—Preshan means to indulge in some work. The opposite of this is *Heenapreshan.* Here it means one who does not obey the *guru's* order at once.

Asamvibhagi—who does not share his alms with felloow ascetics.

२४ : निद्देसवित्ती पुण जे गुरूणं सुअत्थधम्मा विणयम्मि कोविआ।
तरित्तु ते ओहमिणं दुरुत्तरं खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया॥
त्ति बेमि।

जो गुरु के आज्ञाकारी है, श्रुतार्थ धर्मा-(श्रुत रहस्य के ज्ञाता) एवं विनय मार्ग के विशेषज्ञ होते हैं, वे ही इस कठिन संसार-सागर को पार कर कर्मों का नाश करके सर्वोत्कृष्ट मोक्ष स्थान में जाते हैं॥२४॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

24. The ascetics who are obedient, who have understood the scriptures and who are experts in the ways of *vinaya* are the ones who cross this terrible ocean of mundane life, destroy the *karmas* and attain the most excellent *Moksha* or liberation. . . . . so I say.

॥ नवम अध्ययन दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

END OF NINTH CHAPTER (SECOND SECTION)

नवमं अज्झयणं : विणय समाही : तइओ उद्देसो
नवम अध्ययन : विनय समाधि : तीसरा उद्देशक

NINTH CHAPTER (THIRD SECTION) : VINAYA SAMAHI
THE BLISS OF HUMBLENESS

गुरु-सेवा की विधि

१ : आयरिअं अग्गिमिवाहिअग्गी सुस्सूसमाणो पडिजागरिज्जा।
आलोइअं इंगिअमेव नच्चा जो छन्दमाराहयई स पुज्जो॥

जिस प्रकार आहिताग्नि—अग्निहोत्री ब्राह्मण, अग्नि की पूजा-सेवा करने में सतत सावधान रहता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् शिष्य आचार्य की पूजा अर्थात् सेवा-शुश्रूषा करने में जागरूक रहे। क्योंकि जो आचार्य की दृष्टि आलोकित एव इंगित आदि को जानकर उनके भावानुकूल चलता है, वही पूजनीय होता है॥१॥

THE METHOD OF SERVING THE *GURU*

1. As a Brahmin, doing the *Yajna* rituals, is ever cautious in worshiping the fire so should a wise pupil be ever alert in worshiping and serving the teacher. Because only he who understands the language of eyes and gestures of the guru and acts accordingly is a worthy one.

विशेषार्थ :

श्लोक १. आलोइय—आलोकित—आलोकित का अर्थ है शब्द से कुछ भी न कहकर गुरु दृष्टि उठाकर देखे, उनके देखने से ही शिष्य गुरु का अभिप्राय—गुरु की दृष्टि समझ लेवे। इंगित—संकेत। मन का भाव बताने वाली अंगचेष्टा। जैसे पानी की तरफ इशारा देखकर शिष्य समझ लेवे गुरुदेव को पानी की जरूरत है।

ELABORATION :

(1) ***Aloiyam ingiyam***—message of the eyes and gestures; the pupil should be able to understand if the eyes or some gesture or a combination of these two, of the *guru* convey anger or approval or disapproval or some desire etc.

२ : आयारमट्ठा विणयं पउंजे सुस्सूसमाणो पडिगिज्झ वक्कं।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो गुरुं तु नासाययई स पुज्जो॥

जो आचार-प्राप्ति (ज्ञान आदि पाँचों आचार की प्राप्ति) के लिए विनय का प्रयोग करते हैं, जो आदरपूर्वक गुरुवचनों को सुन एवं स्वीकृत कर उनके कार्य की पूर्ति करते हैं और जो गुरु की आशातना नहीं करते हैं, वे ही पूजनीय होते हैं॥२॥

2. He who uses *vinaya* in order to perfect conduct (the five limbs of conduct including knowledge), who listens to, accepts, and acts according to the word of the *guru*, and who does not insult the *guru* is a worthy one.

३ : रायणिएसु विणयं पउंजे डहरा वि अ जे परिआयजेट्ठा।
निअत्तणे वट्टइ सच्चवाई उवावयं वक्ककरे स पुज्जो॥

अपने से गुणों में श्रेष्ठ एवं अल्पवयस्क होने पर भी दीक्षा में ज्येष्ठ मुनियों की विनय-भक्ति करने वाला, सदा नम्र व्यवहार करने वाला, सत्य बोलने वाला, आचार्यों के निकट रहने वाला एवं उनकी आज्ञा का पालन करने वाला ही पूज्य होता है॥३॥

3. He who is polite in his behavior towards the ascetics who although younger in age are higher in knowledge and senior in initiation, who is humble and truthful, who remains near *acharyas* and obeys them is a worthy one.

विशेषार्थ :

श्लोक ३. परिआय जेट्ठा—पर्याय ज्येष्ठ—दीक्षा काल में बड़ा। ज्येष्ठ अथवा स्थविर तीन प्रकार के होते हैं—(१) जाति-स्थविर—जो जन्म से ज्येष्ठ होते हैं; आयु में बड़े। (२) श्रुत-

स्थविर–जो ज्ञान में ज्येष्ठ होते हैं। (३) पर्याय-ज्येष्ठ–जो दीक्षा काल में ज्येष्ठ होते हैं। यहाँ इस बात का महत्त्व बताया है कि जाति और श्रुत में ज्येष्ठ नहीं होने पर भी पर्याय-ज्येष्ठ के प्रति विनय रखना चाहिए।

ELABORATION :

(3) ***Pariyaya jettha***—senior in initiation into the order. Another term used for the senior ascetics is *sthavir*. They are of three classes—(1) *Jati-sthavir* or senior in age, (2) *Shrut-sthavir* or senior in knowledge, and (3) *Paryaya-jyeshtha*. Here the importance is given to the third.

आचार विधि

४ : अन्नायउंछं चरइ विसुद्धं जवणट्ठया समुआणं च निच्चं।
अलद्धुअं नो परिदेवइज्जा लद्धुं न विकत्थयई स पुज्जो॥

५ : संथारसिज्जासणभत्तपाणे अप्पिच्छया अइलाभे वि संते।
जो एवमप्पाणभितोसइज्जा संतोसपाहन्नरए स पुज्जो॥

जो संयममय यात्रा के निर्वाह हेतु विशुद्ध, सामुदानिक एवं अज्ञात कुलों से बिना अपना परिचय दिए थोडा-थोड़ा ग्रहण किया हुआ आहार भोगते हैं और जो भिक्षा न मिलने पर दुःखी नहीं होते या मिलने पर गर्व या स्तुति नहीं करते वे साधु पूज्य होते हैं॥४॥

जो संस्तारक, शय्या, आसन, भोजन आदि के प्रचुरता से मिल जाने पर भी अल्पेच्छा रखते हैं, सदा संतोष प्रधान जीवन जीते हैं तथा अपनी आत्मा को सभी प्रकार से प्रसन्न रखते हैं वे ही साधु पूज्य होते हैं॥५॥

THE CONDUCT

4, 5. The ascetic who, for subsistence on the path of discipline, eats only the pure and proper food collected a little each from numerous houses of low and high status; and who neither laments nor gets elated on getting or not getting alms is a worthy one.

The *shraman* who desires only for a little even when offered in plenty, things like bed, mattress, food, etc.; who leads a contented life keeping himself happy under all circumstances is a worthy one.

दुर्वचनों को सहन करे

६ : सक्का सहेउं आसाइ कंटया अओमया उच्छहया नरेणं।
अणासए जो उ सहिज्ज कंटए वईमए कण्णसरे स पुज्जो॥

कोई पुरुष धन आदि (भोगों) की अभिलाषा से लोहे के तीक्ष्ण काँटों को सहन कर सकता है, परन्तु जो साधु बिना अपेक्षा के लोभ, लालचरहित कर्णकटु वचनरूप काँटो को सहन करता है, वह संसार में पूज्य होता है॥६॥ (देखें चित्र क्रमांक २३)

TOLERATE HARSH WORDS

6. There are people who may tolerate the pain of sharp pointed iron nails for the sake of acquiring wealth and pleasures. But the ascetic who tolerates the thorn-like harsh and piercing words without any expectation or greed is a worthy one. **(illustration No. 23)**

विशेषार्थ :

श्लोक ६. कण्णसरे-कर्णशर-कानों में प्रवेश करने पर चुभने वाले अथवा कानों के लिए बाण जैसे तीखे। इस सन्दर्भ में आचार्य महाप्रज्ञ ने अगस्त्यसिंह चूर्णि के आधार पर एक प्राचीन परम्परा का उल्लेख करते हैं-कई व्यक्ति तीर्थ स्थानों पर धन पाने की आशा से भाले की नोंक या बबूल के तीखे काँटों पर बैठ या सो जाते हैं उधर से जाने वाले लोग उनकी यह दशा देखकर द्रवित होकर कहते-अरे उठो, उठो, तुम्हें जो चाहिए। वह मिल जायेगा। इतना कहने पर वे उठ जाते थे।

ELABORATION :

Kannasare—that which painfully pierces the ears like an arrow; harsh words. In this context Acharya Mahaprajna has excerpted

information about an ancient tradition from *Agastya Simhachurni*—At pilgrimage centres numerous people are found sitting or sleeping on beds of thorns, nails, lanse edges, or other such sharp things, with the intent that pilgrims give them money When passing pilgrims see them in this condition they are moved and donate liberally to end their pains. Once they get what they desire they leave the bed of thorns.

७ : मुहुत्तदुक्खा हु हवंति कंटया अओमया ते वि तओ सुउद्धरा।
वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि वेराणुबंधीणि महब्भयाणि॥

शरीर में चुभे हुए लोह के काँटे तो कुछ समय तक ही दुःख देने वाले होते हैं और वे शरीर से सहजतया निकाले भी जा सकते हैं, किन्तु दुर्वचनरूपी कंटक तो बडी कठिनता से निकलते हैं और वैर-भाव बढाने वाले एवं महाभयानक होते हैं॥७॥

7. The wounds of the iron nails cause pain only for a limited period and the nails could be removed from the body easily. But the thorns that are harsh words are difficult to remove and they provoke animosity and are frightful.

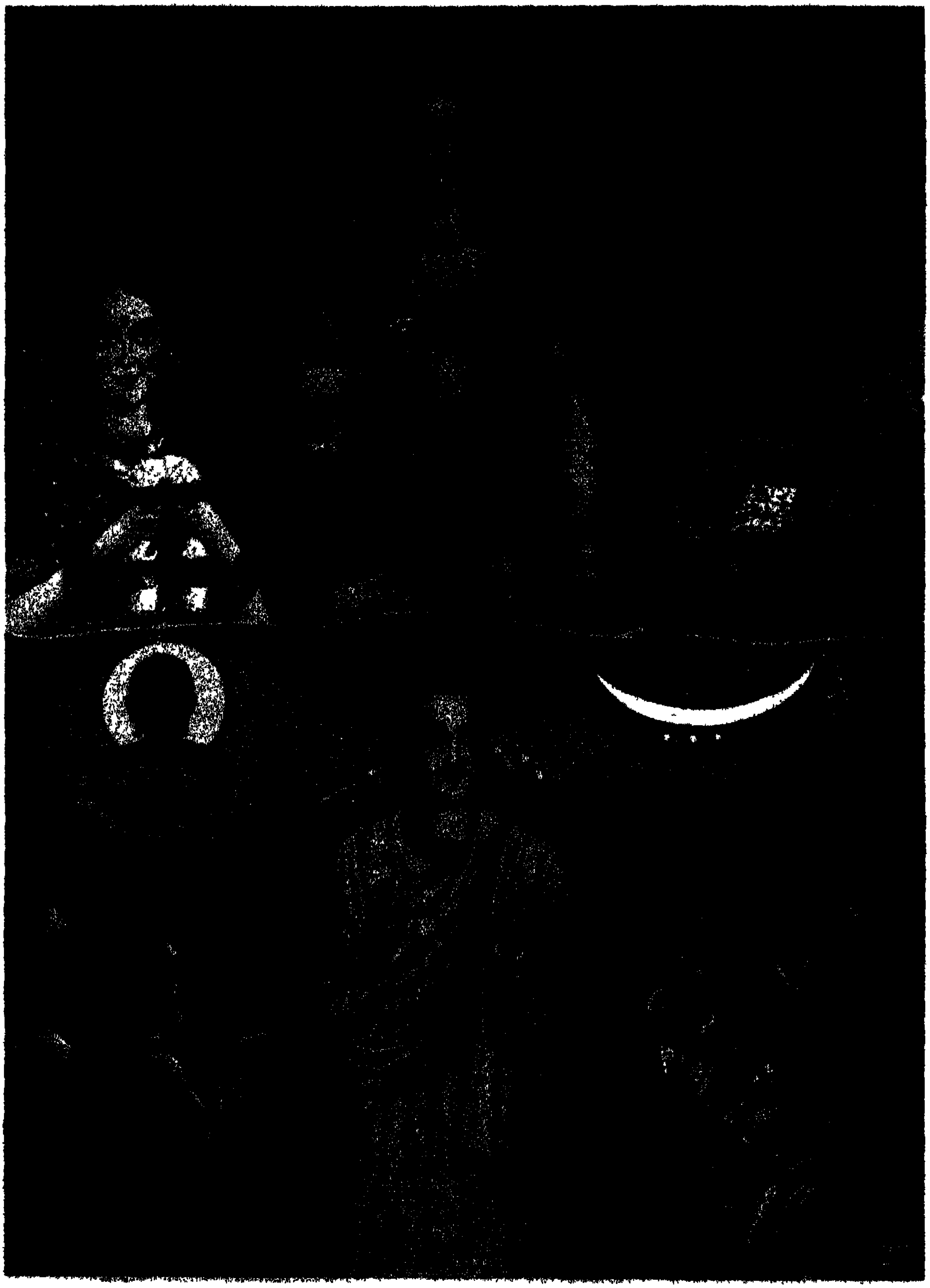
विशेषार्थ :

श्लोक ७. वेराणुबंधीणि–वैरानुबन्धीनि–अनुबन्ध का अर्थ है बन्धन की निरन्तरता। कटुवाणी से वैर निरन्तर बढ़ता ही जाता है अत उसे वैरानुबन्धी कहा है।

ELABORATION :

(7) ***Veranubandhini***—continuity of bondage of animosity. This adjective has been used for bitter words because they keep on provoking animosity.

८ : समावयंता वयणाभिघाया कन्नंगया दुम्मणिअं जणंति।
धम्मु त्ति किच्चा परमग्गसूरे जिइंदिए जो सहई स पुज्जो॥



कटु वचन तितिक्षा : सापेक्ष-निरपेक्ष
HARSH WORDS AND TOLERANCE

१ **सक्कासहेउं आसाइ कंटया**—साधारणतः मनुष्य धन के लोभवश मान-सम्मान, स्त्री, राज्य-वैभव आदि की आशा से लोहे के तीक्ष्ण तीर (काँटे) को भी सहन कर लेता है।

1 Even an ordinary man can tolerate the acute pain of a sharp thorn if he has the hope of getting wealth, status, a woman, kingdom, grandeur, etc as a reward.

२ परन्तु जो किसी प्रकार की आशा से रहित क्षमा को अपना आदर्श मानकर या केवल मोक्ष की आराधना का साधन समझ लोगों के दुर्वचनरूपी तीक्ष्ण काँटों को सहन कर लेते हैं, वे वास्तव में पूज्य हैं।

(अध्ययन ९/३, श्लोक ६-७)

2 Truly lofty is the person who tolerates the pain of thorn-like harsh words, simply considering forgiveness to be his ideal and the means of attaining liberation

(Chapter 9/3, verses 6-7)

सामने से आते हुए कटुवचन के प्रहार कानों से हृदय में पहुँचकर दौर्मनस्य–दुर्भाव उत्पन्न कर देते हैं। जो शूरवीरों के अग्रणी, इन्द्रियजयी पुरुष इन वचन प्रहारों को 'यह मेरा धर्म है' मानकर शान्तिपूर्वक सहन कर लेते हैं, वे जगत् में पूज्य होते हैं॥८॥

8. Bitter words launched at someone enter through the ears and reach the mind to provoke bitter feelings. Considering it to be his duty, the best among warriors and braves and the conqueror of senses tolerates these with equanimity. He is a worthy one.

विशेषार्थ :

श्लोक ८. परमग्गसूरे–परमाग्रशूर–शूरों में अग्रणी। स्थानांगसूत्र में चार प्रकार के शूर बताए हैं। युद्ध-शूर, तपस्या-शूर, दान-शूर और धर्म-शूर। इन सबमें धर्म-शूर (धार्मिक श्रद्धा से अथवा यह समझकर कि यह मेरा धर्म है, कष्ट सहन करने वाला) परमाग्र-शूर होता है।

ELABORATION :

(8) ***Paramaggasure***—the best among braves; according to *Sthanang Sutra* there are four types of braves—brave in war, brave in austerities, brave in charity and brave in religion. Of these the brave in religion is considered to be the best of braves because he tolerates all afflictions considering that tolerance is his duty.

९ : अवन्नवायं च परम्मुहस्स पच्चक्खओ पडिणीअं च भासं।
ओहारिणिं अप्पिअकारिणिं च भासं न भासिज्ज सया स पुज्जो॥

जो पुरुष पीठ पीछे किसी की निन्दा नहीं करते और सामने विरोधी (पीड़ाकारी) वचन नहीं कहते। निश्चयकारी एवं अप्रियकारी वचन भी नहीं बोलते, वे ही सदा संसार में पूज्य होते हैं॥९॥

9. He who does not slander someone in his absence and use malicious words in his presence and never uses dogmatic and offensive language is a worthy one.

१० : अलोलुए अक्कुहए अमाई अपिसुणे आवि अदीणवित्ती।
नो भावए नो वि अ भाविअप्पा अकोउहल्ले य सया स पुज्जो॥

जो रस आदि इन्द्रियों के लोलुप नहीं है, इन्द्रजाल, माया, चुगली, दीनता आदि दोषों से दूर रहते हैं, दूसरों से अपनी स्तुति नहीं कराते, स्वयं अपनी स्तुति दूसरों के सामने नहीं करते तथा कौतूहल नहीं रखते वे ही पूज्य होते हैं॥१०॥

10. He who is not covetous, crafty, devious, pathetic, or a scandalmonger; who neither makes others sing in his praise nor sings in his own praise before others; and who is free of any curiosity is a worthy one.

विशेषार्थ :

श्लोक १०. अक्कुहए-अकुहक-विस्मयकारक नहीं। कुह् धातु से बना यह शब्द विस्मयकारक, ऐन्द्रजालिक, वञ्चक आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। इसका अर्थ दूसरो को हँसाने के लिए कौतुक करने वाला भी होता है।

भावए-भावित-भाव का अर्थ है वासित करना, चिंतन करना, पर्यालोचन करना। अत इस पद का सामान्य अर्थ है-न दूसरों को अहितकर भावना से भावित करे और न स्वय वैसी भावना से भावित हो। उदाहरणात्मक भावार्थ है-दूसरो से प्रशसा न करावे, स्वय आत्म-प्रशसा न करे।

ELABORATION :

(10) ***Akkuhaye***—not astonishing; here it means he who does not extract his own benefits by astonishing others, not crafty. It also means a jester or entertainer

Bhavaye—to think; to contemplate When used with negation it generally means 'not to think bad about'. Here it is interpreted as not to praise oneself.

गुण ग्रहण करे

११ : गुणेहिं साहू अगुणेहिंऽसाहू गिण्हाहि साहू गुण मुंचऽसाहू।
वियाणिआ अप्पगमप्पएणं जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो॥

१२ : तहेव डहरं व महल्लगं वा इत्थिंपुमं पव्वइअं गिहिं वा।
नो हीलए नो वि अ खिंसइज्जा थंभं च कोहं च चए स पुज्जो॥

गुणों को धारण करने से साधु और अगुणों से असाधु होता है। अतएव साधु (अच्छे) गुणों को तो ग्रहण करे और असाधु गुणों (दुर्गुणों) को छोड़े। क्योंकि आत्मा को आत्मा से पहचानकर राग-द्वेष में समभाव रखने वाले गुणी साधु ही पूज्य हैं॥११॥

जो बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, दीक्षित और गृहस्थ आदि की अवमानना व निन्दा नहीं करता तथा क्रोध और मान के दोषों का त्याग करता है, वह पूज्य है॥१२॥

ACQUIRE VIRTUES

11, 12. By acquiring virtues one becomes virtuous (*sadhu*) and by acquiring vices one becomes evil (*asadhu*). Therefore, one should acquire virtues and abandon vices. A virtuous ascetic who, knowing self through self (introspection), remains balanced in fondness and revulsion both, is a worthy one.

He who does not insult or slander ascetics or householders, men or women, young or old; and becomes free of vices of anger and conceit is a worthy one.

विशेषार्थ :

श्लोक १२. नो हीलए नो वि अ खिसइज्जा–लज्जित नहीं करना, निंदा नहीं करना। किसी को उसके दुर्गुणों या हीनता की याद दिलाकर लज्जित करने को हीलना कहते हैं और यह कार्य बारंबार करने को खिसना कहते हैं।

ELABORATION :

(12) ***Heelaye***—to belittle, to put some one to shame by reminding about his vices and shortcomings. ***Khinsaejja***—to insult or slander; to put someone to shame (*heelaye*) again and again

१३ : जे माणिआ सययं माणयंति जत्तेण कन्नं व निवेसयंति।
ते माणए माणरिहे तवस्सी जिइंदिए सच्चरए स पुज्जो॥

१४ : तेसिं गुरूणं गुणसायराणं सुच्चाण मेहावि सुभासिआइं।
चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो चउक्कसायावगए स पुज्जो॥

जो शिष्य, आचार्य को अभ्युत्थान, विनय आदि से सतत सम्मानित करते हैं, वे स्वयं भी आचार्य से विद्यादान द्वारा सम्मानित होते हैं, जैसेकि पिता अपनी कन्या को यत्नपूर्वक श्रेष्ठ कुल में स्थापित करता है। अतः जो सत्यवादी, जितेन्द्रिय और तपस्वी साधु, ऐसे सम्मान योग्य आचार्यों का सम्मान करते हैं, वे पूज्य हैं॥१३॥

जो मेधावी गुण-सागर गुरुजनों के सुभाषित वचनों को सुनकर तदनुसार आचरण करने वाले होते हैं, पाँच महाव्रतों के पालक, तीनों गुप्तियों के धारक एवं क्रोध-मान आदि कषायों से दूर रहते हैं वे पूज्य होते हैं॥१४॥

13, 14. A pupil who always honors the *acharya* by offering due respect is himself honored by the *acharya* by way of imparting knowledge in the same way as a father establishes his daughter in a respectable family. Therefore, a truthful, disciplined and austere *shraman* who honors an able *acharya* is a worthy one.

He who attentively listens to the aphorisms uttered by the profoundly worthy *acharyas* and acts accordingly; who resolutely follows the five great vows, who practices the three *guptis* (restraint), and who avoids the passions like anger and conceit, is a worthy one.

१५ : गुरुमिह सययं पडिअरिअ मुणी जिणमयनिउणे अभिगमकुसले।
धुणिअ रयमलं पुरेकडं भासुरमउलं गइं वइ॥
त्ति बेमि।

जिन-भाषित तत्त्वों को पूर्ण रूप से जानने वाला एवं अतिथि साधुओं की विनय-भक्ति (अभिगम) में कुशल साधु इस संसार में गुरु की सतत सेवा करके

पूर्वोपार्जित कर्मों के मल को छिटक देता है और ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशमान अनुपम सिद्धगति को प्राप्त कर लेता है॥१५॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

15. A *shraman* who completely understands the fundamentals propagated by the *Jina* and is proficient in service and devotion of the guest ascetics, by constantly serving his *guru* sheds the dirt of acquired *karmas* and attains the spiritually enlightened and unique state of *Siddha*....... So I say.

विशेषार्थ :

श्लोक १५. अभिगम कुसले–अभिगम का अर्थ है अतिथि साधुओं का आतिथ्य-सत्कार का सम्मान व भक्ति करना। इस काम मे जो कुशल हो उसे अभिगम-कुशल कहते हैं।

रयमल–रजमलं–आस्रव काल मे कर्म का नाम रज है। बद्ध, स्पृष्ट तथा निकाचित काल मे कर्म का नाम मल है।

ELABORATION :

(15) ***Abhigam Kusale***—Abhigam means to greet, honour and worship the guest-ascetics. One who is accomplished in this is called Abhigam Kushal

Rayamalam—*raya* is dust and *mala* is dirt. These terms are used for *karma* *Karma* in its stage of inflow is called dust. In its later stages when it touches or sticks to the soul it is called dirt.

॥ नवम अध्ययन तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

END OF NINTH CHAPTER (THIRD SECTION)

नवमं अज्झयणं : विणय समाही : चउत्थो उद्देसो
नवम अध्ययन : विनय समाधि : चौथा उद्देशक

NINTH CHAPTER (FOURTH SECTION) : VINAYA SAMAHI
THE BLISS OF HUMBLENESS

चार समाधि

सूत्र १. सुअं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–इह खलु थेरेहिं भगवंतेहि चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पन्नत्ता।

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उन भगवान ने इस प्रकार कथन किया है, इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने विनय समाधि के चार स्थानों का प्रतिपादन किया है॥१॥

THE FOUR TYPES OF BLISS

1. O Long lived one! I heard that *Bhagavan* has said—In this discourse of the *Nirgranth* the great *sthavirs* (senior ascetics) have stated about four classes of the bliss of *vinaya*.

विशेषार्थ

सूत्र १. समाही–समाधि–टीकाकार के अनुसार यहाँ इस अनेकार्थक शब्द का अर्थ है आत्मा का हित, सुख और स्वास्थ्य। विनय, श्रुत, तप और आचार के द्वारा आत्मा का हित होता है, इसलिए समाधि के ये चार रूप होते हैं। अगस्त्यसिंह चूर्णि में समारोपण और गुणो के समाधान (स्थिरीकरण या स्थापन) को समाधि कहा है।

ELABORATION :

(1) ***Samahi***—According to the commentators the meaning of this word here is betterment, well being and bliss of soul As

vinaya, education, austerity and conduct lead to the spiritual development of the soul these are known as the four classes of *samadhi*. In the *Agastya Simha Churni* the acquisition and stabilization of virtues is called *samadhi*.

सूत्र २. कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पन्नत्ता।

(शिष्य का प्रश्न) हे भगवन् ! स्थविर भगवन्तों द्वारा प्रतिपादित विनय समाधि के वे चार स्थान कौन से हैं?

2. *Bhagavan*! Which are those four classes of the bliss of *vinaya* stated by the great *sthavirs*?

सूत्र ३. इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पन्नत्ता तं जहा–

(१) विणयसमाही (२) सुयसमाही (३) तवसमाही (४) आयारसमाही।

१ : विणए सुए अ तवे आयारे निच्चं पंडिया।
अभिरामयंति अप्पाणं जे भवंति जिइंदिया॥

विनय समाधि के चार स्थान इस प्रकार हैं जिनका प्रतिपादन स्थविर भगवन्तों ने किया है। यथा–(१) विनयसमाधि (२) श्रुतसमाधि (३) तपःसमाधि और (४) आचारसमाधि॥३॥

जो जितेन्द्रिय श्रमण विनयसमाधि, श्रुतसमाधि, तपःसमाधि, और आचारसमाधि में अपनी आत्मा को पूर्णतया लीन कर देते है, वे ही वास्तव में पण्डित है॥१॥

3. The four classes of the bliss of *vinaya* stated by the great *sthavirs* are—1. *Vinaya samadhi*, 2. *Shrut samadhi*, 3. *Tapah samadhi*, and 4. *Achar samadhi*.

1. Only those disciplined ascetics who completely lose themselves into *Vinaya samadhi*, *Shrut samadhi*, *Tapah samadhi* and *Achar samadhi* are truly wise.

सूत्र ४. चउव्विहा खलु विणयसमाही तं जहा-(१) अणुसासिज्जंतो सुस्सूसइ (२) सम्मं संपडिवज्जइ (३) वेयमाराहयइ (४) न य भवइ अत्तसंपग्गहिए।

चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो-

२ : पेहेइ हिआणुसासणं सुस्सूसइ तं च पुणो अहिट्ठिए।
न य माणमएण मज्जइ विणयसमाही आययट्ठिए॥

विनयसमाधि के चार प्रकार हैं। यथा-(१) गुरु के अनुशासन में रहा हुआ, गुरु के सुभाषित वचनों को सुनने की इच्छा करे; (२) गुरु वचनों को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करे; (३) श्रुतज्ञान की पूर्णतया आराधना करे; तथा (४) गर्व से आत्म-प्रशंसा न करे। यह चतुर्थ पद है, इस पर एक श्लोक है॥४॥

जो मुनि, गुरुजनों से हितानुशासन शिक्षण सुनने की इच्छा करता है, सुनकर उसको यथार्थ रूप से समझता है, सुनने एवं समझने के अनुसार ही आचरण करता है, साथ ही आचरण करता हुआ मैं विनयसमाधि कुशल हूँ इस प्रकार का गर्व भी नहीं करता, वही आत्मार्थी होता है॥२॥

VINAYA SAMADHI

4. There are four categories of *Vinaya samadhi*—1. while working under the commands of the *guru,* to desire to listen to his aphorisms, 2. to follow the dictates of the *guru* sincerely, 3 to work to absorb all the knowledge of scriptures, and 4. not to indulge with pride in self-praise These are the four categories and there is a verse about this

2. Only that ascetic is spiritual who desires to listen to the lessons about spiritual discipline, understands the same properly, mulls his conduct accordingly, and is not proud of his proficiency in the *Vinaya samadhi.*

विशेषार्थ :

सूत्र २. अत्तसंपग्गहिए–आत्म-संप्रगृहीत–आत्म-अभिमान में लिप्त। आत्मोत्कर्ष करने वाला। मैं विनीत हूँ, मैं कर्मठ हूँ ऐसा सोचना आत्मोत्कर्ष है।

पेहेई–स्पृहयति–देखना; प्रार्थना करना; इच्छा करना।

ELABORATION :

(2) ***Attasampaggahiye***—one who indulges in self-pride; one who praises himself. Thinking I am humble, I am deligent, etc.

Pehei—to see; to request; to desire.

श्रुतसमाधि

सूत्र ५. चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ तं जहा–(१) सुअं मे भविस्सइ त्ति अज्झाइअव्वं भवइ (२) एगग्गचित्तो भविस्सामि त्ति अज्झाइअव्वं भवइ (३) अप्पाणं ठावइस्सामि त्ति अज्झाइअव्वं भवइ (४) ठिओ पर ठावइस्सामित्ति अज्झाइअव्वं भवइ।

चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो–

३ : नाणमेगग्गचित्तो अ ठिओ अ ठावयई परं।
सुआणि य अहिज्झित्ता रओ सुअसमाहिए॥

श्रुतसमाधि के चार प्रकार हैं। यथा–(१) मुझे श्रुतज्ञान की प्राप्ति होगी, इसलिए अध्ययन करना चाहिए; (२) मैं एकाग्रचित्त हो जाऊँगा, अतः अध्ययन करना चाहिए; (३) मैं अपनी आत्मा को धर्म में स्थापित कर सकूँगा, अतः श्रुत का अभ्यास करना योग्य है; तथा (४) मैं स्वयं धर्म से स्थित होकर दूसरे भव्य जीवों को भी धर्म में स्थापित कर सकूँगा, इसलिए मुझे शास्त्र का अध्ययन करना चाहिए। यह चतुर्थ पद हुआ, और यहाँ एक श्लोक है॥५॥

श्रुत अध्ययन के द्वारा ज्ञान विस्तीर्ण होता है, चित्त की एकाग्रता होती है, तथा वे धर्म में स्वयं स्थिर होते हैं और दूसरों को भी धर्म में स्थिर करते हैं। ऐसा मुनि अनेक प्रकार के श्रुतों का अध्ययन करके श्रुतसमाधि रत हो जाता है॥३॥

SHRUT SAMADHI

5. There are four categories of *Shrut samadhi*—I should indulge in studies in order to—(1) acquire the knowledge of the scriptures, (2) achieve concentration, (3) establish myself in *dharma*, and (4) help others getting established in *dharma*, once I have done so. These are the four categories and there is a verse about this

3. With the study of the scriptures knowledge expands, mind achieves concentration, one becomes stable in following dictates of *dharma*, and helps others doing so. By studying various scriptures, such ascetics are absorbed in the *Shrut samadhi*.

तप समाधि

सूत्र ६. चउव्विहा खलु तवसमाही भवइ तं जहा-(१) नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा (२) नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा (३) नो कित्तिवन्नसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा (४) नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा।

चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो-

४ : विविहगुणतवोरए निच्चं भवइ निरासए निज्जरट्ठिए।
तवसा धुणइ पुराणपावगं जुत्तो सया तवसमाहिए॥

तपःसमाधि चार प्रकार की होती है। यथा-(१) साधु को इहलौकिक सुखों के लिए तप नहीं करना चाहिए; (२) पारलौकिक-स्वर्गादि सुखों के लिए तप नहीं करना चाहिए, (३) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक के लिये भी तप नहीं करना चाहिए; (४) केवल पूर्व-संचित कर्मों की निर्जरा के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्देश्य से तप नहीं करना चाहिए। यह चतुर्थ पद है, यहाँ एक श्लोक भी है॥६॥

विविध गुणों वाली तपश्चर्या में निरन्तर रत रहने वाला मुनि किसी प्रकार की लौकिक एवं पारलौकिक फल की आशा नहीं रखता, अपितु केवल

कर्मनिर्जरा का ही लक्ष्य रखता है। वह पुराने पापकर्मों का नाश कर अपनी आत्मा को तपःसमाधि में युक्त करता है॥४॥

TAPAH SAMADHI

6. There are four categories of *Tapah samadhi*—An ascetic should not indulge in *tap* (austerities) for acquiring—(1) pleasures of this world or mundane pleasures, (2) pleasures in the next birth or divine pleasures, (3) fame and glory, and (4) anything else but shedding the already acquired *karmas*. These are the four categories and there is a verse about this.

4. A *shraman* who is ever involved in a variety of austerities never desires for any mundane or divine achievements. His sole goal is the shedding of the *karmas*. He destroys his acquired evil *karmas* and helps his soul attain the *Tapah samadhi*.

आचारसमाधि

सूत्र ७. चउव्विहा खलु आयारसमाही भवइ तं जहा-(१) नो इहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा (२) नो परलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा (३) नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा (४) नन्नत्थ आरहंतेहिं हेऊहिं आयारमहिट्ठिज्जा।

चउत्थं पयं भवइ। भवइ य इत्थ सिलोगो-

आचारसमाधि के चार प्रकार हैं। यथा-(१) इहलोक के लाभ हेतु आचार का पालन नहीं करना चाहिए; (२) परलोक के लाभ हेतु आचार-पालन नहीं करना चाहिए; (३) कीर्ति, वर्ण, शव्द और श्लोक के लिये भी आचार-पालन नहीं करना चाहिए; (४) केवल आर्हत्हेतु-अरिहंतों द्वारा प्ररूपित संवर चारित्र धर्म की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य उद्देश्य से आचार-पालन नहीं करना चाहिए। यही चतुर्थ पद है। यहाँ एक श्लोक कहा गया है॥७॥

7. There are four categories of *Achar samadhi*—An ascetic should not follow proper conduct for acquiring—(1) pleasures of this world or mundane pleasures, (2) pleasures in the next birth or divine pleasures, (3) fame and glory, and (4) anything else but for attaining the ideal conduct propagated by the *Arihant*. These are the four categories and there is a verse about this.

विशेषार्थ ·

किति-वण्ण-सद्द-सिलोग-कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक। कीर्ति-दूसरो के द्वारा किया हुआ यशोगान। वर्ण-लोकव्यापी यश। शब्द-लोक प्रसिद्धि। श्लोक-ख्याति (अगस्त्यसिंह-स्थविर) हरिभद्रसूरि ने भिन्नार्थ किए हैं-कीर्ति-दिग्व्यापी प्रशंसा, वर्ण-एक दिग्व्यापी प्रशसा, शब्द-अर्द्ध-दिग्व्यापी प्रशंसा तथा श्लोक-स्थानीय प्रशसा।

ELABORATION :

(7) ***Kitti***—praise by others. ***Vanna***—glory in this world ***Sadda***—fame among people. ***Shlok***—fame According to Haribhadra Suri the meanings of these four synonyms of fame are—all-round fame, fame in one direction, fame in parts of one direction and simple local fame.

५ : जिणवयणरए अतिंतिणे पडिपुन्नायइमाययट्ठिए।
आयारसमाहिसंवुडे भवइ अ दंते भावसंधए॥

जिन प्रवचनों पर अचल श्रद्धा रखने वाला, उत्तेजनापूर्ण भाषण नहीं करने वाला, शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को प्रतिपूर्ण रूप से समझने वाला, मोक्ष को चाहने वाला, आचारसमाधि द्वारा आस्रवों के प्रवाह को रोकने वाला तथा चंचल इन्द्रियों एवं मन को वश में करने वाला मुनि अपनी आत्मा को मोक्ष के निकट में ले जाता है॥५॥

5. The ascetic who has undying faith in the words of the *Jina*, who refrains from provocative speech, who understands the scriptures profoundly and completely, who desires

liberation, who has acquired the *Achar samadhi* and who has perfected the discipline of senses and mind, stops the inflow of *karmas* and thereby steers his soul towards the lofty state of liberation.

६ : अभिगम चउरो समाहिओ सुविसुद्धो सुसमाहिअप्पओ।
विउलहिअं सुहावहं पुणो, कुव्वइ सो पयक्खेममप्पणो॥

चार प्रकार के समाधि भेदों को सम्यक् प्रकार से जानकर स्वच्छ निर्मल चित्त वाला एवं अपने आप को संयम में पूर्णतया स्थिर रखने वाला साधु, हितकारी, सुखकारी और कल्याणकारी सिद्ध पद को प्राप्त करता है॥६॥

6. A *shraman* who fully knows the secrets of the four *samadhis*, who has attained the purity of soul and who has perfected the unwavering discipline attains the benefic, blissful and rewarding status of *Siddha*.

७ : जाइमरणाओ मुच्चई इत्थंथं च चएइ सव्वसो।
सिद्धे वा हवइ सासए देवे वा अप्परए महिड्ढिए॥
त्ति बेमि।

जो मुनि पूर्व सूत्रों में कथित समाधि गुणों को धारण करते हैं, वे जन्म-मरण मे मुक्त हो जाते हैं; नरक आदि पर्यायों को त्याग देते हैं तथा इस प्रकार वह सिद्ध पद को प्राप्त कर लेते हैं अथवा अल्प कर्म विकार वाले महर्द्धिक देव होते हैं॥७॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

7. The ascetics who acquire all the virtues mentioned above go beyond the natural transformations and are liberated from the cycles of rebirth, thereby attaining the state of *Siddha*. If not, they at least reincarnate as the higher gods with minimal *karmic* impurities. . . . . . . So I say.

उपसंहार

विनयसमाधि के इन चारों उद्देशक में विनय का क्रमिक उपदेश किया गया है। पहले उद्देशक में गुरु एवं आचार्य की आराधना करने का कथन है, यहाँ तक कि केवलज्ञान प्राप्त हो जाये तब भी धर्म की शिक्षा देने वाले उपकारी गुरु का विनय करते रहना चाहिए।

दूसरे उद्देशक मे विनय-अविनय का भेद बताते हुए कहा है कि विनीत सम्पदा का भागी होता है और अविनीत विपदा का।

तीसरे उद्देशक में आचार को निर्मल रखने के लिए विनय के अनेकानेक रूपों पर चिन्तन करते हुए विनयशील को ही लोकपूज्य बताया है।

चतुर्थ उद्देशक में विनयशील को श्रुत, तप और आचार की समाधि–आत्म-आनन्द प्राप्त होता है, इस विषय में प्रकाश डालते हुए विनीत को अन्त में परमपद सिद्धि की प्राप्ति होती है यह बताया है। यही विनय का परम फल है।

Conclusion

In these four sections of the *Vinaya samadhi* the progressive development of *vinaya* has been explained. In the first section the importance of serving the *guru* or *acharya* with devotion and obedience has been shown Even when one attains the loftiest state of omniscience he should be humble in his behavior towards the religious teacher

In the second section difference between politeness and rudeness has been explained with the help of the fruits of these two attitudes

In the third section it has been shown that only a humble soul deserves reverence. This has been done by discussing the various aspects of *vinaya* to help following right code.

In the fourth section it has been explained that spiritual attainments are the natural consequences of *vinaya.* Thus, a humble soul ultimately reaches the lofty state of *Siddha*. And that is the ultimate fruit of *vinaya*.

॥ नवम अध्ययन चौथा उद्देशक समाप्त ॥

END OF NINTH CHAPTER (FOURTH SECTION)

दशम अध्ययन : सभिक्षु

प्राथमिक

इस अध्ययन का नाम है सभिक्षु अर्थात् वह भिक्षु है। इसके विषय-प्रतिपादन से यह स्पष्ट होता है कि पूर्व के नौ अध्ययनो मे जो भिक्षु का उच्च, श्रेष्ठ एवं निर्दोष आचार गोचर बताया गया है तथा प्रथम एवं पाँचवे अध्ययन में भिक्षा की श्रेष्ठ विधि बताई गई है उसका सम्यक् रूप से पालन करने वाला ही भिक्षु कहलाता है। आचार्य भद्रबाहु का कथन है–

जो भिक्खू गुणरहिओ भिक्खं गिण्हइ न होइ सो भिक्खू। –निर्युक्ति ३५६

जो भिक्षु के गुणों से रहित होकर केवल उदर-निर्वाह के लिए भिक्षा माँगता है, वह भिक्षु नहीं, भिखारी है। भिक्षु वह है जो अहिसा, संयम और तप की आराधना के लिए मात्र शरीर-निर्वाह हेतु भिक्षा ग्रहण करता है।

आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज ने बताया है–निरुक्त के अनुसार–भेदन करने वाले को (जैसे–काष्ठ-भेदक बढ़ई) तथा भिक्षा माँगने वाले को भी भिक्षु कहा जा सकता है। किन्तु यहाँ पर तो भिक्षु का अर्थ है–य शास्त्र नीत्या तपसा कर्म भिनत्ति स भिक्षु·–जो शास्त्र नीति के अनुसार तप.श्चरण द्वारा कर्मों का भेदन करता है वही भिक्षु है।

इस अध्ययन में भिक्षु की अनेक चारित्रिक, ज्ञानप्रधान व तितिक्षाप्रधान वृत्तियों का निदर्शन कराते हुए कहा है–जो इन गुणों से युक्त है वही भिक्षु है।

व्याख्याकार आचार्यों ने बताया है–जिस प्रकार सोने मे अनेक गुण होते हैं। वह लचीला, भारी, न जलने वाला, काटरहित, रसायन और विष की घात करने वाला तथा कर्षण छेदन, ताप और ताडन द्वारा उसकी परीक्षा की जाती है। उसी प्रकार भिक्षु की संवेग, निर्वेद, विवेक और तितिक्षा द्वारा कसौटी की जाती है और तप-ज्ञान-दर्शन-क्षान्ति-मार्दव आदि गुणों से युक्त होने पर ही वह वास्तव मे भिक्षु कहलाने का अधिकारी होता है।

इस अध्ययन में भिक्षु के माध्यम से मानव-जीवन के सभी आवश्यक उत्तम गुणो का निरूपण किया गया है। जैसे–तितिक्षा, उपशांतभाव, मद-त्याग और इन्द्रिय-सयम आदि आदर्श जो श्रेष्ठ मानव-जीवन के लिए भी आवश्यक है। जिसमें ये गुण होते हैं वही मानव होता है ऐसा भी कहा जा सकता है। इस अध्ययन में २१ गाथाएँ हैं। एक प्रकार से यह पिछले अध्ययनों का उपसंहारात्मक अध्ययन है। ●●

TENTH CHAPTER : HE IS BHIKSHU

INTRODUCTION

The title of this chapter is Sabhikkhu which means—'He is *bhikshu*' The subject-matter of this chapter is to emphasize that only that person may be called a *bhikshu* (an ascetic) who conforms to the lofty and faultless conduct and routine detailed in the preceding nine chapters, and who meticulously follows the ideal procedure of alms-collection prescribed in chapters one and five

Acharya Bhadrabahu has said—"A *bhikshu* who resorts to alms-collection for mere mundane subsistence and not for pursuing the goal of gaining virtues, is not an ascetic but a beggar." An ascetic is one who seeks alms only to subsist on the spiritual path indulging in practices of *ahimsa*, discipline and austerity.

Acharyashri Atmaram ji M states—"Based on the Sanskrit morphology and semantics the meanings of the word '*bhikshu* can be 'a beggar'; and 'one who drills a substance like wood' (a carpenter) Accordingly the interpretation here is—one who drills the *karmas* with the help of austerities detailed in scriptures "

In this chapter numerous characteristic activities of ascetics (conduct, knowledge, tolerance) have been briefly discussed for the purpose of defining an ascetic

The learned commentators have explained that as the properties of gold, including malleability, gravity, durability and resistance to chemicals, are tested by rubbing, drilling, heating and

hammering, so are tested the virtues of a *bhikshu* on the scales of intensity of devotion, detachment, sagacity and tolerance He can claim to be a *shraman* only if he has virtues like austerity, right knowledge and perception, tolerance, gentleness, etc.

The importance of this chapter is enhanced by the fact that treating an ascetic as a medium all commendable human virtues have been put forth eloquently. All the lofty ideals and humanitarian values can be seen in these virtues of an ascetic One has just to replace *bhikshu* with human being. In a way this chapter is summary of the preceding nine chapters in just 21 verses

दसम अज्झयणं : सभिक्खु
दशम अध्ययन : सभिक्षु

TENTH CHAPTER : SABHIKKHU
HE IS BHIKSHU

भिक्षु के आदर्श गुण

१ : निक्खम्ममाणाए बुद्धवयणे निच्चं चित्तसमाहिओ हवेज्जा।
इत्थीणवसं न आवि गच्छे वंतं नो पडिआयई जे स भिक्खू॥

जो श्री जिनेश्वर देव के उपदेश अनुसार दीक्षा ग्रहण कर बुद्ध पुरुषों के वचनों में रमण करता है। स्त्रियों के वश में नहीं होता, त्याग किये हुए विषय भोगों का वापस सेवन नहीं करता, वह भिक्षु है॥१॥

THE IDEAL VIRTUES OF A BHIKSHU

1. One who gets initiated according to the doctrine of Jina and dwells upon the word of the enlightened, who is not drawn to women and does not regress into the mundane pleasures he has abandoned, he alone is a *bhikshu* (*shraman* or ascetic).

विशेषार्थ :

श्लोक १. निक्खम्ममाणाए–आज्ञा से निष्क्रमण कर। आज्ञा का अर्थ है वचन, सन्देश, उपदेश या तीर्थंकर-वाणी। निष्क्रमण का अर्थ है–द्रव्यगृह (घर या गृहस्थभाव) तथा भावगृह (ममत्वभाव) का त्यागकर आत्म-कल्याण के पथ पर बढना, दीक्षा लेना।

चित्तसमाहिओ–चित्त की समाधि वाला, चित्त से पूर्णतया प्रसन्न। जिसका चित्त पूर्णतया समाधि में लीन होता है।

ELABORATION :

(1) ***Nikkhammamanaye***—renouncing according to the dictates; renouncing is at both physical and mental levels and dictates means following the spiritual path shown in the words, message and preaching of the Tirthankars. Simply speaking—to get initiated or to accept *diksha*.

Chitta samahio—completely absorbed in the self or the word of the enlightened.

षट्काय रक्षा का उपदेश

२ : पुढविं न खणे न खणावए सीओदगं न पिए न पियावए।
अगणिसत्थं जहा सुनिसिअं तं न जले न जलावए जे स भिक्खू॥

भिक्षु वह है, जो सचित्त पृथ्वी को न स्वयं खोदता है और न दूसरों से खुदवाता है, सचित्त जल न स्वयं पीता है और न दूसरों को पिलाता है तथा तीक्ष्ण शस्त्र के समान अग्नि न स्वयं जलाता है और न दूसरों से जलवाता है॥२॥

PROTECTION OF SIX CLASSES OF BEINGS

2. One who refrains from digging and making others dig *sachit* earth, drinking or making others drink *sachit* water, and igniting or making others ignite weapon-like fire, he alone is a *bhikshu*.

३ : अनिलेण न वीए न वीयावए हरियाणि न छिंदे न छिंदावए।
बीयाणि सया विवज्जयंतो सचित्तं नाहारए जे स भिक्खू॥

जो पंखे आदि से न स्वयं हवा करता है न करवाता है, जो हरितकाय का न स्वयं छेदन करता है एवं न औरों से करवाता है, जो बीजादि का स्पर्श नहीं करता और सचित्त आहार नहीं करता है, वह भिक्षु है॥३॥

3. One who refrains from blowing or making others blow air, piercing or making others pierce vegetation, touching seeds and eating *sachit* food, he alone is a *bhikshu*.

४ : वहणं तसथावराण होइ पुढवी-तण-कट्ठनिस्सियाणं।
तम्हा उद्देसिअं न भुंजे नो वि पए न पयावए जे स भिक्खू॥

भोजन बनाते/पकाते समय पृथ्वी, तृण, काठ आदि के आश्रय में रहे हुए त्रस स्थावर जीवों का घात होता है, अतएव जो औद्देशिक आदि आहार नहीं भोगता है, अन्नादि स्वयं नहीं पकाता है तथा दूसरों से भी नहीं पकवाता है, वह भिक्षु है॥४॥

OBSERVE SAMVAR

4. One who refrains from eating food specially made for him, cooking or making others cook food knowing that while cooking mobile and immobile living organism present within earth, straw or wood are destroyed, he alone is a *bhikshu*.

५ : रोइअ नायपुत्तवयणे अत्तसमे मन्नेज्ज छप्पिकाए।
पंच य फासे महव्वयाइं पंचासवसंवरे जे स भिक्खू॥

जो ज्ञातपुत्र (भगवान महावीर) के वचनो पर श्रद्धा रखकर षट्काय के सभी जीवों को अपनी आत्मा के समान प्रिय समझता है तथा पाँच महाव्रतों का यथावत् पालन करता है, पाँच आस्रवों का निरोध करता है, वह भिक्षु है॥५॥

5. Having faith in the words of Jnataputra, one who considers all living beings of the six classes dear as his own soul, properly follows the five great vows and stops the five types of *karmic* inflow, he alone is a *bhikshu*

विशेषार्थ :

श्लोक ५. पचासव–पाँच आस्रव–आस्रवों की गिनती दो तरह से की जाती है–(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय, और (५) योग। तथा–स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र। (जिनदासचूर्णि) में–पंचासवसंवरे णाम पंचिंदियसंवुडे–पाँच इन्द्रियों के अनुकूल-प्रतिकूल विषय सामने आने पर उनमें तुष्ट व रुष्ट नहीं होना–इसी अर्थ में पंचास्रव-सवर की व्याख्या की है।

ELABORATION :

Panchasav—Five types of *karmic* inflow; there are two ways to count these. One is falsehood (1), attachment (2), inactivity or illusion (3), passions (4), and indulgence (5). The other is the attachment and aversion with pleasant and unpleasant subjects of five sense organs. In Jindaschurni—***Panchasrav Samvar*** has been defined as—not to be content or angry when faced with pleasent and unpleasent subjects of five sense organs.

कषाय त्याग

६ : चत्तारि वमे सया कसाए धुवजोगी य हवेज्ज बुद्धवयणे।
अहणे निज्जायरूवरयए गिहिजोगं परिवज्जए जे स भिक्खू॥

जो क्रोधादि चारों कषायों का परित्याग करता है, निर्ग्रन्थ प्रवचन में ध्रुवयोगी एवं सुवर्ण-चाँदी आदि के परिग्रह से मुक्त है तथा गृहस्थ योग—अर्थात् गृहस्थोचित कामों का त्याग करता है, वह भिक्षु है॥६॥

ABANDON KASHAYA

6. One who abandons all the four passions, who has unwavering devotion in the word of *Nirgranth*, who is free of the desire to possess silver or gold, and who renounces the worldly ways of life, he alone is a *bhikshu*.

विशेषार्थ :

श्लोक ६. धुवजोगी—ध्रुवयोगी—तीर्थंकर के उपदेश अर्थात् द्वादशांगी में जो मन, वचन, काया से जुड़ा हुआ हो, जो पाँच प्रकार के स्वाध्याय मे रत हो और जो पूर्ण अपरिग्रही हो, वह ध्रुवयोगी कहलाता है।

ELABORATION :

(6) ***Dhuvajogi***—who follows the word of Tirthankars through mind speech and body, who always indulges in five types of self-study and who is above all possessions.

७ : सम्मद्दिट्ठी सया अमूढे अत्थि हु नाणे तवे संजमे य।
तवसा धुणइ पुराणपावगं मण-वय-काय सुसंवुडे जे स भिक्खू॥

जो सम्यग्दर्शी है, मूढ़भावरहित है अर्थात् मिथ्यात्वियों का वैभव देखकर मोहित नहीं होता। ज्ञान, तप और संयम के प्रति आस्थावान है, मन, वचन और काय को संवृत रखता है तथा तप द्वारा पुरातन पापकर्मों को आत्मा से पृथक् करता है, वह भिक्षु है॥७॥

7. One who is endowed with right perception, who is not enticed by the grandeur of those on the wrong path, who has faith in knowledge, austerity and discipline; who keeps his mind, speech and body in control; and who sheds the acquired *karmas* with the help of austerities; he alone is a *bhikshu*.

विशेषार्थ :

श्लोक ७. मणवयकायसुसवुडे–अकुशल मन का निरोध तथा कुशल मन की उदीरणा–मन से सुसंवृत होना है। अकुशल वचन का निरोध और प्रशस्त वचन की उदीरणा अथवा मौन रहना वचन से सुसंवृत होना है। शास्त्र विहित नियमो के अनुसार आवश्यक शारीरिक क्रियाएँ करना अथवा काया से अकरणीय क्रियाएँ नही करना काय से सुसवृत होना है। (जि चू., पृष्ठ ३४२)

ELABORATION :

(7) ***Manavayakayasusamvudde***—to have control over mind, speech and body or to keep these three faculties in perfect health To curb bad attitudes and to foster good attitudes is perfect mental health. To curb bad speech and to foster good speech is perfection of speech To curb bad physical activities and to foster good physical activities following the dictates of the scriptures is perfect physical health (*Jinadas Churni,* page 342)

संग्रह-निषेध

८ : तहेव असणं पाणगं वा विविहं खाइमसाइमं लभित्ता।
होही अट्ठो सुए परे वा तं न निहे न निहावए जे स भिक्खू॥

जो आगम विहित विधि अनुसार विविध प्रकार के अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को पाकर 'यह कल तथा परसों के दिन काम आयेगा' इस विचार से उक्त भोज्य पदार्थों का न स्वयं संचय करता है और न औरों से करवाता है, वह भिक्षु है॥८॥

NEGATION OF STORING

8. After getting numerous eatables of the four classes, one who refrains from storing or making others store those eatables with the purpose of consuming them the next day or the day after, he alone is a *bhikshu*.

९ : तहेव असणं पाणगं वा विविहं खाइमसाइमं लभित्ता।
छंदिय साहम्मियाण भुंजे भोच्चा सज्झायरए य जे स भिक्खू॥

जो निर्दोष विधि से अशनादि चारों प्रकार का आहार मिलने पर अपने साधर्मि साधुओं को भोजनार्थ निमंत्रित करके ही आहार करता है और आहार करके श्रेष्ठ स्वाध्याय कार्य में संलग्न हो जाता है, वह भिक्षु है॥९॥

9. After getting numerous eatables of the four classes, one who invites his fellow ascetics before eating and who devotes his time to the commendable work of studies after his meals, he alone is a *bhikshu*.

सयम-ध्रुवयोग

१० : न य वुग्गहियं कहं कहेज्जा न य कुप्पे निहुइंदिए पसंते।
संजमधुवजोगजुत्ते उवसंते अविहेडए जे स भिक्खू॥

जो कलह उत्पन्न करने वाली कथा नहीं करता, क्रोध नहीं करता, मन एवं इन्द्रियों को सदा संयत रखता है, पूर्ण रूप से शान्त रहता है, संयम-क्रियाओं में ध्रुवयोगी है। (मन-वचन-काया के योगों को स्थिर रखता है) कष्ट आ पड़ने पर आकुलता से मुक्त रहता है और दूसरों का अनादर नहीं करता, वह भिक्षु कहलाता है॥१०॥

10. One who does not use provocative language or get angry, who always keeps his mind and senses under control, who is perfect in practicing discipline, who remains unmoved when in trouble and does not insult others, he alone is a *bhikshu*.

विशेषार्थ :

श्लोक १0 वुग्गहिय कहं–वैग्रहिकी कथा–ऐसी बातें जिनसे विग्रह या कलह उत्पन्न हो, खासकर युद्ध एवं राजनीति-सम्बन्धी वार्त्ता करने का निषेध है जिनके कारण विवाद या विद्वेष बढ़ता हो।

निहुइंदिए–निभृतेन्द्रिय–जिसकी इन्द्रियाँ निभृत अर्थात् विनीत अथवा अचचल है। इन्द्रियो पर सयम रखने वाला।

ELABORATION :

(10) ***Viggahiyam kaham***—provocative language or talk, specially on the subjects of war and politics

Nihuindiye—whose senses are steady, who disciplines his senses

सहिष्णुता का उपदेश

११. जो सहइ हु गामकंटए अक्कोस-पहार-तज्जणाओ य।
भयभेरवसद्दसंपहासे समसुह-दुक्खसहे य जे स भिक्खू॥

जो इन्द्रियों को कॉटों के समान चुभने वाले आक्रोश वचनो, प्रहार और तर्जनाओं को तथा वेताल आदि के अत्यन्त भयकारी अट्टहास आदि शब्दों व उपसर्गों को एवं सुख-दुःख को समभावपूर्वक सहन करता है, वह भिक्षु है॥११॥

BE TOLERANT

11. One who tolerates with equanimity afflictions such as—thorn-like harsh and angry words, blows, insults and terrifying sounds like demonic laughter, and who is also equanimous in pleasure and pain, he alone is a *bhikshu*.

विशेषार्थ :

श्लोक ११. गामकंटए–ग्रामकण्टकान्–आगमों के व्याख्या-ग्रन्थों में, ग्राम शब्द का अर्थ 'इन्द्रिय' किया है। अतः इन्द्रियों के लिए काँटे के समान चुभने वाले विषय। अप्रिय स्पर्श-रस-गंध-रूप-वचन आदि के लिए इन्द्रिय-कण्टक या ग्राम-कण्टक शब्द व्यवहृत होता है।

अक्कोस-पहार–आक्रोशवचन-गाली आदि। चाबुक आदि की मार–प्रहार। व्यंग्य पूर्वक तुच्छ शब्द बोलना तर्जना है।

ELABORATION :

(11) ***Gamkantaye***—in the commentaries the meaning of *gram* is given as senses Therefore, this term means things that are piercing and painful, like a thorn, to any and all senses. Anything that is repulsive to eyes, ears, smell, taste and touch

Akkos-pahar—angry words, abuse Hitting with things like whip is prahar Uttering demeaning words satirically is *Tarjana*

१२ : पडिमं पडिवज्जिया मसाणे नो भायए भयभेरवाइं दिस्स।
विविहगुणतवोरए य निच्चं न सरीरं चाभिकंखई जे स भिक्खू॥

जो प्रतिमा को अंगीकार करके श्मशान भूमि में ध्यानस्थ हुआ, भूत पिशाचादि के भयोत्पादक रूपों को देखकर भयभीत नहीं होता, जो विविध मूल गुणो एवं तपो के विषय में अनुरक्त रहता है तथा शरीर की भी ममता नहीं करता, वही भिक्षु है॥१२॥

12. One who takes a resolve and goes to the cremation ground to meditate and is not afraid of the terrible afflictions by evil spirits, who sincerely practices the basic ascetic conduct as well as austerities and does not care even for his body, he alone is a *bhikshu.*

विशेषार्थ :

श्लोक १२ पडिम–प्रतिमा–कायोत्सर्ग तथा अभिग्रह (विशिष्ट प्रतिज्ञा) दोनों ही अर्थ मे प्रतिमा शब्द का व्यवहार होता है। कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित होकर श्मशान में ध्यान करने की परम्परा वैदिको व बौद्धों की तरह जैन मुनियो में भी प्रचलित थी।

ELABORATION :

(12) *Padimam*—this word is used for complete detachment from the body while meditating as well as for some special austere resolutions. Like Vedics and Buddhists the practice of going to the cremation ground for such meditation was also popular among Jain ascetics.

१३ : असइं वोसट्ठचत्तदेहे अक्कुट्ठे व हए व लूसिए वा।
पुढवि समे मुणी हवेज्जा अनियाणे अकोउहल्ले य जे स भिक्खू॥

जो साधना-क्रम में पुनः-पुनः अपने शरीर का व्युत्सर्ग और त्याग करता है, किसी के आक्रोश करने पर, झिड़कने पर, मारने-पीटने पर एवं घायल करने पर भी पृथ्वी के समान सब कुछ सहता है तथा जो निदान नहीं करता और कुतूहल भी नहीं करता है, वह भिक्षु है।॥१३॥

13. While indulging in spiritual practices, one who diverts his attention and gets detached from his body, time and again; who, like earth, tolerates anger, abuse and even blows and wounds inflicted by others; and who avoids curiosity as well as expectation, he alone is a *bhikshu*

विशेषार्थ

श्लोक १३ वोसट्ठ चत्तदेहे–व्युत्सर्ग और त्याग वैसे तो समानार्थक शब्द हैं किन्तु आगमों मे इनका प्रयोग विशेष अर्थों में हुआ है। अभिग्रह और प्रतिमा स्वीकार कर शारीरिक क्रियाओं का त्याग करना व्युत्सर्ग है और शारीरिक परिकर्म (मर्दन, स्नान आदि के परित्याग) को त्याग कहा है।

अनियाणे–अनिदान–भावी फल की आशा का अभाव अनिदान कहलाता है। निरपेक्षवृत्ति।

ELABORATION :

(13) *Vosattha Chattadehe*—*Vyutsarg* and *Tyag* are synonyms but in Agams they have been used as different words. To abandon physical activities and meditate after taking some specific resolution is called Vyutsarg. To abandon simple

bodily acts like those of beautifying the body (massage, bath, etc.) is called Tyag.

Aniyane—lack of expectations

तितिक्षा एवं अभय भाव

१४ : अभिभूय काएण परीसहाइ समुद्धरे जाइपहाओ अप्पयं।
विइत्तु जाइमरणं महब्भयं तवे रए सामणिए जे स भिक्खू॥

जो अपनी काया द्वारा परीषहों को जीतकर आत्मा को संसार-मार्ग से दूर कर लेता है तथा जन्म-मरण को महाभय जानकर चारित्र (श्रमणधर्म) एवं तप में लीन रहता है, वह भिक्षु है।।१४।।

ATTITUDE OF TOLERANCE AND AMNESTY

14. One who wins over afflictions by his body and steers his soul away from mundane life, who always remains sincerely engrossed in following the ascetic conduct and austerities considering the cycles of life and death to be fearsome, he alone is a *bhikshu.*

विशेषार्थ :

श्लोक १४ परीसहाइ–परीषह–आत्म-साधना के मार्ग पर जो अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती है तथा उनसे उत्पन्न मनोभाव जो पथ-भ्रष्ट होने को प्रेरित करते हैं, उन्हें परीषह कहते हैं। भूख, प्यास आदि ऐसे बाईस परीषहो का उल्लेख है। निर्जरा की भावना से सहे जाने वाले शारीरिक एवं मानसिक कष्ट 'परीषह' कहलाते हैं।

ELABORATION :

(14) *Parisahaim*—afflictions, the favorable and unfavorable situations faced during spiritual practices and the consequent reactions and sentiments that push in wrong direction There is a mention of twenty two such afflictions including hunger and thirst. The physical and mental pain tolerated for the purpose of shedding *karmas* is also called *parishah* (affliction).

संयम और अमूर्च्छाभाव

१५ : हत्थसंजए पायसंजए वायसंजए संजइंदिए।
अज्झप्परए सुसमाहियप्पा सुत्तत्थं च वियाणई जे स भिक्खू॥

जो अपने हाथ, पैर, वाणी और इन्द्रियों से पूर्ण संयत है, अध्यात्मविद्या में रत है, भली प्रकार से समाधिभाव में स्थिर है तथा सूत्र एवं अर्थ के मर्म को यथार्थ रूप से जानता है, वह भिक्षु है।॥१५॥

DISCIPLINE AND DETACHMENT

15. One who is perfectly composed in terms of limbs, speech and senses; who is absorbed in spiritual practices; who is unwavering in meditation; and who knows and understands the text and correct meaning of the scriptures; he alone is a *bhikshu*.

विशेषार्थ :

श्लोक १५. सजए-संयत-जो प्रयोजन न होने पर मन, वचन व काया तथा इन्द्रियों की प्रवृत्तियो को कछुए के समान गुप्त अथवा पूर्ण नियन्त्रित कर राग-द्वेष से मुक्त रखता है और आवश्यकता पड़ने पर ही आत्म-शुद्धि की दिशा मे उन्हे नियमानुसार प्रयुक्त करता है, उसे संयत कहते हैं। संयत शब्द से प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनों का ही बोध होता है।

ELABORATION :

(15) ***Sanjae***—composed, who like a tortoise stops all activities of mind, speech, body and the senses when not needed and commences activity according to the codes of conduct when needed for spiritual attainment. This term indicates both indulgence and non-indulgence

१६ : उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे अन्नायउंछंपुल निप्पुलाए।
कयविक्कयसन्निहिओ विरए सव्वसंगावगए य जे स भिक्खू॥

जो मुनि अपने वस्त्र आदि उपकरणों मे मूर्च्छाभाव नहीं रखता, सांसारिक प्रतिवन्धों से मुक्त रहता है, अज्ञात कुलों मे भिक्षा ग्रहण करता है, संयम को

दोषों से असार नहीं होने देता, क्रय-विक्रय और संग्रह से दूर रहता है तथा सब प्रकार के संगों से अछूता रहता है, वह भिक्षु है॥१६॥

16. One who is not attached to his clothing and other equipment, who is free of all worldly ties, who collects alms from unknown families, who does not allow his discipline (of basic and auxiliary rules) to become worthless by faults, who remains away from sale, purchase and storing, and who is untouched by any indulgences (in subjects of sense organs), he alone is a *bhıkshu*.

विशेषार्थ :

श्लोक १६. अन्नायउछ पुल–अज्ञात-कुल की एषणा करने वाला।

निप्पुलाए–निष्पुलाक–मूलगुण व उत्तरगुणों में दोष लगाने से संयम नि·सार बन जाता है उसे 'पुलाक' कहते है। अत· निष्पुलाक का अर्थ हुआ–मूलगुण व उत्तरगुण में दोष नहीं लगाने वाला।

सव्वसगावगए–संग का अर्थ है इन्द्रियो के विषय। सभी प्रकार के इन्द्रिय-विषयों से परे रहने वाला, निर्लिप्त, अनासक्त अथवा अछूता।

ELABORATION :

(16) *Annayauncch pul*—who collects alms from unknown families.

Nippulaye—pulak means to become worthless due to faults ın dıscıpline of basıc and auxılary rules. Opposite of it is Nishpulak.

Savvasangavagaye—untouched by any ındulgences in subjects of sense organs.

१७ : अलोल भिक्खू न रसेसु गिद्धे उंछं चरे जीविय नाभिकंखे।
इड्ढिं च सक्कारण पूयणं च चए ठियप्पा अणिहे जे स भिक्खू॥

जो लोलुपता नहीं रखता, रसों में मूर्च्छित नहीं होता, अज्ञात-कुलों से लाया हुआ थोड़ा-थोड़ा भिक्षान्न भोगता है, असंयम जीवन की इच्छा नहीं करता, ऋद्धि,

सत्कार और पूजा-प्रतिष्ठा की स्पृहा नहीं करता तथा जो स्थिर स्वभावी और निश्चल होता है और कर्म-समूह का नाश करने में शक्ति का उपयोग करता है, वह भिक्षु है॥१७॥

17. One who is free of any cravings, who does not submit to his taste-buds, who eats food collected in small quantity from numerous unknown families, who is not desirous of indisciplined life, acquisitions, honor or worship, who is serene and unwavering, and who uses all his power to destroy the accumulated *karmas*, he alone is a *bhikshu*.

परनिन्दा-आत्म प्रशंसा निषेध

१८ : न परं वएज्जासि अयं कुसीले जेणऽन्नो कुप्पेज्ज न तं वएज्जा।
जाणिय पत्तेयं पुण्णपावं अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खू॥

'जो जैसा पुण्य-पाप करता है वह वैसा ही फल भोगता है' यह विचार कर जो दूसरों को कुशीलिया-दुराचारी कहकर तिरस्कृत नहीं करता। किसी को क्रोधोत्पादक कटु वचन नहीं कहता तथा 'मैं ही सबसे उत्कृष्ट हूँ' ऐसा मानकर गर्व नहीं करता, वही भिक्षु है॥१८॥

NEGATION OF INSULT TO OTHERS AND SELF-PRAISE

18. Thinking that everyone reaps the fruits of his own good or bad deeds, one who does not insult others by calling them corrupt or immoral; who does not utter provocative or harsh words; and who does not take pride in considering himself to be the best, he alone is a *bhikshu*

१९ : न जाइमत्ते न य रूवमत्ते न लाभमत्ते न सुएणमत्ते।
मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू॥

जो मुनि जाति का, रूप का, लाभ का और श्रुत आदि का मद–अभिमान नहीं करता, जो सब प्रकार के मदों का परित्याग करके सदा धर्मध्यान में ही लीन रहता है, वह भिक्षु है॥१९॥

19. One who is not proud of his clan, appearance, acquisitions or knowledge; rising above all complexes, who is always involved in spiritual practices; he alone is a *bhikshu*.

विशेषार्थ :

श्लोक १९ मयाणि सव्वाणि–मद आठ हैं–जाति-मद, कुल-मद, रूप-मद, तप-मद, श्रुत-मद, लाभ-मद, ऐश्वर्य-मद तथा प्रज्ञा-मद। सभी प्रकार के मदों का त्याग करना।

ELABORATION :

(19) ***Mayani savvani***—all types of intoxication; here it refers to bloated ego that turns into a complex There are eight types of such egos—pride of the clan, pride of the family, pride of beauty, pride of austerity, pride of knowledge, pride of achievements, pride of wealth and pride of intelligence

२० : पवेयए अज्जपयं महामुणी धम्मे ठिओ ठावयई परं पि।
निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिंगं न यावि हासंकुहए जे स भिक्खू॥

जो महामुनि, पर-उपकार की भावना से आर्य पद–धर्म का उपदेश देता है, स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरों को भी धर्म में स्थित करता है, संसार के दूषित वातावरण से बाहर निकल चुका है, कुशीललिंग को छोड़ देता है तथा कभी दूसरों को हँसाने के लिए कुतूहलपूर्ण कुचेष्टाएँ नहीं करता, वही भिक्षु है॥२०॥

20. That great ascetic who preaches religion with the feeling of altruism, who first establishes himself in *dharma* and then helps others do so, who has come out of the evil ways of mundane life, who has abandoned the wrong school or path, and who does not indulge in mockery to make others laugh, he alone is a *bhikshu*.

विशेषार्थ :

श्लोक २०. कुसील लिग–कुशील लिंग–अन्य धर्मावलम्बी का अथवा आचाररहित स्वधर्मावलम्बी का वेश धारण करना कुशील लिंग है।

ELABORATION :

(20) *Kuseel ling*—to dress like the followers of other school or follower of one's own school who does not conform to the ascetic code; to follow the wrong path.

२१ : तं देहवासं असुइं असासयं सया चए निच्च हियट्ठियप्पा।
छिंदित्तु जाईमरणस्स बंधणं उवेइ भिक्खू अपुणरागमं गइं॥
त्ति बेमि।

अपनी आत्मा को सदा शाश्वत-हित में स्थिर रखने वाला भिक्षु, शुक्र शोणित पूर्ण इस अशुचिमय एवं विनाशशील शरीर का सदा के लिए परित्याग कर देता है तथा जन्म-मरण के बन्धनों को काटकर जहाँ जाने के बाद फिर संसार मे आना-जाना नहीं होता है ऐसे अपुनरागम-गतिरूप मुक्ति स्थान को प्राप्त कर लेता है॥२१॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

21. Such *bhikshu* who is steadfast on the path of eternal benefit abandons forever this ephemeral body filled with semen, blood and faeces, severs the bonds of life-cycles and reaches the place from where one does not return to this world. In other words, he attains liberation . . . . . So I say

॥ दसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

END OF TENTH CHAPTER

प्रथम चूलिका : रतिवाक्या

प्राथमिक

पिछले दस अध्ययनों में भिक्षु के उत्कृष्ट आचार नियमों का प्रतिपादन किया गया है। यदि भोगावली कर्मों के उदयवश कभी श्रमण का चित्त चचल और मोहग्रस्त हो उठे, उसे संयम में अरुचि–अरति उत्पन्न हो जाय तथा असंयम में रुचि या राग होने लगे तो उसकी इस मोह दशा का निवारण करने के लिए इस अध्ययन मे अत्यन्त मानस-स्पर्शी सहज सुबोध उपदेश दिया गया है। जिसके श्रवण-मनन से खेद खिन्न चंचल चित्त में पुन· संयम के प्रति रति–अनुराग उत्पन्न हो सकेगा। इस कारण इस अध्ययन का **'रतिवाक्या'**–संयम में रति उत्पन्न करने वाले वाक्य नाम दिया है। चूला या चूलिका का अर्थ है मूल सूत्र में नहीं बताया हुआ शेष अतिरिक्त वर्णन। वर्तमान भाषा में इसे परिशिष्ट कह सकते हैं। दस अध्ययनो में जो-जो नियम व उपदेशपद कहने से रह गये हैं उनका कथन इन चूलिकाओं में किया गया है।

इस प्रथम चूलिका में संयम में स्थिर करने वाले अठारह स्थान या अष्टादश पद का वर्णन है। ये अठारह पद बहुत ही सारपूर्ण सुभाषित वाक्य जैसे हैं। जैसे–**बंधे गिहिवासे मोक्खे परियाए**–गृहस्थवास बंधन है, संयम मोक्ष-स्वतंत्रता का आस्थान है। **पत्तेयं पुण्ण-पावं**–पुण्य-पाप प्रत्येक आत्मा का अपना स्वतंत्र है आदि। विविध दृष्टियों से इस अध्ययन का विषय अध्यात्म-साधक के लिए सम्बल है। इसे आगम की भाषा में **पोय-पडागा भूयाइं**–जहाज के लिए जैसे पताका का महत्त्व है, हाथी के लिए अकुश का, उसी प्रकार अध्यात्म-साधना में बढ़ने वालों के लिए ये रति-वाक्य अर्थात् प्रिय वाक्य सहारा देने वाले सिद्ध होंगे।

FIRST ADDENDUM : APHORISMS OF DISCIPLINE

INTRODUCTION

In the preceding ten chapters the lofty codes of ascetic conduct have been detailed. If under the influence of the *karmas* that lead to sufferings, a *shraman's* mind wavers and is filled with thoughts of attachment giving rise to aversion for discipline, this chapter provides a solution in the form of simple and touching aphorisms Reading, listening to, and contemplating on these aphorisms help him regain his love for discipline That is why this chapter gets its name Aphorisms Of Discipline *Choola* or *chulika* means addendum. The codes and other things not discussed in the preceding chapters have been listed in brief in these two addenda

In the first addendum are listed eighteen points that help fixing oneself into discipline. These short sentences are eloquently composed to convey important messages in brief For example—worldly life is bondage and discipline is the gateway to liberation, every soul has its own sin and piety; etc The subject of this chapter is valuable for a spiritualist from many angles As sails are important for a ship, a lance is important for an elephant, so are these aphorisms of discipline for those who want to progress on the spiritual path.

पढमा चूलिका : रइवक्का
प्रथम चूलिका : रतिवाक्या

FIRST ADDENDUM : RAIVAKKA
APHORISMS OF DISCIPLINE

अष्टादश स्थान

इह खलु भो ! पव्वइएणं, उप्पन्नदुक्खेणं, संजमे अरइसमावन्नचित्तेणं, ओहाणुप्पेहिणा अणोहाइएणं चेव, हयरस्सि-गयंकुस-पोयपडागाभूयाइं इमाइं अट्ठारस ठाणाइं सम्मं संपडिलेहियव्वाइं भवंति। तं जहा–

हे मुमुक्षुओ ! निर्ग्रन्थ धर्म मे दीक्षित जिस भिक्षु को किसी मोहवश कोई दुःख उत्पन्न हो, संयममार्ग से उसका चित्त विमुख हो जाये, उनमें अरति उत्पन्न हो जाये और वह संयम त्यागकर गृहस्थाश्रम में (अवधावन) वापस लौटना चाहे तो उसे वैसा करने से पहले इन अठारह स्थानों का भलीभाँति आलम्बन–चिन्तन करना चाहिए। अस्थिर चित्त के लिए ये स्थान वैसे ही हैं जैसे घोड़े के लिए लगाम, हाथी के लिए अंकुश और जहाज के लिए पाल। ये अठारह स्थान इस प्रकार हैं–

ह भो ! दुस्समाए दुप्पजीवी।

१. अहो ! इस दुःषम काल (अवसर्पिणी काल का पाँचवाँ आरा) में आजीविका चलाना कठिन है।

लहुसगा इत्तरिआ गिहीणं कामभोगा।

२. गृहस्थों के काम-भोग असार, तुच्छ और अल्पकालिक–क्षणिक हैं।

भुज्जो य साइबहुला मणुस्सा।

३. आजकल के मानव प्रायः माया बहुल माया से ओत-प्रोत होते हैं।

इमे अ मे दुक्खे न चिरकालोवट्ठाई भविस्सइ।

४. मेरा यह परीषहों से उत्पन्न दुःख सदा स्थायी नहीं रहेगा।

ओमजणपुरक्कारे।

५. गृहस्थ को नीच जनों (क्षुद्र पुरुषों) का भी सत्कार करना पड़ता है।

वंतस्स य पडिआयणं।

६. संयम को त्याग पुनः गृहस्थ बन जाना वमन को पीने के समान है।

अहरगइ वासोवसंपया।

७. संयम को त्याग पुनः गृहस्थ बन जाना नारकीय जीवन को अंगीकार करने जैसा है।

दुल्लहे खलु भो ! गिहीणं धम्मे गिहिवासमज्झे वसंताणं।

८. अहो ! गृहस्थ जीवन के बीच धर्म की साधना निश्चय ही अतिदुर्लभ है।

आयंके से वहाय होइ।

९. वहाँ आतंक (रोगों) की परिणति मृत्यु में होती है।

संकप्पे से वहाय होइ।

१०. वहाँ संकल्प (मानसिक रोग) की परिणति मृत्यु में होती है।

सोवक्केसे गिहवासे। निरुवक्केसे परियाए॥

११. गृहवास क्लेशमय है और मुनि पर्याय क्लेश-मुक्त है।

THE EIGHTEEN THINGS

O seekers of liberation! After getting initiated into the *nirgranth* religion, if any *shraman* faces some misery, caused by some indiscretion, looses interest and will to follow the path of discipline, and wants to abandon the ascetic way to return to the worldly ways of a householder, he should, before

doing so, contemplate on the following eighteen points. For a wavering mind these points act like reins to a horse, lance to an elephant, and sails to a ship. The points are—

1. Oh! How difficult it is to earn one's living during this miserable period (the fifth phase of the descending cycle of time).
2. The mundane pleasures of the householders are worthless, absurd and momentary.
3. Man today abounds in fraud.
4. My misery caused by these afflictions is not permanent.
5. A householder is forced to respect even lowly persons.
6. Reversion to mundane ways is like consuming what has been vomited
7. Reversion to mundane ways is accepting a hellish life.
8. Oh! It is very difficult to pursue the spiritual goal as a householder.
9. These afflictions, like physical ailments, end up in termination of life.
10. These afflictions, like mental sickness, end up in termination of life.
11. A householder's life is full of miseries and that of an ascetic is free of all miseries.

विशेषार्थ

सूत्र ११. **सोवक्केसे गिहवासे**–गृहस्थवास अनेक प्रकार की चिन्ता व क्लेश से घिरा होता है। इसे सोपक्लेश कहा गया है।

परियाए–पर्याय शब्द यहाँ मुनि जीवन के अर्थ में प्रयुक्त है। अगस्त्यसिंहचूर्णि के अनुसार इसका शब्दार्थ है–**परियातो समंततो पुण्णागमण पव्वज्जा**–जिस दशा में परितः चारों ओर से पुण्य का आगमन होता है, वह प्रव्रज्या काल मुनि अवस्था पर्याय कही जाती है।

ELABORATION :

(11) ***Sovakkese Gihivase***—A householder's life is full of worries and miseries.

Pariyaye—a particular state, here it refers to the ascetic way The state or the way of life where there is an inflow of piety from all directions is called the ascetic state or *muni-paryaya (Agastya Simha Churni)*

बंधे गिहवासे। मुक्खे परियाए॥

१२. गृहवास बन्धन है और मुनि-पर्याय मुक्ति (मोक्ष) है।

सावज्जे गिहवासे। अणवज्जे परियाए॥

१३. गृहवास सावद्य (पापसहित) है और मुनि-पर्याय अनवद्य है।

बहुसाहारणा गिहीणं कामभोगा।

१४. गृहस्थों के काम-भोग बहुत साधारण, सर्व-सुलभ हैं।

पत्तेयं पुण्णपावं।

१५. पुण्य और पाप सबका अपना-अपना होता है।

अणिच्चे खलु भो ! मणुयाण जीविए कुसग्गजलबिंदुचंचले।

१६. अहो ! मानव जीवन अनित्य है, कुश की नोक पर स्थित ओस की बूँद के समान चंचल है।

बहुं च खलु भो ! पावं कम्मं पगडं।

१७ अहो ! मैंने इससे पूर्व अनेक पाप-कर्म किये है।

पावाणं च खलु भो ! कडाणं कम्माणं पुव्विं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं वेयइत्ता मोक्खो, नत्थि अवेयइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता। अट्ठारसमं पयं भवइ।

भवइ य इत्थ सिलोगो–

१८. अहो ! दुश्चरित्र और दुष्प्रवृत्ति के द्वारा पूर्व-अर्जित पापकर्मों को भोग लेने पर अथवा तप के द्वारा उनको क्षय कर देने पर ही मोक्ष मिलता है। उन्हें भोगे बिना उनका अन्त नहीं होता।

यह अठारहवाँ पद है।

12 A householder's life is bondage and that of an ascetic is liberation.

13. A householder's life is full of sins and that of an ascetic is free of any sins.

14. The mundane pleasures are common place and easy to avail.

15. Every soul has its own sin and piety

16. Oh! How momentary is human life, indeed it is like a dew drop on the tip of grass.

17 Oh! I have already committed many sins (why should I commit any more).

18. Oh! It is impossible to get liberated without suffering or destroying, through austerities, the sinful *karmas* acquired through evil intent or bad conduct.

This is the eighteenth point Now there are verses.

भोगासक्त भविष्य को नहीं देखता

१ : जया य चयई धम्मं अणज्जो भोगकारणा।
से तत्थ मुच्छिए बाले आयइं नावबुज्झइ॥

काम-भोगों के कारण जब अनार्य बुद्धि (क्षुद्र बुद्धि) वाला साधु, चारित्र धर्म को छोड़ता है तब उन काम-भोगों में मूर्च्छित हुआ वह अज्ञानी अपने भविष्य के प्रति अनभिज्ञ रहता है॥१॥

LICENTIOUS IS BLIND TO FUTURE

1. Driven by the desire for mundane pleasures, when a debased ascetic abandons the disciplined life he gets obsessed with those pleasures and turns a blind eye to the consequences.

संयम से गिरते हुए को चेतावनी

२ : जया ओहाविओ होइ इंदो वा पडिओ छमं।
सव्वधम्मपरिब्भट्ठो स पच्छा परितप्पइ॥

जो कोई साधु चारित्र त्यागकर गृहस्थ हो जाता है वह सभी धर्म-कर्मों से परिभ्रष्ट होकर उसी प्रकार पश्चात्ताप करता है जिस प्रकार स्वर्ग लोक से च्युत होकर पृथ्वी तल पर आया हुआ इन्द्र पश्चात्ताप करता है॥२॥

WARNING TO THE LAX ASCETIC

2. When a *shraman* abandons the ascetic way and becomes a householder he gets deprived of all religious activities and practices and repents like an *Indra* (king of gods) fallen on the earth from his heavenly abode.

देवता की उपमा

३ : जया य वंदिमो होइ पच्छा होइ अवंदिमो।
देवया व चुया ठाणा स पच्छा परितप्पइ॥

संयम का पालन करता हुआ साधु सबका वन्दनीय होता है, किन्तु जब संयम से भ्रष्ट हो जाता है तब वही तिरस्कार का पात्र हो जाता है और उसी प्रकार पश्चात्ताप करता है जिस प्रकार स्थान से च्युत हुआ देवता॥३॥

THE METAPHOR OF GOD

3. When he practises the ascetic discipline a *shraman* is respected by all but when he falls from grace he becomes an object of contempt and repents like an *Indra* fallen on the earth from his heavenly abode.

राजा की उपमा

४ : जया य पूइमो होइ पच्छा होइ अपूइमो।
राया व रज्जपब्भट्ठो स पच्छा परितप्पइ॥

साधु अपने प्रव्रज्या काल में सब लोगों का पूजनीय होता है, किन्तु धर्म से भ्रष्ट हो जाने के पश्चात् वह अपूजनीय हो जाता है और वह राज्य भ्रष्ट राजा के समान सदा पछताता रहता है॥४॥

THE METAPHOR OF KING

4. When he practises the ascetic discipline, a *shraman* is revered by all but when he falls from grace he becomes an object of disrespect and always repents like a dethroned king.

५ : जया य माणिमो होइ पच्छा होइ अमाणिमो।
सेट्ठिव्व कव्वडे छूडो स पच्छा परितप्पइ॥

साधु जब संयम का पालन करता है, तब तो सर्वमान्य होता है, किन्तु संयम छोड़ने के पश्चात् अत्यन्त अपमानित हो जाता है और उसी प्रकार परिताप करता है, जिस प्रकार किसी छोटे-से गाँव में सीमाबद्ध किया हुआ श्रेष्ठी रहता है॥५॥

5. When he practises the ascetic discipline a *shraman* draws regard from all, but when he falls from grace he becomes an object of disregard and repents like a merchant confined to a small village

विशेषार्थ :

श्लोक ५. सेट्ठिव्व कव्वडे छूडो–कर्बट में अवरुद्ध किया हुआ श्रेष्ठी। कर्बट का अर्थ है– छोटा गाँव, जहाँ बाजार या क्रय-विक्रय का साधन न हो। श्रेष्ठी शब्द आजकल सामान्य व्यापारी या महाजन के अर्थ में प्रचलित है, किन्तु प्राचीन समय में श्रेष्ठी शब्द बहुत सम्मानजनक था। निशीथभाष्य में बताया है–जिसमें लक्ष्मी देवी का चित्र अंकित हो वैसा वेष्टन बाँधने की जिसे राजा के द्वारा अनुज्ञा/सन्मान प्राप्त हुआ वह व्यक्ति श्रेष्ठी कहलाता है। 'हिन्दू राज्य तंत्र' के अनुसार पौर सभा का वह प्रधान या प्रमुख व्यक्ति जो उसी नगर का प्रमुख व्यापारी या महाजन होता था उसे श्रेष्ठी (श्रेष्ठ) या प्रधान कहा जाता था।

–(आचार्य महाप्रज्ञ दशवै., पृ. ५१४)

ELABORATION :

(5) *Setthivva kavvade chudo*—a merchant confined to a small village where there neither is a market nor other facilities for trading. *Setthi*—a merchant. In modern times the word *seth* or *shreshthi* has lost its importance and is commonly used for any merchant or trader. In the ancient times it was used as a much honoured title. According to *Nisheeth Bhashya*—a person who is honoured by a king and given a medal with a replica of Laxmi, the goddess of wealth, with the right to wear it on his body, was called a *shreshthi* According to *Hindu Rajya Tantra* the honoured title of *shreshthi* was given to that chief of the governing committee of a town who was also a prominent merchant of the same town (*Dashavaikalik* by Acharya Mahaprajna, page 514)

मत्स्य की उपमा

६ : जया य थेरओ होइ समइक्कंतजोव्वणो।
मच्छोव्व गलं गिलित्ता स पच्छा परितप्पइ॥

यौवन अवस्था बीत जाने पर जो वृद्ध अवस्था में संयम छोडता है, वह गले में काँटा फँसी मछली के समान पश्चात्ताप करता है॥६॥

THE METAPHOR OF FISH

6. Past his youth when a *shraman* abandons the ascetic way during his old age, he repents like a hooked fish.

पकमग्र हस्ती की उपमा

७ : जया य कुकुडंबस्स कुतत्तीहिं विहम्मइ।
हत्थी व बंधणे बद्धो स पच्छा परितप्पइ॥

संयम से भ्रष्ट साधु को, जब कुटुम्ब की दुश्चिन्ताएँ चारों ओर से घेर लेती हैं तब वह बन्धन में बँधे हाथी के समान परिताप करता है॥७॥

THE METAPHOR OF AN ELEPHANT CAUGHT IN SWAMP

7. When the family problems overwhelm a *shraman* who has left the ascetic way he repents like a trapped elephant.

८ : पुत्तदारपरिकिण्णो मोहसंताणसंतओ।
पंकोसन्नो जहा नागो स पच्छा परितप्पइ॥

संयम भ्रष्ट साधु पुत्र और स्त्री जनों से घिरा हुआ एवं मोह-प्रवाह में बहता हुआ दलदल में फँसे हाथी के समान परिताप करता है॥८॥

8. Surrounded by his wife and sons and drifting in the stream of fondness and attachment, a *shraman* who has left the ascetic way repents like an elephant besieged in a swamp.

९ : अज्ज आहं गणी हुंतो भावियप्पा बहुस्सुओ।
जइ हं रमंतो परियाए सामण्णे जिणदेसिए॥

यदि मैं भावितात्मा और बहुश्रुत होता एवं जिनोपदेशित श्रमण-पर्याय में रमण करता, तो आज के दिन महान् गणी पद पर शोभित होता॥९॥

9. Had I been a worthy ascetic and a scholar of scriptures, I would have attained the lofty status of a *gani* (head of a large group of ascetics) today.

विशेषार्थ :

श्लोक ९ भावियप्पा–भावितात्मा–ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा अनेक प्रकार की अनित्य अशरण आदि भावनाओं से जिसकी आत्मा भावित होती है अर्थात् जिसकी भावनाओं में वैराग्य रमा हो वह भावितात्मा।

ELABORATION :

(9) ***Bhaviyappa***—a worthy soul, one who craves and endeavours for liberation, one who is filled with sincere desire to acquire right knowledge, perception and conduct; one who is filled with feelings of detachment.

संयम के सुख

१० : देवलोगसमाणो उ परियाओ महेसिणं।
रयाणं अरयाणं तु महानिरयसारिसो॥

जो महर्षि मुनि-पर्याय में रत हैं, उन्हें तो यह संयम स्वर्गलोक के समान सुखदायक प्रतीत है, किन्तु जो संयम में अरुचि रखने वाले हैं, उन्हें वह मुनि-पर्याय महान् रौरव नरक के समान दुःखदायक लगता है॥१०॥

THE BLISS OF DISCIPLINE

10. To those who are inclined to follow the ascetic way discipline is like a heavenly bliss but to those who are not so inclined discipline is like hellish misery

११ : अमरोवमं जाणिय सुक्खमुत्तमं रयाणं परियाए तहारयाणं।
निरओवमं जाणिअ दुक्खमुत्तमं रमिज्ज तम्हा परियाइं पंडिए॥

संयम में मग्न रहने वाले साधु देवों के समान उत्तम सुख का अनुभव करते हैं और संयम से विरक्त रहने वाले नरक के समान दुःख अनुभव करते हैं। इस सत्य को जानकर बुद्धिमान् साधु को संयम में सतत रमण करना चाहिए॥११॥

11. The *shram'ans* who are engrossed in discipline enjoy divine pleasures and those who dislike discipline suffer infernal miseries. Knowing this fact a wise *shraman* should always revel in discipline.

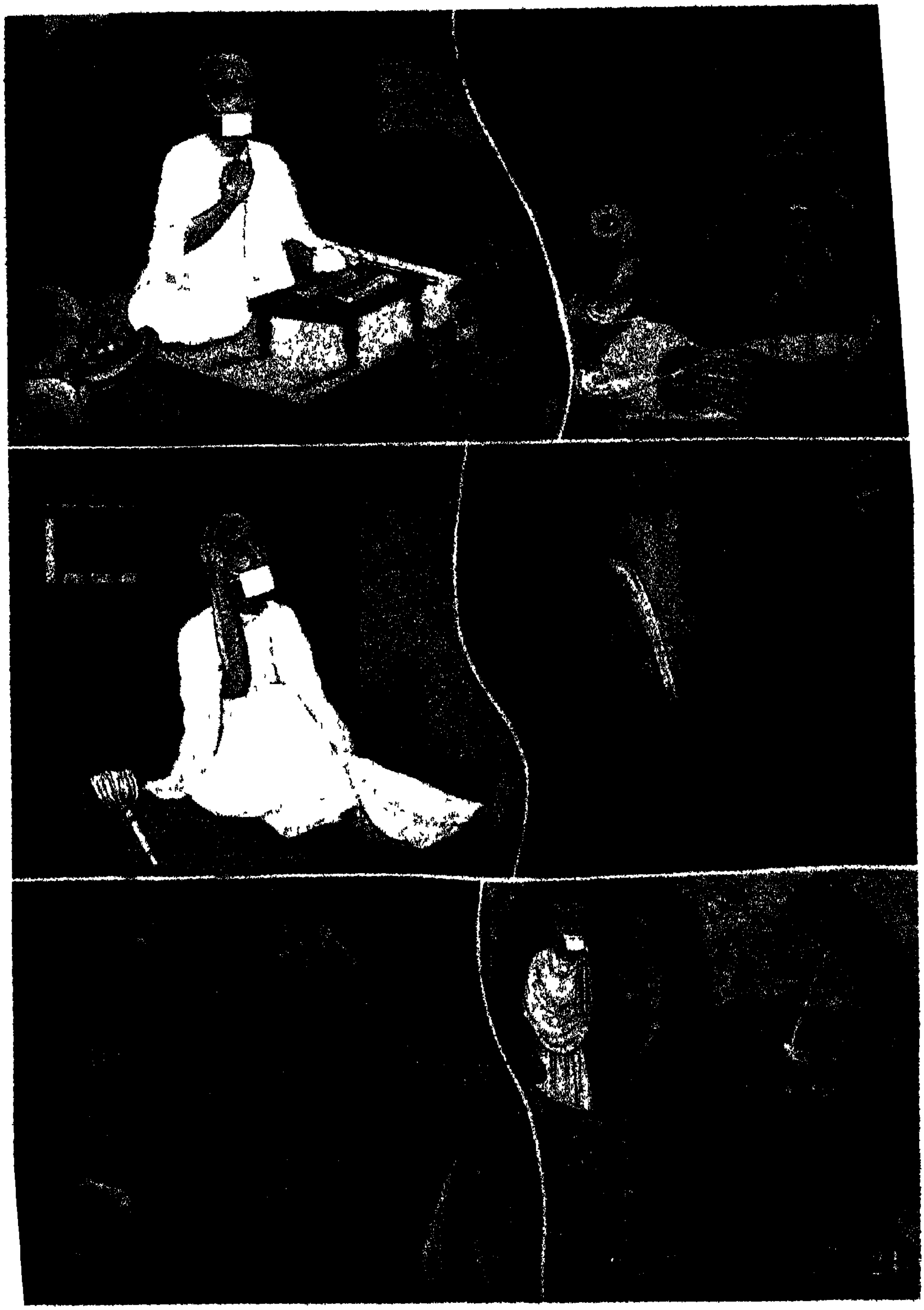
संयमभ्रष्ट की दुर्दशा

१२ : धम्माउ भट्ठं सिरिओववेयं जन्नग्गि विज्झाअमिवप्पतेयं।
हीलंति णं दुव्विहियं कुसीला दाढुद्धियं घोरविसं व नागं॥

जो भिक्षु धर्म से भ्रष्ट एवं बुझी हुई यज्ञाग्नि के समान चारित्र-तप के तेज से हीन हो जाता है, उसकी नीच मनुष्य भी निन्दा/अवहेलना करते हैं। ऐसा सयम-भ्रष्ट साधु साधारण लोगों से उसी प्रकार तिरस्कृत होता है, जिस प्रकार विष की दाढ़ें उखाड़ा हुआ घोर विषधारी सर्प॥१२॥

THE MISERY OF THE INDISCIPLINED

12. Even the lowly people ignore and criticize a *shraman* who has fallen from grace and is deprived of his aura, like



संयम में सुखी : असंयम में दुःखी

DISCIPLINE GIVES HAPPINESS : INDISCIPLINE GIVES PAIN

१. देवलोग समाणो य–जो श्रमण महर्षि अपने सयम मे स्थिर हैं, वे सयम जीवन मे निस्पृहता एव असत्य स्वतत्र रूप स्वर्ग के समान सुखो का अनुभव करते रहते हैं।

1 The great sages who are steadfast in their discipline experience divine heavenly bliss

२ महानिरय सारिसो–इसके विपरीत सयम मे जिनका मन नही रमा है, वे भोगो की इच्छा रखते हुए परवश हुए सयम साधना मे नरक के समान दु खो का अनुभव करते हुए सदा सतप्त रहते हैं।

(चूलिका १, श्लोक १०-११)

2 Those who are distracted in their discipline by desires for mundane pleasures during their practices are always tortured by hellish pain

(Chulika 1, verses 10-11)

३. धम्माओ भट्ठ–जिस सर्प की दाढ़े उखाड ली गई हो साधारण लोग भी उसकी अवहेलना करके अपमानित करते रहते है। इसी प्रकार जो श्रमण अपने सयम मे पतित या भ्रष्ट हो जाते हैं, साधारण व्यक्ति भी उनकी अवमानना करते है। जिस प्रकार यज्ञ की बुझी हुई नि स्तेज अग्नि-वेदिका पर लोग थूकते है, निरादर करते हैं, वैसे ही सयम-भ्रष्ट व्यक्ति अवहेलना का पात्र होता है।

(चूलिका १, श्लोक १२)

3 A snake without venom is ignored and humiliated, even by ordinary men In the same way, the *shraman* who becomes lax in his discipline is insulted, even by common men As people spit upon the platform with an extinguished Yajna fire, the person fallen from the pedestal of discipline is treated in the same way

(Chulika 1, verse 12)

extinguished yajna-fire. He is insulted by the common masses in the same way as a venomous snake with uprooted fangs.

विशेषार्थ :

श्लोक १२. दुव्विहियं-दुर्विहित-जिसका आचरण अथवा चारित्र स्खलित होता है वह दुर्विहित कहलाता है। समाचारी का विधिवत् पालन करने वाला साधु सुविहित और अन्यथा दुर्विहित होता है।

ELABORATION :

(12) ***Duvvihiyam***—a *shraman* with lax conduct. One who properly follows the codes of conduct is called *suvihit*.

१३ : इहेवधम्मो अयसो अकित्ती दुन्नामधिज्जं च पिहुज्जणम्मि।
चुयस्स धम्माउ अहम्मसेविणो संभिन्नवित्तस्स य हिट्ठओ गई॥

धर्म से च्युत हुआ, अधर्मसेवी एवं चारित्र का खण्डन करने वाला साधु इस लोक में अपयश का भागी होता है, अधार्मिक कहलाता है एवं साधारण मनुष्यों द्वारा निन्दित नामों से पुकारा जाता है। साथ ही परलोक में नरक आदि नीच गतियों में दुःख भोगता है॥१३॥

13. A *shraman* who has fallen from grace, who follows the wrong path and who has broken the codes of conduct, embraces infamy and is called irreligious and other such bad names by people during this life. Being born as infernal being, he also suffers miseries during the next life.

विशेषार्थ :

श्लोक १३. संभिन्नवित्तस्स-संभिन्नवृत्तस्स-संभिन्न का अर्थ है खण्डित और वृत्त का अर्थ है शील या चारित्र। खण्डित चारित्र वाला। *-(खण्डित चारित्रस्य-हारिभद्रीय टीका)*

ELABORATION :

(13) ***Sambhinnavittassa***—*sambhinna* means shattered and *Vritta* means conduct; one who has broken the codes of conduct.

—*(commentary by Haribhadra Suri)*

१४ : भुंजित्तु भोगाइं पसज्झ चेयसा तहाविहं कट्टु असंजमं बहुं।
गइं च गच्छे अणहिज्झियं दुहं बोही अ से नो सुलभा पुणो पुणो॥

वह संयम से भ्रष्ट साधु आवेगयुक्त चित्त से भोगों को भोगकर एवं तथाविध असंयम का सेवन करके आयुष्य पूर्ण कर जव अनिष्ट एवं दुःखद नरकादि नीच गतियों में जाता है फिर वहाँ उसे सहज ही धर्मबोध की प्राप्ति नहीं होती है॥१४॥

14. When such *shraman*, in his agitated state of mind, indulges in mundane pleasures, leads an indisciplined life, and consequently reincarnates in lowly life forms, it is not easy for him to get enlightened.

विशेषार्थ :

श्लोक १४ पसज्झ चेयसा–आवेगपूर्ण चित्त से–चूर्णिकार ने इसका अर्थ किया है–विषय-भोगो की प्राप्ति या उनके सरक्षण के लिए हिसा असत्य आदि भावावेश पूर्ण मनःस्थिति वाला–प्रसह्यचेता कहलाता है।

ELABORATION :

(14) *Pasajjhe cheyasa*—in an agitated state of mind, according to the commentary (*Churni*) this state is caused by the rise of passions and violent attitude for the purpose of acquiring the sources and means of mundane pleasure and protecting them.

यह दुःख भी अल्पकालिक है

१५ : इमस्स ता नेरइयस्स जंतुणो दुहोवणीयस्स किलेसवत्तिणो।
पलिओवमं झिज्जइ सागरोवमं किमंग पुण मज्झ इमं मणोदुहं? ॥

(संकट आ पडने पर संयम से डिगने वाले साधु को यह विचार करना चाहिए कि) असह्य दुःखों और क्लेशों से युक्त नारकीय जीवों की पल्योपम एवं सागरोपम जैसी दीर्घ आयु भी भोगकर समाप्त हो जाती है तो फिर मेरा यह चारित्र विषयक मानसिक दुःख तो कितने समय का है॥१५॥

THIS SORROW IS SHORT-PERIOD

15. Such *shraman* should resort to thinking—When the extremely painful and miserable, *palyopam* and *sagaropam* (hypothetical measures of superlative time span) long, life of sufferance of hellish beings comes to an end, my mental sufferance related to lax conduct is insignificant.

१६ : न मे चिरं दुक्खमिणं भविस्सई असासया भोगपिवास जंतुणो।
न चे सरीरेण इमेणऽविस्सई अविस्सई जीविअपज्जवेण मे॥

यह मेरा दुःख अधिक समय तक नहीं ठहर सकेगा, क्योंकि जीव की भोग-पिपासा अशाश्वत है। यदि यह शरीर के रहते नष्ट नहीं हुई तो शरीर की समाप्ति के समय तो अवश्य ही नष्ट हो जायेगी॥१६॥

16. It will not last long because the desire for mundane pleasures is not eternal. If at all it does not end before, it will certainly end with death

१७ : जस्सेवमप्पा उ हविज्ज निच्छिओ चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं।
तं तारिसं नो पयलेंति इंदिया उविंतिवाया व सुदंसणं गिरिं॥

जिस मुनि की आत्मा इस प्रकार दृढ़ होती है, उसका ऐसा निश्चय होता है कि अवसर पड़ने पर शरीर का तो सहर्ष परित्याग कर देना चाहिए, किन्तु धर्मशासन को नहीं छोड़ना चाहिए। जिस प्रकार प्रलयकाल की महावायु पर्वतराज सुमेरु को नहीं हिला सकती उसी प्रकार चंचल इन्द्रियाँ भी ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञ मुनि को विचलित नहीं कर सकतीं॥१७॥

17. An ascetic who strengthens his mind thus, resolves—under such grave situation it is better to embrace death happily rather than to abandon the religious discipline. As the doomsday storm cannot move the great Sumeru mountain, so the playful senses cannot move such a resolute *shraman*.

१८ : इच्चेव संपस्सिअ बुद्धिमं नरो आयं उवायं विविहं विआणिया।
काएण वाया अदु माणसेणं तिगुत्तिगुत्तो जिणवयणमहिट्ठिजासि॥
त्ति बेमि।

बुद्धिमान् मनुष्य को इस प्रकार सम्यक् विचार करके, ज्ञानादि लाभ के साधनों को जानना चाहिए तथा मन, वचन और काय के योग से त्रिविध-गुप्त होकर, जिन वचनों का यथावत् पालन करना चाहिए।॥१८॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

18. A wise man should take to this right track of thought and should find the means of benefit (like knowledge). He should then practice restraint of mind, speech and body, and follow the dictates of the Jina .. .. So I say

॥ प्रथम चूलिका समाप्त ॥

END OF FIRST ADDENDUM

द्वितीय चूलिका : विविक्त चर्या

प्राथमिक

प्रथम रतिवाक्या चूलिका मे श्रमण को अपनी श्रमणचर्या में स्थिर रहने की प्रेरणा दी गई है। इसके बाद उसकी श्रमणचर्या को निर्मल और निर्विघ्न रखने के लिए इस चूलिका में उसकी चर्या, गुण एवं नियमों का निरूपण किया गया है। इसलिए इसका नाम **विविक्त चर्या** है। इसमे बताया गया है—नियतवास न करना, एकान्तवास करना व सामुदानिक भिक्षा लेना—यह चर्या है। पाँच महाव्रत—मूलगुण हैं, पौरुषी आदि प्रत्याख्यान उत्तरगुण हैं। स्वाध्याय, कायोत्सर्ग आदि नियम है। इस प्रकार चर्या, गुण तथा नियमो—तीनो में जागरूक होकर शुद्ध पालन करना, सूत्र मे बताई हुई विधि और मार्ग का अनुसरण करना—यह इस चूलिका का मुख्य प्रतिपाद्य है।

इस चूलिका मे लोक-प्रवाह की अन्ध प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए कहा है, जो प्रतिस्रोत मे—प्रवाह के विरुद्ध अपने विवेकानुसार चलता है, वही श्रेष्ठ साधक है।

इस अध्ययन के अन्त में सम्पूर्ण सूत्र के उपदेश का उपसंहार करते हुए कहा है—अप्पा खलु सयय रक्खियव्वो—अपनी आत्मा की सदा रक्षा करनी चाहिए। यही उपदेश और आचार विधि का सार है। क्योंकि असुरक्षित आत्मा संसार के जन्म-मरण पथ में भटकती हैं और सुरक्षित आत्मा सब दु:खों से मुक्त हो जाती हैं। बस यही इस सम्पूर्ण शास्त्र का नवनीत है।

SECOND ADDENDUM : PROPER ROUTINE

INTRODUCTION

In the first addendum the *shraman* is advised to be steadfast in the ascetic routine and conduct Now in order to maintain the purity and smoothness of the ascetic conduct this addendum lists the routine, the virtues and the codes That is why it is titled Proper Conduct It is stated here that the ascetic routine is not to stay at one place but to live in solitude and to collect alms in prescribed manner The five vows are the basic virtues and critical review, etc. are auxiliary virtues Self-study, meditation, etc. are the codes Thus, to mould ones life according to these three and follow the path shown by the scriptures is the subject of this addendum

In this addendum the normal social flow of life has been criticized and it is emphasized that the true practicer goes against the current and follows his own reason and sagacity

At the end of this addendum the lessons of this scripture have been summed up in one sentence—One should always protect his soul This is the essence of preaching and the codes of conduct because an unprotected soul is caught in the cycles of life and death and the protected soul is liberated from all sorrows

बिइया चूलिका : विवित्त चरिया
द्वितीय चूलिका : विविक्त चर्या

SECOND ADDENDUM : VIVITTA CHARIYA
PROPER ROUTINE

अनुस्रोत : प्रतिस्रोत

१ : चूलियं तु पवक्खामि सुयं केवलिभासिअं।
जं सुणित्तु सपुन्नाणं धम्मे उप्पज्जए मई॥

मै उस चूलिका का प्रवचन करता हूँ जो सुनी हुई है, केवलि भाषित है। (अथवा श्रुत-केवलि भाषित है) जिसके श्रवण से पुण्यशाली जीवों की धर्म में दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न होती है॥१॥

WITH AND AGAINST THE FLOW

1. Now I am narrating the addendum I have listened from the Kevali (or told by the great scholar of scriptures). Listening to this inspires deep faith for religion in the minds of pious beings

२ : अणुसोअपट्ठिए बहुजणम्मि पडिसोअलद्धलक्खेणं।
पडिसोअमेव अप्पा दायव्वो होउकामेणं॥

संसार के बहुत से प्राणी नदी के जल-प्रवाह में पडे हुए काष्ठ की तरह विषयभोगरूपी नदी के प्रवाह में संसार-समुद्र की ओर बहे जा रहे हैं। किन्तु जिनका लक्ष्य विषयप्रवाह से विपरीत संयम की साधना में लग गया है और जो ससार से मुक्त होने की इच्छा रखते हैं उनका कर्त्तव्य है कि वे अपनी आत्मा को सदा विषयों के प्रवाह से प्रतिकूल लेकर चले॥२॥

2. Majority of beings are drifting like logs in the river of mundane pleasures and heading towards the ocean of mundane life (cycles of rebirth). But those who have commenced spiritual practices with liberation as their goal should move against the current of mundane pleasures.

विशेषार्थ :

श्लोक २. अणुसोयपट्ठिए–जल का प्रवाह जब ढलान या नीचे प्रदेश की ओर होता है तो उसमें गिरने वाली वस्तुएँ भी प्रवाह के साथ बहती जाती हैं–इसे अनुस्रोत प्रस्थित कहा जाता है। प्रतिस्रोत है बहाव के विपरीत दिशा में चलना। आगमिक संदर्भ मे इन्द्रिय-विषयों के प्रवाह में बहना अनुस्रत है। इन्द्रिय-विषयों से निवृत्त होना प्रतिस्रोत है। सद्दादि विसय पडिलोमा प्रवृत्ती दुक्करा–शब्दादि विषयो के प्रतिलोम प्रवृत्ति करना दुष्कर है। –*(अगस्त्यसिंह चूर्णि)*

ELABORATION :

(2) ***Anusoyapatthiye***—moving with the current; when water flows from a higher to a lower level every floating thing drifts with the current Going in the opposite direction with an effort is moving against the current With reference to the spiritual endeavour, indulgence in mundane pleasures or activities is drifting with the current and detachment from these is moving against current, which, indeed, is difficult (*Agastya Simha Churni*)

३ : अणुसोय सुहो लोगो पडिसोओ आसवो सुविहिआणं।
अणुसोओ संसारो पडिसोओ तस्स उत्तारो॥

यह संसार अनुस्रोत (प्रवाह के साथ चलने वाला) के समान है और सुविहित साधुओं का दीक्षारूप आयाम प्रतिस्रोत (बहाव के विपरीत गति) के समान है, क्योंकि इसी से ससार-समुद्र पार किया जाता है। इसीलिए सामान्य संसारी जीवों को प्रतिस्रोत (संयम या जन्म-मरण के पार पहुँचने का मार्ग) कठिन प्रतीत होता है, वे तो अनुस्रोत–इन्द्रियों के अनुकूल चलने में ही सुख मानते हैं॥३॥

3. In this world the mundane way is to move with the current and the disciplined ascetic way is to move against the

current because that is the way to get liberated. The common people find it difficult to move against the current (or on the path of liberation), they are happy moving with the current of mundane pleasures.

चर्या, गुण एवं नियम

४ : तम्हा आयारपरक्कमेण संवरसमाहिबहुलेणं।
चरिया गुणा य नियमा य हुंति साहूण दट्ठव्वा॥

इसलिए आचार क्रिया में पराक्रम करने वाले जो मुनि हैं एवं संवर में समाधि रखने वाले हैं, उन्हें अपने चर्या, गुण और नियम आदि का ध्यान रखना चाहिए॥४॥

ROUTINE, VIRTUES AND RULES

4. Therefore, the *shramans* strictly following the ascetic conduct and engrossed in practice of *samvar* (stopping the inflow of *karmas*) should be aware of the routine, virtues and rules of the ascetic way.

विशेषार्थ

श्लोक ४. चरिया–मूल व उत्तरगुण रूप चारित्र।

गुणा–चारित्र की रक्षा के लिए जो भावनाएँ हैं उन्हे गुण कहते हैं।

नियमा–नियमा'–प्रतिमा आदि अभिग्रह नियम कहलाते हैं। *–(जिनभद्र चूर्णि)*

ELABORATION :

(4) ***Chariya***—the basic and auxiliary attributes of conduct.

Guna—the attitudes that help proper following of conduct

Niyama—the rules and resolves related to various austerities

—(Jinbhadra Churni)

चर्या का स्वरूप

५ : अणिएयवासो समुआणचरिया अन्नायउंछं पइरिक्कया य।
अप्पोवही कलहविवज्जणा य विहारचरिया इसिणं पसत्था॥

एक ही स्थान पर नहीं रहना अथवा गृहस्थ के घर में नहीं रहना, सामुदानी भिक्षा करना, अज्ञात-कुल से थोड़ा-थोड़ा आवश्यक आहारादि लेना, एकान्त स्थान में निवास करना, उपकरण एवं उपधि अल्पमात्र में रखना और कलह का त्याग करना ऐसी विहारचर्या ऋषियों के लिए प्रशस्त है, प्रशंसनीय है॥५॥

THE ROUTINE

5. To avoid living at one place or with a householder, to collect alms in the prescribed manner—a little each from numerous unknown families, to live in solitude, to keep necessary equipment in limited numbers, and to avoid quarrels; such is the perfect and commendable routine of the itinerant ascetic.

विशेषार्थ :

श्लोक ५. अप्पोवही–अल्प उपधि–इसके दो भेद हैं–द्रव्य और भाव। वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों की अल्पता, द्रव्य-अल्प उपधि है तथा क्रोध आदि कषायों की कमी करना भाव से अल्प उपधि है।

विहार चरिया–इसके भी दो अर्थ मिलते हैं–पदयात्रा रूप विहार को विहार चर्या कहा है, तो दूसरा अर्थ है भिक्षु की समस्त जीवन-चर्या समस्त यतिक्रिया करणम्।

ELABORATION :

(5) ***Appovahi***—limited equipment, this has two classes—one is physical (equipment like clothing, utensils etc.) and the other is mental (limiting of passions)

Vihar chariya—this means the routine during the ascetic wanderings as well as the life long routine of an ascetic

६ : आइण्णओ माणविवज्जणा य ओसन्नदिट्ठाहडभत्तपाणे।
संसट्ठकप्पेण चरिज्ज भिक्खू तज्जायसंसट्ठ जई जएज्जा॥

आकीर्ण और अवमान आहार का परित्याग और दृष्ट स्थान से उपयोगपूर्वक शुद्ध भिक्षा ग्रहण करना ही भिक्षु के लिए श्रेष्ठ है। उसे संसृष्ट हस्त व पात्रादि से

ही भिक्षा लेना चाहिए तथा दाता जो पदार्थ दे रहा है उस देय पदार्थ से संसृष्ट हाथ और पात्र से ही भिक्षा लेने का यत्न करना चाहिए॥६॥

6. To avoid *aakeerna* and *avaman* food and to properly accept pure food from a nearby house is best for an ascetic. He should try to get food by the serving spoon specifically used for a particular preparation or by hands already in contact with a particular preparation.

विशेषार्थ

श्लोक ६. आइण्ण–आकीर्ण–वह आहार जो भीड भरे स्थान से प्राप्त हो।

ओमाण–अवमान भोज। वह आहार जो ऐसे स्थान से लिया जाय जहाँ गणना से अधिक भोजन करने वालो की उपस्थिति से खाद्य पदार्थ के कम होने की संभावना हो।

ओसन्नदिट्ठा–उत्सन्नदृष्ट–दृष्ट-स्थान मे भोजन लेना। तीन घरो के अन्तर से लाया हुआ भोजन लेने की मर्यादा है। उससे आगे का इस श्रेणी मे नही आता।

समट्ठकप्पेण–ससृष्टकल्प–लिप्त हाथ या बर्तन से भोजन लेना संसृष्टकल्प कहलाता है। सचित्त वस्तु से लिप्त हाथ या पात्र से भिक्षा लेना मुनि के लिए वर्जित है। अतः वह तज्जात-समृष्ट होना चाहिए–अर्थात् जो वस्तु दाता दे रहा है उसी से संसृष्ट लिप्त हाथ से लेवे, अन्य सचित्त वस्तु से संसृष्ट हाथ हो तो न लेवे।

ELABORATION :

(6) *Aainna (aakeerna)*—the food available at a crowded place.

Omaan (avaman)—the food available at a place where there are more seekers than the available quantity of food and there is a chance of shortfall

Osannadittha—a visible place or a nearby place The rule is to seek food from up to three houses next to the place of stay; beyond that is prohibited.

Samsatthakappena—to accept alms given by soiled hands or utensils. It is prohibited for an ascetic to accept alms if given by hands or utensils soiled with *sachit* things. So he should accept

only if it is given by hands or utensils that are soiled with the thing being given and not otherwise.

७ : अमज्जमंसासि अमच्छरीआ अभिक्खणं निव्विगइंगया य।
अभिक्खणं काउस्सग्गकारी सज्झायजोगे पयओ हविज्जा॥

साधु सदा मद्य और माँस भोजन से दूर रहे, किसी के साथ मत्सरभाव-ईर्ष्या न करे, बारम्बार विगय आदि पौष्टिक भोजन का सेवन न करे, पुनः-पुनः कायोत्सर्ग करता रहे तथा स्वाध्याय-योग में प्रयत्नशील रहे॥७॥

7. An ascetic should refrain from consuming meat and alcohol, he should not be jealous, he should always eat only that food which is not faulty, he should regularly do meditation and self-study.

विशेषार्थ :

श्लोक ७ अभिक्खणं निव्विगइं-बार-बार निर्विकृतिक भोजन करने वाला। इसके स्पष्टीकरण में चूर्णिकार का कथन है-जिस प्रकार मद्य-मॉस का सर्वथा निषेध है, वैसे दूध-दही, घृत आदि विकृतियो का एकान्त निषेध नही है, किन्तु प्रतिदिन विगय सेवन करना भी उपयुक्त नही है। अत: मुनि बार-बार विकृतिरहित रूखा भोजन लेने वाले होते है। आचार्यश्री श्री आत्माराम जी महराज के अनुसार भी प्रतिदिन पौष्टिक पदार्थो का सेवन करने से मादकता बढ़ती है।

सज्झायजोगे-स्वाध्याय योग-स्वाध्याय के हेतु निर्दिष्ट आयंबिल आदि तप की विशेष विधि। इसे योगवहन कहते हैं। आचार्य आत्माराम जी महाराज के अनुसार वाचना-पृच्छना आदि को **स्वाध्याय योग** कहा गया है।

ELABORATION :

(7) *Abhikkhanam nivvigaim*—to always eat food that is not faulty According to the commentary milk, curd, butter and other such nutritious things are not absolutely prohibited like meat and alcohol, but such things should not be eaten frequently. That is the reason that stress has been put on eating simple food. According to Acharyashri Atmaram ji M rich food leads to an agitated state of mind and also physical lethargy

Sajjhayajoge—the ritual austerities connected with study, such as *ayambil*; according to Acharyashri Atmaram ji M it means the five pronged study that includes reading, inquiry, etc.

ममत्व वर्जन

८ : न पडिन्नविज्जा सयणासणाइं सिज्जं निसिज्जं तह भत्तपाणं।
गामे कुले वा नगरे व देसे ममत्तभावं न कहिं पि कुज्जा॥

विहार करते समय गृहस्थ से शयन, आसन, शय्या, स्वाध्याय-भूमि एवं अन्न-पानी के विषय में ऐसी प्रतिज्ञा नहीं करानी चाहिए कि "जब मैं वापस लौट कर आऊँ तब ये पदार्थ मुझे ही देना और किसी को नहीं।" क्योंकि साधु को ग्राम, नगर, कुल और देश आदि किसी भी वस्तु पर ममत्वभाव करना उचित नहीं है॥८॥

NEGATING AFFINITY

8. At the time of departure from a place a *shraman* should not seek promise about room, mattress, bed, place of study and food, telling him—"When I come back please give these things only to me and none else." It is not proper for an ascetic to have affinity for a village, city, clan or state.

९ : गिहिणो वेआवडियं न कुज्जा अभिवायणं वंदण पूअणं च।
असंकिलिट्ठेहिं समं वसिज्जा मुणी चरित्तस्स जओ न हाणी॥

साधु गृहस्थों का वैयावृत्य न करे, अभिवादन, वन्दन और पूजन आदि नहीं करे तथा संक्लेशरहित साधुओं के संसर्ग में रहे जिससे चारित्र की हानि न हो॥९॥

9. A *shraman* should not serve the householders. He should not even greet, salute or worship them. He should ensure to be in the company of ascetics who are not plagued by such weakness so that he himself does not become lax in discipline.

अनासक्त विहार

१० : न या लभेज्जा निउणं सहायं गुणाहिअं वा गुणओ समं वा।
इक्को वि पावाइं विवज्जयंतो विहरिज्ज कामेसु असज्जमाणो॥

कदाचित् अपने से गुणों में अधिक या समान एवं संयम-क्रिया में निपुण कोई साथी न मिले तो मुनि पापकर्मों का परिहार करता हुआ एव काम-भोगों में अनासक्त रहता हुआ अकेला ही विचरे (किन्तु शिथिलाचारी साधुओं के संग न रहे)॥१०॥

DETACHED MOVEMENT

10. If it so happens that he does not get the company of an ascetic who is better than him or equal in virtues and steadfast in discipline, he should move alone avoiding indulgence in mundane pleasures (but never be in the company of *shramans* who are lax in conduct)

११ : संवच्छरं वावि परं पमाणं बीयं च वासं न तहिं वसेज्जा।
सुत्तस्स मग्गेण चरिज्ज भिक्खू सुत्तस्स अत्थो जह आणवेइ॥

साधु के लिए वर्षा ऋतु में एक स्थान पर चार महीने और अन्य ऋतुओं में एक महीना ठहरने का उत्कृष्ट प्रमाण वताया गया है। अतः मुनि जिस गॉव मे काल के इस उत्कृष्ट प्रमाण तक रह चुका हो तो उसी स्थान पर दूसरा चातुर्मास अथवा मास-कल्प नहीं करना चाहिए। क्योंकि सूत्र के उत्सर्ग और अपवाद रूप अर्थ की जिस प्रकार से आज्ञा हो, उसी प्रकार सूत्रोक्त मार्ग पर चलना चाहिए॥११॥

11. It is ordained that the maximum period of stay for a *shraman* at a place is four months during the monsoon season and one month otherwise. Therefore, an ascetic who has completed his maximum stay at one place should not extend it for another such maximum period of stay. In other words an ascetic should strictly follow the text and the meaning of the scriptures in normal as well as exceptional situation.

विशेषार्थ :

श्लोक ११. संवच्छर वावि–साधु की बारह महीने की विहारचर्या को दो प्रमाणों में बाँटा है–एक वर्षाकाल और दूसरा ऋतुबद्ध काल। आचारांग एवं बृहत्कल्प आदि में बताया है–साधु वर्षाकाल में चार मास तथा शेष काल में एक मास एक स्थान पर रह सकता है। यह उसका परम प्रमाण है। जहाँ उत्कृष्ट काल का वास किया हो वहाँ उससे दुगुना काल दूसरी जगह बिताकर फिर वहाँ रह सकता है। जैसे एक चातुर्मास करने के बाद दो अथवा तीन वर्षावास अन्यत्र बिताकर फिर उस स्थान पर वर्षावास तथा पूर्ण एक मास रहने के पश्चात् दो मास अन्यत्र बिताकर फिर वहाँ एक मास बिताया जा सकता है। **–(देखें आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज दशवै., पृष्ठ ६७४)**

ELABORATION :

(11) *Samvachharam vavi*—the calendar of the itinerant way of an ascetic has been divided in two parts—the monsoon period and the remaining period In scriptures like *Acharang* and *Vrihatkalp* it is stated—The maximum period of stay of a *shraman* at a place is four months during the monsoon season and one month during other seasons. He is allowed to return to that place for another maximum-stay (four months or a month) only after he has completed two or more maximum-stays of the same or higher duration at other places (*Dashavaikalik Sutra* by Acharyashri Atmaram ji M., page 674)

आत्म-सप्रेक्षा

१२ : जो पुव्वरत्तावररत्तकाले संपेहए अप्पगमप्पएणं।
किं मे कडं किं च मे किच्च सेसं किं सक्कणिज्जं न समायरामि॥

१३ : किं मे परो पासइ किं च अप्पा किं वाऽहं खलियं न विवज्जयामि।
इच्चेव सम्मं अणुपासमाणो अणागयं नो पडिबंध कुज्जा॥

जो साधु रात्रि के पहले और पिछले प्रहर में अपनी आत्मा को अपने आप सम्यक् प्रकार से देखता है, विचार करता है कि मैंने क्या किया है? मेरे लिए क्या करना शेष है? वह कौन-सा कार्य है जिसे करने की शक्ति होते हुए भी प्रमादवश मैं नहीं कर रहा हूँ॥१२॥

क्या मेरे प्रमादाचरण को कोई दूसरा देखता है अथवा अपनी भूलों को मैं स्वयं ही देख लेता हूँ। वह कौन-सी स्खलना है जिसे मैं नहीं छोड़ पा रहा हूँ? इस प्रकार सम्यक्तया आत्म-निरीक्षण करता हुआ मुनि भविष्यकाल में किसी प्रकार का दोषात्मक प्रतिबन्ध न करे, असंयम में न बँधे॥१३॥

CRITICAL REVIEW

12, 13. During the first and the last quarter of the night an ascetic should review his thoughts and activities of the day and ask himself—What did I do? What did I not do? What was it that I did not do out of lethargy in spite of having the energy and capacity to do?

Am I able to recognize my faults on my own or others have to point them out to me? What is the weakness that I am not able to ride over? With the help of such critical review a *shraman* should avoid any chances of falling into the trap of indiscipline in the future.

१४ : जत्थेव पासे कई दुप्पउत्तं काएण वाया अदु माणसेणं।
तत्थेव धीरो पडिसाहरिज्जा आइन्नओ खिप्पमिवक्खलीणं॥

अपने आपको जहाँ कहीं जब मन से, वचन से एवं काय से स्खलित होता हुआ देखे, तब बुद्धिमान् धीर साधु को तत्काल ही सँभल जाना चाहिए। जैसे कि श्रेष्ठ जाति का शिक्षित अश्व लगाम खींचते ही सँभल जाता है॥१४॥

14. Whenever and wherever he finds himself stumbling on the path of discipline, in terms of activities of mind, speech, and body, a wise *shraman* should at once regain his balance in the same way as a trained horse of good breed regains its balance when the reins are drawn.

१५ : जस्सेरिसा जोग जिइंदिअस्स धिइमओ सप्पुरिस्स निच्चं।
तमाहु लोए पडिबुद्धजीवी सो जीवइ संजमजीविएणं॥

संसार में उस सत्पुरुष को प्रतिबुद्धजीवी कहते हैं, जिसने इन्द्रियों को जीत लिया, जिसके हृदय में संयम के प्रति धैर्य है, जिसके तीनों योग सदैव वश में रहते हैं, क्योंकि वही संसार में संयमपूर्ण जीवन जीता है॥१५॥

15. Who has conquered his senses, who is steadfast in discipline and who has control over the three means of activities (mind, speech and body), only that great man is called enlightened because only he leads a perfectly disciplined life in this world.

१६ : अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खि जाइपहं उवेइ सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ॥
त्ति बेमि।

सब इन्द्रियों को सुसमाहित करके आत्मा की सतत रक्षा करना चाहिए। क्योंकि अरक्षित आत्मा जातिपथ–जन्म-मरण को प्राप्त होती है और सुरक्षित आत्मा सब दुःखों से मुक्त हो जाती है॥१६॥

ऐसा मैं कहता हूँ।

16. The soul should always be protected by properly disciplining the senses An unprotected soul is caught in the cycles of life and death and the protected soul is liberated from all sorrows. . . . . So I say.

विशेषार्थ :

श्लोक १६. अप्पा खलु सयय रक्खियव्वो–आत्मा की सदा रक्षा करनी चाहिए–यहाँ प्रश्न होता है आत्मा तो अमर है, फिर उसकी रक्षा करने का क्या मतलब है? इसका उत्तर दिया है चूर्णिकार ने–सो जीवइ संजय जीविएणं–श्रमण संयम से जीता है। सयम आत्मा की रक्षा करना ही उसकी आत्म-रक्षा है। वह रक्षा कैसे हो, इसी का उपाय प्रस्तुत गाथा में बताया है। **सव्विंदिएहिं सुसमाहिए**–इन्द्रियों की विषय-मुंखी प्रवृत्ति को रोककर और संयम में स्थिर करके वह अपने संयम-जीवन की रक्षा करे।

एक प्रकार से सम्पूर्ण दशवैकालिकसूत्र का यह उपसंहार वाक्य है कि अपने संयम की रक्षा करने वाला सब दुःखो से मुक्त हो जाता है। यही धर्माचरण का अन्तिम फल है।

ELABORATION :

(16) As soul is immortal and indestructible, this statement seems to be contradictory However, as this text is about the ascetic way the statement should be viewed from that angle only. The ascetic way is the path of discipline. For an ascetic discipline is life or soul. Thus, for him protecting the soul means protecting discipline.

This last verse is the one sentence theme of this book—One who protects his discipline is liberated from all sorrows This is the ultimate fruit of right conduct or religious conduct

॥ विविक्तचर्या द्वितीय चूलिका समाप्त ॥

END OF SECOND ADDENDUM

॥ श्री दशवैकालिक सूत्र समाप्त ॥

END OF SHRI DASHAVAIKALIK SUTRA

परिशिष्ट - १
APPENDIX - I

गाथाओं की अनुक्रमणिका
ALPHABETICAL LIST OF VERSES

(मात्र प्रथम चरण)
(ONLY THE FIRST QUARTER)

जिणवयणरए अतिंतिणे	अ ९/४/५	तओ कारणमुप्पण्णे	अ ५/२/३
जुवं गवित्ति णं बूआ	अ ७/२५	तणरुक्खं न छिंदिज्जा	अ ८/१०
जे अ चण्डे मिए थद्धे	अ ९/२/३	तत्तोवि से चइत्ताण	अ ५/२/५०
जे आयिरिअ उवज्झायाण	अ ९/२/१२	तत्थ से चिट्ठमाणस्स	अ. ५/१/२७
जे आवि चण्डे मइइड्ढिगारवे	अ ९/२/२३	तत्थ से भुंजमाणस्स	अ. ५/१/८४
जे आवि नागं डहरंति नच्चा	अ ९/१/४	तत्थिम पढमं ठाणं	अ ६/९
जे आवि मंदत्ति गुरुं विइत्ता	अ ९/१/२	तत्थेव पडिलेहिज्जा	अ ५/१/२५
जेण वर्ध वहं घोरं	अ ९/२/१४	तमइक्कमित्तु न पविसे	अ ५/२/११
जे न वदे न से कुप्पे	अ ५/२/३२	तम्हा असणपाणाइ	अ ६/५०
जे नियागं ममायंति	अ ६/४९	तम्हा आयारपरक्कमेण	चू २/४
जे माणिआ सययं माणयंति	अ ९/३/१३	तम्हा एअं विआणित्ता	अ ६/२९
जे य कते पिए भोए	अ २/३	तम्हा एअ विआणित्ता	अ ६/३६
जोग च समणधम्ममि	अ ८/४३	तम्हा एअं विआणित्ता	अ ६/४०
जो जीवे वि न याणेइ	अ ४/१२	तम्हा एअ विआणित्ता	अ ६/४३
जो जीवे वि वियाणेइ	अ ४/१३	तम्हा एअ विआणित्ता	अ ६/४६
जो पव्वय सिरसा भित्तुमिच्छे	अ ९/१/८	तम्हा एअ वियाणित्ता	अ ६/३२
जो पावगं जलिअमवक्कमिज्जा	अ ९/१/६	तम्हा एय विआणित्ता	अ ५/१/११
जो पुव्वरत्तावररत्तकाले	चू २/१२	तम्हा गच्छामो वक्खामो	अ. ७/६
जो सहइ हु गामकटए	अ १०/११	तम्हा तेण न गच्छिज्जा	अ. ५/१/६
जं जाणेज्ज चिराधोअं	अ ५/१/७६	तम्हा ते न सिणायंति	अ ६/६३
ज पि वत्थ व पाय वा	अ ६/२०	तरुणगं वा पवाल	अ ५/२/२१
जं पि वत्थ व पाय वा	अ ६/३९	तरुणिअ वा छिवाडि	अ. ५/२/२२
जं भवे भत्तपाणं तु	अ ५/१/४४	तवतेणे वयतेणे	अ ५/२/४८
ण तेण भिक्खू गच्छेज्जा	अ ५/१/६६	तवोगुण पहाणस्स	अ ४/२७
ण पडिन्नविज्जा सयणासणाइ	चू २/८	तव कुव्वइ मेहावी	अ ५/२/४४
णमुक्कारेण पारित्ता	अ ५/१/९३	तव चिमं संजमजोगं च	अ ८/६२
ण या लभेज्जा निउण सहायं	चू २/१०	तसकाय न हिंसंति	अ ६/४४
णीअदुवारं तमस	अ ५/१/२०	तसकायं विहिंसंतो	अ ६/४५

●●

दशवैकालिक के सुभाषित
SELECTED APHORISMS FROM DASHAVAIKALIK SUTRA

१. धम्मो मंगलमुक्किट्ठं; अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥ १/१

धर्म श्रेष्ठ मंगल है। अहिंसा, संयम और तप–धर्म के तीन रूप हैं। जिसका मन (विश्वास) धर्म मे स्थिर है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

Dharma is the best among propitious things. The attributes of *dharma* are *ahimsa*, discipline and austerities (*tap*). Even gods (and emperors, kings, etc.) salute him who is ever absorbed in *dharma*. 1/1

२. विहंगमा व पुप्फेसु दाणभत्तेसणे रया। १/३

श्रमण–भिक्षु गृहस्थ से उसी प्रकार दानस्वरूप भिक्षा आदि ले, जिस प्रकार कि भ्रमर पुष्पो से रस लेता है।

The *shramans* should seek and gather faultless food from numerous houses exactly as the bumble-bees gather pollen from flowers. 1/3

३. वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ। १/४

हम जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की इस प्रकार पूर्ति करे कि किसी को कुछ कष्ट न हो।

We should collect alms in a manner that causes no harm or pain to any living being. 1/4

४. महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया। १/५

आत्मद्रष्टा साधक मधुकर के समान होते हैं, वे कहीं किसी एक व्यक्ति या वस्तु पर प्रतिबद्ध नहीं होते। जहाँ रस (गुण) मिलता है, वहीं से ग्रहण कर लेते हैं।

The self seeking ascetics are like bumble-bees. They are not dependent on one particular person or a thing. They collect food (virtues) from wherever it is available. 1/5

५. कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए। २/१

वह साधना कैसे कर पाएगा, जोकि अपनी कामनाओं–इच्छाओं को रोक नहीं पाता?

How can a person, unable to control his desires, indulge in ascetic practices? 2/1

६. वत्थ गंधमलंकारं इत्थीओ सयणाणि य।
अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ॥ २/२

जो वस्त्र-गंध-आभूषण स्त्रियो व शयनासन आदि भोग्य पदार्थों का पराधीनता के कारण उपभोग नहीं कर पाते, उन्हें त्यागी नहीं कहा जा सकता।

A person who is unable to enjoy things like clothing, perfumes, ornaments, a woman, a seat, a bed, etc. for reasons beyond his control is not a renouncer 2/2

७. जे य कंते पिए भोए, लद्धे वि पिट्ठिकुव्वइ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइ त्ति वुच्चइ॥ २/३

जो मनोहर और प्रिय भोगों के उपलब्ध होने पर भी स्वाधीनतापूर्वक उन्हें पीठ दिखा देता है–त्याग देता है, वस्तुत वही त्यागी है।

Only he is a true renouncer who is his own master, who turns away from all available and desired indulgences and abandons them of his own free will 2/3

८. कामे कमाही कमियं खु दुक्खं। २/५

कामनाओं को दूर करना ही दुःखों को दूर करना है।

To be free of desires is to be free of miseries 2/5

९. वंतं इच्छसि आवेउं, सेय ते मरण भवे। २/७

यदि तुम वमन किए हुए (त्यक्त विषयों) को फिर से पीना (पाना) चाहते हो, इससे तो तुम्हारा मर जाना अच्छा है।

When you wish to feed on what you have vomited (the abandoned indulgences), better embrace death. 2/7

१०. जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावकम्मं न बन्धइ॥ ४/८

चलना, खडा होना, बैठना, सोना, भोजन करना और बोलना आदि प्रवृत्तियाँ यतनापूर्वक करते हुए साधक को पापकर्म का बन्ध नहीं होता।

If one moves with care, stands with care, sits with care, lies down with care, eats with care and speaks with care, he avoids bondage of sinful *karmas* 4/8

११. पढम नाणं तओ दया। ४/१०

पहले ज्ञान होना चाहिए और फिर तदनुसार दया अर्थात् आचरण।

Pursue knowledge first and then adopt mercy (conduct) accordingly 4/10

१२ अन्नाणी कि काही, किं वा नाही सेयपावगं ? ४/१०

अज्ञानी आत्मा क्या करेगा? वह पुण्य और पाप को कैसे जान पायेगा?

What can an ignorant person do? How could such a person discriminate between merit and sin? 4/10

१३. जं सेयं त समायरे। ४/११

जो श्रेय (हितकर) हो, उसी का आचरण करना चाहिए।

What is good should be followed. 4/11

१४. जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाही संवरं ? ४/१२

जो न जीव (चैतन्य) को जानता है और न अजीव (जड) को, वह संयम को कैसे जान पाएगा?

Who neither knows about the living nor the non-living, how can he understand discipline? 4/12

१५. दवदवस्स न गच्छेज्जा। ५/१/१४

मार्ग में जल्दी-जल्दी–ताबड-तोबड नहीं चलना चाहिए।

One should not walk fast or run. 5/1/14

१६. हसंतो नाभिगच्छेज्जा। ५/१/१४

मार्ग में हँसते हुए नहीं चलना चाहिए।

One should not laugh while walking. 5/1/14

१७. संकिलेसकरं ठाणं, दूरओ परिवज्जए। ५/१/१६

जहाँ भी कहीं क्लेश की संभावना हो, उस स्थान से दूर रहना चाहिए।

One should avoid such places that might cause agitation and misery in his mind. 5/1/16

१८. असंसत्तं पलोइज्जा। ५/१/२३

किसी भी वस्तु को ललचाई आँखों से (आसक्तिपूर्वक) न देखे।

One should not look at something with yearning. 5/1/23

१९. उप्फुल्लं न विणिज्झाए। ५/१/२३

आँखें फाडते हुए (घूरते हुए) नहीं देखना चाहिए।

One should not look at something with wide (staring) eyes 5/1/23

२० निअट्टिज्ज अयंपिरो। ५/१/२३

किसी के यहाँ अपना अभीष्ट काम न बन पाए तो बिना कुछ बोले (झगड़ा किए) शांत भाव से लौट आना चाहिए।

If one does not get the desired he should leave without comment peacefully 5/1/23

२१ अकप्पिय न गिण्हिज्जा। ५/१/२७

अयोग्य वस्तु, कैसी भी क्यों न हो, स्वीकार नहीं करना चाहिए।

One should not accept what is not proper (*akalp*) for him no matter how good it is. 5/1/27

२२. छद से पडिलेहए। ५/१/३७

व्यक्ति के अन्तर्मन को परखना चाहिए।

One must judge the intention of the other person. 5/1/37

२३. महुघयं व भुंजिज्ज संजए। ५/१/९७

सरस या नीरस–जैसा भी आहार मिले, साधक उसे 'मधु-घृत' की तरह प्रसन्नतापूर्वक खाए।

An ascetic should eat what he gets happily, considering it to be butter and honey, irrespective of its being tasteful or tasteless. 5/1/97

२४. उप्पण्णं नाइहीलिज्जा। ५/१/९९

समय पर प्राप्त उचित वस्तु की अवहेलना न कीजिए।

One should not belittle what proper thing he gets at proper time. 5/1/99

२५. मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छन्ति सुग्गइ। ५/१/१००

मुधादायी–निष्कामभाव से दान देने वाला और मुधाजीवी–निस्पृह होकर साधनामय जीवन जीने वाला–दोनों ही सद्‌गति प्राप्त करते हैं।

In this world an unselfish donor and selfless spiritualist both attain a higher and good rebirth. 5/1/100

२६. काले काल समायरे। ५/२/४

जिस काल (समय) में जो कार्य करने का हो, उस काल में वही कार्य करना चाहिए।

One should indulge in any activity only at its allotted or proper time. 5/2/4

२७ अलाभोत्ति न सोइज्जा, तवोत्ति अहियासए। ५/२/६

भिक्षु को यदि कभी मर्यादानुकूल शुद्ध भिक्षा न मिले तो खेद न करे, अपितु यह मानकर अलाभ परीषह को सहन करे कि अच्छा हुआ, आज सहज ही तप का अवसर मिल गया।

If a shraman does not get proper alms he should not feel sorry. He should tolerate the pain of deprivation, thinking that he got an opportunity to observe austerities 5/2/6

२८. अदीणो वित्तिमेसेज्जा, न विसीएज्ज पंडिए। ५/२/२८

आत्मविद् साधक अदीनभाव से जीवन-यात्रा करता रहे। किसी भी स्थिति में मन में खिन्नता न आने दे।

An ascetic should lead a graceful life. In no situation should he get disturbed. 5/2/28

२९ पूयणट्ठा जसोकामी, माणसमाणकामए।
बहुं पसवई पावं, मायासल्लं च कुव्वइ॥ ५/२/३७

जो साधक पूजा प्रतिष्ठा के फेर में पडा है, यश का भूखा है, मान-सम्मान के पीछे दौडता है वह उनके लिए अनेक प्रकार के दंभ रचता हुआ अत्यधिक पापकर्म करता है।

A shraman, who runs after false reverence, praise and respect, indulges in deceitful conduct attracting the bondage of acute and terrible sinful *karmas* 5/2/37

३० पणीय वज्जए रस। ५/२/४२

विकार बढाने वाला भोजन नहीं करे।

One should not eat a food that produces vices 5/2/42

३१. अणुमाय पि मेहावी, मायामोस वि वज्जए। ५/२/५१

आत्मविद् साधक अणुमात्र भी माया-मृषा (दंभ और असत्य) का सेवन न करे।

A disciplined *shraman* should refrain from even the slightest of deception and duplicity. 5/2/51

३२. अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो। ६/९

सब प्राणियों के प्रति स्वयं को सयत रखना–यही अहिंसा का पूर्ण दर्शन है।

To keep discipline in behavior towards all beings is the doctrine of *ahimsa* 6/9

३३. सव्वे जीवा वि इच्छति, जीविउ न मरिज्जिउ। ६/११

समस्त प्राणी सुखपूर्वक जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।

All beings in this world desire to live and none wants to die. 6/11

३४. मुसावाओ उ लोगम्मि, सव्वसाहूहिं गरहिओ। ६/१३

विश्व के सभी सत्पुरुषों ने मृषावाद (असत्य) की निंदा की है।

All sages in this world have condemned falsehood. 6/13

३५. जे सिया सन्निहिं कामे, गिही पव्वइए न से। ६/१९

जो सदा संग्रह की भावना रखता है, वह साधु नहीं, (साधुवेश में) गृहस्थ ही है।

An ascetic who always desires to collect is in fact a householder not a *shraman* 6/19

३६. मुच्छा परिग्गहो वुत्तो। ६/२१

मूर्च्छा को ही वस्तुत: परिग्रह कहा है।

The sages say that attachment is possession 6/21

३७ अवि अप्पणो वि देहंमि, नायरंति ममाइय। ६/२२

अकिंचन मुनि, और तो क्या, अपने देह पर भी ममत्व नहीं रखते।

The detached ascetics do not nurture any feeling of attachment even for their body 6/22

३८. कुसीलवड्ढणं ठाण, दूरओ परिवज्जए। ६/५९

कुशील (अनाचार) बढ़ाने वाले प्रसगो से साधक को हमेशा दूर रहना चाहिए।

An ascetic should avoid indulging in activities that promote corruption. 6/59

३९. जमट्ठतु न जाणेज्जा, एवमेयंति नो वए। ७/८

जिस बात को स्वयं न जानता हो, उसके सम्बन्ध में 'यह ऐसा ही है'–इस प्रकार निश्चित भाषा न बोले।

When not fully aware of the facts one should not give a conclusive statement like—It certainly is like this. 7/8

४०. जत्थ संका भवे त तु, एवमेयंति नो वए। ७/९

जिस विषय में अपने को कुछ भी शका जैसा लगता हो, उसके सम्बन्ध मे 'यह ऐसा ही है'–इस प्रकार निश्चित भाषा न बोले।

When in doubt about any facts one should not give a conclusive statement like—It certainly is like this. 7/9

४१. सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो। ७/११

वह सत्य भी नहीं बोलना चाहिए, जिससे किसी प्रकार का पापागम (अनिष्ट) होता हो।

Avoid uttering even the truth that causes harm 7/11

४२. न लवे असाहुं साहु त्ति, साहु साहु त्ति आलवे। ७/४८

किसी प्रकार के दबाव या खुशामद से असाधु (अयोग्य) को साधु (योग्य) नहीं कहना चाहिए। साधु को ही साधु कहना चाहिए।

Under no pressure or persuasion a disciplined *shraman* should call an impostor an ascetic (accomplished one). He should call an ascetic only who really is 7/48

४३. न हासमाणो वि गिर वइज्जा। ७/५४

हँसते हुए नहीं बोलना चाहिए।

One should not laugh while speaking. 7/54

४४. मिय अदुइं अणुवीइ भासए, सयाण मज्झे लहई पसमणं। ७/५५

जो विचारपूर्वक सुन्दर और परिमित शब्द बोलता है, वह सज्जनों मे प्रशंसा पाता है।

The *shraman* who thinks before speaking and speaks sweetly with brevity draws praise from the sages or noble men 7/55

४५. वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमिय। ७/५६

बुद्धिमान् ऐसी भाषा बोले, जो हितकारी हो एव अनुलोम–सभी को प्रिय हो।

The wise should use pleasing and sweet language that benefits all 7/56

४६. अप्पमत्तो जयं निच्च। ८/१६

सदा अप्रमत्तभाव से साधना में यत्नशील रहना चाहिए।

One should always indulge in spiritual practices with alertness and sincerity 8/16

४७. बहुं सुणेहिं कन्नेहि, बहुं अच्छीहिं पिच्छइ।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ॥ ८/२०

भिक्षु (मुनि) कानों से बहुत-सी बातें सुनता है, आँखों से बहुत-सी बातें देखता है, किन्तु देखी, सुनी सभी बातें (लोगों में) कहना उचित नहीं है।

A *shraman* listens and sees many things with his ears and eyes, but it is not proper for him to express before others all what he has heard or seen. 8/20

४८. कन्नसोक्खेहिं सद्देहिं, पेम नाभिनिवेसए। ८/२६

केवल कर्णप्रिय तथ्यहीन शब्दों में अनुरक्ति नहीं रखनी चाहिए।

One should not have fondness for the meaningless words that are pleasing to ears. 8/26

४९ देहदुक्खं महाफलं। ८/२७

शारीरिक कष्टो को समभावपूर्वक सहने से महाफल की प्राप्ति होती है।

Tolerating physical pain with equanimity leads to the lofty attainment that is liberation 8/27

५० थोवं लद्धु न खिंसए। ८/२९

मनचाहा लाभ न होने पर झुंझलाए नही।

One should not grumble if he does not get what he desires. 8/29

५१. न बाहिरं परिभवे, अत्ताण न समुक्कसे। ८/३०

बुद्धिमान् दूसरो का तिरस्कार न करे और अपनी बडाई न करे।

One should neither insult others nor praise himself 8/30

५२ सुय लाभे न मज्जिज्जा। ८/३०

ज्ञान प्राप्त करके गर्व मत करो।

One should not be proud of his knowledge. 8/30

५३. बीयं तं न समायरे। ८/३१

एक बार भूल होने पर दुबारा उसकी आवृत्ति न करे।

Never repeat a mistake. 8/3

५४. बलं थामं च पेहाए, सद्धामारुग्गमप्पणो।
खेत्तं कालं च विन्नाय, तहप्पाण निजुंजए॥ ८/३५

अपना मनोबल, शारीरिक शक्ति, श्रद्धा, स्वास्थ्य, क्षेत्र और काल को ठीक तरह से परखकर ही अपने को किसी भी सत्कार्य के सम्पादन में नियोजित करना चाहिए।

Judging his own strength and endurance, faith and health, matter and its state, and place and time, one should indulge in pious activities to the best of his abilities. 8/35

५५ जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे॥ ८/३६

जब तक बुढ़ापा आता नही है, जब तक व्याधियों का जोर बढ़ता नहीं है, जब तक इन्द्रियाँ (कर्मशक्ति) क्षीण नहीं होती हैं, तभी तक बुद्धिमान् को, जो भी धर्माचरण करना हो, कर लेना चाहिए।

Till such time that old age has atrophied the body, ailments have overwhelmed it, and the faculties are disabled, the wise should promptly indulge in religious activities. 8/36

५६. कोहं माण च मायं च, लोभ च पाववड्ढणं।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छंतो हियमप्पणो॥ ८/३७

क्रोध, मान, माया और लोभ–ये चारो पाप की वृद्धि करने वाले है, अत· आत्मा का हित चाहने वाला साधक इन दोषों का परित्याग कर दे।

He who desires to benefit his soul should avoid the four great faults that are the sources of all sins—anger, conceit, deceit and greed. 8/37

५७. कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो॥ ८/३८

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का, माया मैत्री का और लोभ सभी सद्गुणों का विनाश कर डालता है।

Anger destroys love and goodwill, conceit destroys humbleness, deceit destroys friendship and greed destroys all virtues 8/38

५८. उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायमज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे॥ ८/३९

क्रोध को शान्ति से, मान को मृदुता–नम्रता से, माया को ऋजुता–सरलता से और लोभ को संतोष से जीतना चाहिए।

One should subdue anger with tranquillity, conceit with humbleness, deceit with simplicity and greed with contentment. 8/39

५९. रायणिएसु विणयं पउंजे। ८/४१

बडों (रत्नाधिक) के साथ विनयपूर्ण व्यवहार करो।

One should be humble in his behaviour towards his seniors (superior in knowledge) 8/41

६० सप्पहासं विवज्जए। ८/४२

अट्टहास नहीं करना चाहिए।

One should not laugh loudly. 8/42

६१. अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अन्तरा। ८/४७

बिना पूछे व्यर्थ ही किसी के बीच में नही बोलना चाहिए।

One should not intervene in a conversation unless invited. 8/47

६२ पिट्ठिमसं न खाइज्जा। ८/४७

किसी की चुगली खाना–पीठ का माँस नोचने के समान है, अतः किसी की पीठ पीछे चुगली नहीं खाना चाहिए।

One should not criticize someone in his absence because it amounts to snipping flesh from his back. 8/47

६३. दिट्ठं मियं असंदिद्धं, पडिपुन्नं विअं जिय।
अयंपिरमणुव्विग्गं, भासं निसिर अत्तवं॥ ८/४९

आत्मवान् साधक दृष्ट (अनुभूत), परिमित (संक्षिप्त), सन्देहरहित, परिपूर्ण (अधूरी कटी-छँटी बात नहीं) और स्पष्ट वाणी का प्रयोग करे। किन्तु, यह ध्यान में रहे कि वह वाणी भी वाचालता से रहित तथा दूसरों को उद्विग्न करने वाली न हो।

An introvert ascetic should only use that language which he has perfected with experience, which is not ambiguous, which is correct and candid, and which can be spoken fearlessly without stammering and with brevity in normal voice 8/49

६४ कुज्जा साहूहिं संथव। ८/५३

हमेशा साधुजनो के साथ ही संस्तव–संपर्क रखना चाहिए।

One should talk and be friendly with ascetics or pious people only. 8/53

६५. न या वि मोक्खो गुरुहीलणाए। ९/१/७

गुरुजनों की अवहेलना करने वाला कभी बंधनमुक्त नही हो सकता।

Neglect of the teacher certainly harms the cause of liberation. 9/1/7

६६. जस्संतिए धम्मपयाइ सिक्खे, तस्सतिए वेणइय पउजे। ९/१/१२

जिनके पास धर्मपद–धर्म की शिक्षा ले, उनके प्रति सदा विनयभाव रखना चाहिए।

One should always be humble towards the teachers from whom he has acquired spiritual knowledge 9/1/12

६७. एवं धम्मस्स विणओ, मूल परमो यसे मोक्खो। ९/२/२

धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उसका अन्तिम फल है।

The trunk of the tree of *dharma* (religion) is *vinaya* (humbleness) and its ultimate fruit is liberation 9/2/2

६८. जे य चंडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे।
वुज्झइ से अविणीयप्पा, कट्ठं सोयगयं जहा॥ ९/२/३

जो मनुष्य क्रोधी, अविवेकी, अभिमानी, दुर्वादी, कपटी और धूर्त्त है, वह संसार के प्रवाह में वैसे ही बह जाता है, जैसे जल के प्रवाह में काष्ठ।

The angry, ignorant, stubborn, belligerent, deceitful and undisciplined (who are devoid of *vinaya*) are swept away, in the waves of the ocean that is mundane life, like a log in the rapids. 9/2/3

६९. जे आयरिय-उवज्झायाणं, सुस्सूसा वयणं करे।
तेसिं सिक्खा पवड्ढंति, जलसित्ता इव पायवा॥ ९/२/१२

जो अपने आचार्य एवं उपाध्यायों की शुश्रूषा-सेवा तथा उनकी आज्ञाओं का पालन करता है, उसकी शिक्षाएँ (विद्याएँ) वैसे ही बढ़ती हैं जैसे कि जल से सींचे जाने पर वृक्ष।

The ascetics who serve and obey the *acharyas* and *upadhyayas* are blessed with ever increasing knowledge like a well watered tree. 9/2/12

७०. विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणीयस्स य। ९/२/२२

अविनीत विपत्ति (दुःख) का भागी होता है और विनीत संपत्ति (सुख) का।

A rude person begets troubles and a polite one gets wealth (happiness). 9/2/22

७१. असंविभागी नहु तस्स मोक्खो। ९/२/२३

जो संविभागी नहीं है, अर्थात् प्राप्त सामग्री को साथियों में बाँटता नहीं है, उसकी मुक्ति नहीं होती।

One who does not share alms with fellow ascetics can never attain liberation 9/2/23

७२. जो छंदमाराहयई स पुज्जो। ९/३/१

जो गुरुजनों की भावनाओं का आदर करता है, वही शिष्य पूज्य होता है।

Only he who respects the feelings of the seniors is a worthy one. 9/3/1

७३. वक्ककरे स पुज्जो। ९/३/३

गुरुओं का अनुशासन मानने वाला पूजनीय होता है।

Only he who obeys the teachers is a worthy one 9/3/3

७४. अलद्धुयं नो परिदेवइज्जा, लद्धुं न विकत्थयई स पुज्जो। ९/३/४

जो लाभ न होने पर खिन्न नहीं होता है और लाभ होने पर अपनी बड़ाई नहीं हाँकता है, वही पूज्य है।

He who neither laments not getting the desired, nor gets elated on getting it is a worthy one. 9/3/4

७५. वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि, वेराणुबंधीणि महब्भयाणि। ९/३/७

वाणी से बोले हुए दुष्ट और कठोर वचन जन्म-जन्मान्तर के वैर और भय के कारण बन जाते हैं।

Harsh and offending words are frightful and provoke animosity lasting many life times. 9/3/7

७६. गुणेहिं साहू, अगुणेहिऽसाहू, गिण्हाहि साहू गुण मुञ्चऽसाहू। ९/३/११

सद्गुण से साधु कहलाता है, दुर्गुण से असाधु। अतएव दुर्गुणो का त्याग करके सद्गुणों को ग्रहण करो।

By acquiring virtues one becomes virtuous (*sadhu*) and by acquiring vices one becomes evil (*asadhu*) Therefore, one should acquire virtues and abandon vices 9/3/11

७७. वियाणिया अप्पगमप्पएण, जो रागदोसेहि समो स पुज्जो। ९/३/११

जो अपने को अपने से जानकर राग-द्वेष के प्रसंगो में सम रहता है, वही साधक पूज्य है।

He who, knowing self through self (introspection), remains balanced both in fondness and revulsion is a worthy one 9/3/11

७८ निच्च चित्त समाहिओ हवेज्जा। १०/१

सदा प्रसन्नचित्त–समाधिभाव में रहो।

Always be blissful (or in a state of dwelling in the self). 10/1

७९ वंत नो पडिआयइ जे स भिक्खू। १०/१

जो वान्त–त्याग की हुई वस्तु को पुनः सेवन नही करता, वही सच्चा भिक्षु है।

One who does not regress into the mundane pleasures he has abandoned, he alone is a *bhikshu*. 10/1

८०. अतंसमे मन्निज्ज छप्पिकाए। १०/५

सभी षट्काय जीवों को आत्म-समान समझो।

Consider all living beings of the six classes dear as your own soul. 10/5

८१. सम्मद्दिट्ठी सया अमूढे। १०/७

जिसकी दृष्टि सम्यक् है, वह कभी कर्त्तव्यविमूढ़ नहीं होता।

One who is endowed with right perception is never befooled 10/7

८२. न य वुग्गहियं कहं कहिज्जा। १०/१०

विग्रह बढ़ाने वाली बात नहीं करनी चाहिए।

Never use provocative language. 10/10

८३. उवसंते अविहेडए जे स भिक्खू। १०/१०

जो शान्त है और अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक (अनुपेक्षी) है, वही श्रेष्ठ भिक्षु है।

One who is tranquil and serene and is conscious of his duties, he alone is a *bhikshu.* 10/10

८४. पुढविसमो मुणी हवेज्जा। १०/१३

मुनि को पृथ्वी के समान क्षमाशील होना चाहिए।

A *shraman* should be tolerant and merciful like earth. 10/13

८५ पत्तेयं पुण्ण पावं। चू. १/१

पुण्य और पाप सबका अपना-अपना है।

Every soul has its own sin and piety C. 1/1

८६. संभिन्नवत्तस्स य हिट्ठिमा गई। चू. १/१३

व्रत मे भ्रष्ट होने वाले की अधोगति होती है।

One who has fallen from grace (discipline) suffers miseries during this and the next life. C 1/13

८७ बोही य से नो सुलहा पुणो पुणो। चू. १/१४

सद्बोध प्राप्त करने का अवसर बार-बार मिलना सुलभ नहीं है।

It is not easy to get opportunities to get enlightened time and again. C. 1/14

८८. चइज्ज देहं, न हु धम्मसासणं। चू. १/१७

देह को (आवश्यक होने पर) भले छोड़ दो, किन्तु अपने धर्म-शासन को मत छोड़ो।

It is better to embrace death happily rather than to abandon the religious discipline. C. 1/17

८९. अणुसोओ संसारो, पडिसोओ तस्स उत्तारो। चू. २/३

अनुस्रोत अर्थात् विषयासक्त रहना संसार है। प्रतिस्रोत अर्थात् विषयों से विरक्त रहना संसार-सागर से पार होना है।

The mundane way is to move with the current (indulgence in mundane pleasures). The ascetic way is to move against the current (detachment from mundane pleasures) because that is the way to get liberated. C. 2/3

९०. असंकिलिट्ठेहि समं वसेज्जा। चू. २/९

क्लेश नहीं करने वालों के साथ रहो।

Seek the company of those who do not get agitated. C. 2/9

९१. जो पुव्वरत्तावररत्तकाले, संपेहए अप्पगमप्पएणं।
किं मे कडं किंच मे किच्चसेसं, किं सक्कणिज्जं न समायरामि॥ चू. २/१२

जाग्रत साधक प्रतिदिन रात्रि के प्रारम्भ में और अन्त मे सम्यक् प्रकार से आत्म-निरीक्षण करता है कि मैंने क्या (सत्कर्म) किया है, क्या नहीं किया है? और वह कौन-सा कार्य बाकी है, जिसे मैं कर सकने पर भी नहीं कर रहा हूँ?

During the first and last quarter of the night an alert ascetic reviews his thoughts and activities of the day and asks himself—What did I do? What did I not do? What was it that I did not do out of lethargy in spite having the energy and capacity to do? C. 2/12

९२. अप्पा हु खलु सययं रक्खिअव्वो। चू. २/१६

अपनी आत्मा को सतत पापों से बचाये रखना चाहिए।

The soul should always be protected from sins. C. 2/16

● ●